उत्तर-प्रदेश के सामाजिक-सांस्कृतिक विकास में पत्रकारिता का प्रभाव
[1900—1947]

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी॰ फिल् उपाधि के लिये
प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

शोध—निर्देशक
प्रोफेसर चन्द्र प्रकाश झा

प्रस्तुतकर्ता
वीर सिंह

मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

1989

** विषयानुक्रमणिका **

::x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x::

:x:x:x:x:x:x:

::x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x::

* प्राक्कथन *

::x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x::

प्राक्कथन

जन अभिव्यक्ति के रूप में पत्रकारिता आधुनिक युग की सशक्त इकाई है। पत्रकारिता के अन्तर्गत समाचार पत्र-पत्रिकायें जन संचार के सर्वाधिक प्रभावशाली माध्यमों में से एक हैं। ज्ञान विज्ञान, इतिहास, दर्शन, राजनीति तथा सामाजिक विज्ञान आदि विषयों को प्रतिबिम्बित करने तथा उन्हें एक मंच प्रदान करके जन-सामान्य से सम्बद्ध करने का महत्वपूर्ण तथा प्रमुख साधन समाचार पत्र-पत्रिकायें हैं। वे जनसम्पर्क के सशक्त माध्यम के रूप में न केवल प्रभावी भूमिका निभाती हैं अपितु जनतांत्रिक शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिये उचित वातावरण भी बनाती हैं। जन जीवन के विभिन्न पक्षों को नियन्त्रित तथा संचालित करने वाली समाज की शीर्ष शक्तियों के समस्त क्रिया कलापों पर पत्र-पत्रिकाओं की सतर्क दृष्टि रहती है। सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में पत्र-पत्रिकायें जनता की मार्ग दर्शक, शुभचिन्तक तथा सच्चे साथी की भूमिका का भी निर्वाह करती हैं। उनकी वास्तविक प्रकृति तथा गतिविधियाँ सामाजिक तथा राजनीतिक भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण तथा असमानता के विरूद्ध होती हैं। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित समाचार तथा लेख आधुनिक सामाजिक संगठन की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं।

मानव जीवन के विभिन्न पक्षों, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक जीवन के साथ पत्र-पत्रिकाओं का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। आधुनिक मानव जीवन का चक्र आर्थिक धुरी से जुड़ा है। वित्तीय समस्यायें, रोजगार, व्यापार औद्योगिक विकास आदि मामलों में समाचार पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका निष्पक्ष मध्यस्थ की

होती है जो समस्याओं के समाधान का वातावरण बनाने में सहायक होता है । सामाजिक क्रान्ति के साथ सांस्कृतिक क्रान्ति में भी पत्र-पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण स्थान है । अशिक्षा, अंधविश्वास, साम्प्रदायिकता, क्षेत्रीयता, संकीर्णता तथा अनेक सामाजिक कुरीतियों पर कुठाराघात करके पत्र-पत्रिकायें राष्ट्रीयता, देशभक्ति, सांस्कृतिक समन्वय तथा बौद्धिक विकास की प्रक्रिया में योगदान देती हैं । वाल्टर लिप्मैन ने पत्र-पत्रिकाओं की महत्ता को स्पष्ट करते हुये लिखा है कि अपने सही रूप में पत्र-पत्रिकायें समाज तथा अन्य संस्थाओं के लिये एक सेवक तथा अभिभावक के रूप में होती हैं किन्तु यदि वे गलत हाथों में पड़ जाये तो सामाजिक अव्यवस्था और शोषण का कारण भी बन सकते हैं ।

उत्तर प्रदेश में पत्रकारिता पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अनेक शोध ग्रन्थों की रचना हुई है किन्तु उनमें विशेष रूप से पत्रकारिता के इतिहास तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन में पत्रकारिता के योगदान जैसे अति महत्वपूर्ण पहलुओं पर ही प्रकाश डाला गया है । कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रमों तथा उत्तर प्रदेश के सामाजिक-सांस्कृतिक विकास को आधार बनाकर कोई शोध अभी तक नहीं किया गया । सम्भवतः इसका प्रमुख कारण प्रामाणिक सामग्री का अभाव था । इन अछूते पहलुओं पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से लिखने की आवश्यकता ने मुझे इस विषय पर कार्य करने के लिये प्रेरित किया । अनेक स्रोतों से सामाजिक -सांस्कृतिक विषयक सामग्री का चयन असहज तथा चुनौतीपूर्ण कार्य था । विषय की महत्ता को दृष्टिगत करते हुये इस शोध प्रबन्ध का प्रणयन मेरा एक लघु प्रयास है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में मैंने 1900-1947 ई० तक उत्तर प्रदेश के समाचार पत्र-पत्रिकाओं द्वारा सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास के लिये किये गये अनूठे तथा कष्ट साध्य प्रयासों के विषय में प्रामाणिक जानकारी दी है तथा विवादित प्रकरणों पर उपलब्ध तथ्यों के आधार पर निष्पक्ष मत देने का भी प्रयास किया है। जिन सामाजिक समस्याओं पर क्रमबद्ध प्रामाणिक जानकारी मिली है तथा जिन मुद्दों पर समाचार पत्रों के सम्मिलित प्रयास ने सरकार को जनहित में नयी व्यवस्था लागू करने के लिये बाध्य किया है उनका मैंने अपने शोध प्रबन्ध में विशेष उल्लेख विषय के प्रतिपादन के लिये आवश्यक समझा है। उत्तराखण्ड में कुली बेगार और कुली उतार प्रथा तथा नायक बालिकाओं के शोषण को समाप्त करने के प्रयास इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। मैंने बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के वयोवृद्ध संपादकों, राजनेताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं तथा कतिपय समाज शास्त्रियों से साक्षात्कार करके दस्तावेजी प्रमाणों की प्रमाणिकता तथा उन पर प्रतिक्रिया जानने का भी प्रयास किया है।

मैंने अपने शोध-प्रबन्ध में नये तथ्यों की खोज पर उतना अधिक जोर नहीं दिया है जितना कि ज्ञात तथ्यों की व्याख्या पर। व्याख्या स्वभावतः व्यक्तिपूरक होती है। निःसन्देह व्याख्या का आधार तथ्य होना चाहिये जो कि इतिहास का आधार है किन्तु तथ्यों का चयन, उसकी व्यवस्था और उनका मूल्यांकन शोधकर्ता की दृष्टि और प्रवृत्ति पर निर्भर है। तथ्यों और उनकी प्रस्तुति के प्रति यद्यपि मैंने पूर्ण सतर्कता और ईमानदारी का निर्वाह किया है तथापि चार्ल्स ए०बियर्ड की इस बात से मैं पूरी तरह सहमत हूँ कि चाहे इतिहास लेखक कितना भी प्रयास करे तो भी लिखित इतिहास शत-प्रतिशत तथ्यात्मक तथा निरपेक्ष नहीं होता और न हो सकता है।

अनेक क्षेत्रों की तरह पत्रकारिता में भी पाश्चात्य देशों को आदर्श मानने की परम्परा है किन्तु मैंने इसे झुठलाने का प्रयास किया है । भारत में छापेखाने के विकास में भले ही पुर्तगालियों तथा अंग्रेजो का प्रमुख योगदान रहा हो किन्तु जहाँ तक पत्रकारिता का प्रश्न है वह एक दूसरे रूप में सदियों पहले से भारत में थी । अंग्रेजी पत्रकारिता से काफी पहले से भारत में फारसी तथा उर्दू पत्रकारिता थी । मुगल काल में समाचार संप्रेषण की उपयोगी तथा प्रभावशाली व्यवस्था थी । विषय से सीधा सम्बन्ध न होने पर भी मैंने पहले अध्याय, प्रस्तावना में इस पर पर्याप्त सामग्री दी है जिससे अंग्रेजी पत्रकारिता को सर्वोपरि मानने वाले प्रबुद्ध जनों को सशक्त एवं तर्क संगत उत्तर दिया जा सके ।

खेद है कि आलोच्य अवधि के प्रमुख समाचार पत्र-पत्रिकाओं में अधिकांश की प्रतियों का क्रमबद्ध संकलन उपलब्ध नहीं है इसलिये राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, उत्तर प्रदेश राजकीय अभिलेखागार, लखनऊ, राजकीय पब्लिक लाइब्रेरी, इलाहाबाद, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद तथा वाराणसी के कुछ प्रमुख पुस्तकालयों में संग्रहीत समाचार पत्र-पत्रिकाओं को ही आधार बनाना पड़ा । जिन - समाचार पत्र-पत्रिकाओं की कुछ एक प्रतियाँ ही उपलब्ध हो सकी हैं उनसे उनके अस्तित्व की प्रमाणिकता तो सिद्ध हो सकी है किन्तु उनकी प्रकृति तथा योगदान के विषय में किसी निश्चित धारणा पर पहुँच सकना सम्भव नहीं हो सका है ।
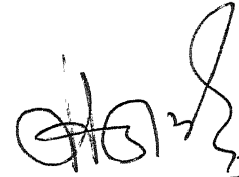
प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के एतादृश प्रस्तुतीकरण का सम्पूर्ण श्रेय मेरे परम पूज्य गुरुवर तथा शोध निर्देशक प्रोफेसर चन्द्र प्रकाश झा को है जिन्होंने अपने अति व्यस्त कार्यक्रमों से समय निकालकर प्रबन्ध - विन्यास की संयोजना की । प्रोफेसर झा के स्नेह एवं आशीर्वाद से ही यह शोध-कार्य सम्पन्न हो सका है । इस अनुग्रह के लिये वे हार्दिक साधुवाद के पात्र हैं ।

डा० राधेश्याम, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय तथा डा० श्याम नारायण सिन्हा, निदेशक, उत्तर प्रदेश राजकीय अभिलेखागार, लखनऊ का मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरे शोध-कार्य को निर्विघ्न रूप से सम्पन्न कराने में यथेष्ट सहायता की है ।

मैं अपने पूर्व विभाग की सहयोगी डा०§श्रीमती§ सन्ध्या नागर का विशेष रूप से आभारी हूँ क्योंकि मेरा शोध-कार्य उनकी प्रेरणा, सहयोग तथा मार्गदर्शन का प्रतिफल है । डा० भुवनेश्वर सिंह गहलौत, पत्रकार, "अमृत प्रभात", इलाहाबाद तथा उनकी पत्नी डा०§श्रीमती§ गायत्री सिंह गहलौत, प्रवक्ता, ईश्वर शरण डिग्री कालेज, इलाहाबाद एवं हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पंडित उदय शंकर दुबे को विस्मृत नहीं किया जा सकता जिन्होंने इस शोध-प्रबन्ध की संरचना में आद्योपान्त पथ-प्रदर्शन करके तथा दुरूह समस्याओं के समाधान द्वारा अपने उत्साह एवं विश्वास से मुझे सदा संबलित किया ।

मैं अपनी पत्नी डा० §श्रीमती§ सुधा सिंह, विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास विभाग, राजा मोहन महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फैजाबाद के प्रति भी अपना धन्यवाद ज्ञापित करना चाहता हूँ जिन्होंने इस शोध-प्रबन्ध की पाण्डुलिपि में उपयोगी संशोधन करके अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया है । इस अवसर पर मैं अपने बेटों कृष्ण मोहन एवं शरद मोहन को कदापि विस्मृत नहीं कर सकता जिन्हें मेरी शोध-कार्य में व्यस्तता के कारण मेरे स्नेह एवं पथ-प्रदर्शन से वंचित रहना पड़ा ।

अन्त में इन पंक्तियों का लेखक उन सभी विद्वानों का अभ्यन्तरिक हृदय से आभारी है जिनकी कृतियों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहायता ली गई है।

29.11.89

(वीर सिंह)

संपादक (शोध)

नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय,

कुमारगंज (फैजाबाद)

कार्तिक पूर्णिमा

विक्रम सम्वत्, 2046

अध्याय : प्रथम

प्रस्तावना

पत्रकारिता के अन्तर्गत समाचारपत्र-पत्रिकायें जनसंचार के सर्वाधिक सशक्त साधनों में से एक हैं । पत्रकारिता के प्रमुख अंग समाचारपत्र-पत्रिकायें आधुनिक युग के एक शक्तिशाली सामाजिक संस्थान हैं । उपादेयता की दृष्टि से ही इन्हें राज्य के चतुर्थ अवयव की संज्ञा भी प्राप्त है । पत्रकारिता के माध्यम से आधुनिक जीवन की विभिन्न प्रकार की समस्याओं का निरा--करण ही नहीं होता अपितु उसके विभिन्न पक्षों को उजागर करने की सुविधा भी मिलती है । समाचारपत्र-पत्रिकाओं से सामाजिक एकता को बल मिलता है, वैचारिक उपयोगिता सिद्ध होती है तथा विवादों का निर्णय, आन्दोलनों का सूत्रपात और संस्थाओं का जन्म होता है । समाज की - शीर्षस्थ इकाइयों तथा जन-जीवन के प्रमुख संचालकों पर पत्रकारिता के माध्यम से कड़ी निगरानी रखना सम्भव होता है ।

गत तीन शताब्दियों में राष्ट्र के रूप में समन्वित होने के लिये सामंती अभिजात्य द्वारा पोषित, सामंती अनैक्य के विरुद्ध संघर्ष के लिये, आधुनिक राष्ट्रीय साम्राज्य, समाज तथा संस्कृति की स्थापना के लिये यूरोप के देशों ने समाचारपत्रों को अमोघ अस्त्र के रूप में प्रयोग किया [1] । फ्रांस में नवीन सामाजिक व्यवस्था के आकांक्षी प्रबुद्ध वर्ग ने सामंती शासक वर्ग के नैतिक ह्रास, प्रतिक्रियावादी सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण तथा क्रियाकलाप आदि को उजागर करने में समाचार पत्रों का प्रभावी प्रयोग किया । समाचारपत्रों के माध्यम से ही फ्रांसीसी दार्शनिकों तथा विचारकों ने जनसाधारण में व्यावहारिक विचारों का प्रचार व प्रसार किया और तत्कालीन धार्मिक अंधानुकरण तथा विभिन्न प्रकार के शोषणों के विरुद्ध जनमत को संगठित किया । उन्होंने कृषि दासता के विरुद्ध कृषि दासों को संघर्ष के लिये प्रेरित किया ।[2] उन्होंने पत्रकारिता के माध्यम से ही जन्म पर

1- आर०डी० पारिख, द प्रेस एण्ड सोसायटी, पृ० 11

2- स्वामीनाथ नटराजन, डेमोक्रेसी एण्ड द प्रेस, पृ० 59

आधारित विशेषाधिकार के अनुचित सिद्धान्त की निन्दा की थी। सामंती विशेषाधिकारों की जगह उन्होंने जनमानस के समानाधिकार के सिद्धान्त का प्रचार किया। उन्होंने कृषि दासता की समाप्ति और लोकतान्त्रिक समाज की स्थापना को अपना आदर्श बनाया। फ्रांसीसी दार्श-निकों, प्रबुद्ध लेखकों तथा बुद्धिजीवी वर्ग की अगुवाई में अन्य नये सामाजिक तत्वों ने जनचेतना को आन्दोलित करने, इसे नवीन विचारों के माध्यम से जागृत करने और सामंती समाज की जगह आधुनिक राष्ट्रवादी राजतंत्र तथा समाज की स्थापना के संघर्ष में उसका मार्गदर्शन करने के लिए अखबारों का सहयोग लिया। क्रांति के पश्चात फ्रांसीसी बोर्जुआ व राष्ट्रीय जनतांत्रिक समाज की स्थापना तथा विकास के लिये समाचारपत्र-पत्रिकाओं ने फ्रांसीसी जनता के सर्वाधिक विश्वस्त सहायक के रूप में कार्य किया। पत्रकारिता के विशिष्ट सहयोग के अभाव में मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था के विरोध में संघर्ष के लिये जनता के शक्तिशाली संगठन तथा राष्ट्रीय शासन और समाज की स्थापना, फ्रांस की समृद्धि तथा वैज्ञानिक एवं कलात्मक संस्कृति का विकास सम्भव नहीं होता।

फ्रांस के अतिरिक्त अन्य यूरोपीय देशों में भी समाचारपत्र-पत्रिकाओं की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही। जनसंचार के सशक्त माध्यम के कारण ही लोकतांत्रिक विचारों के लोग अपने विचारों को जनता के निकट ला सके। सामंती समाज और उनकी एकतंत्रीय राज्य व्यवस्था को समाप्त करने के बाद इन देशों में समाचारपत्र-पत्रिकायें ही मुद्रणकला के माध्यम से नवसृजित आधुनिक संस्कृति को जन-साधारण तक पहुँचा सकी।[1] विचार सशक्त माध्यम से जनता में पहुँचने पर प्रबल भौतिक शक्ति बन जाते हैं। राष्ट्रीय जागरण, प्रगतिशील विचारों को ग्रहण करने की प्रक्रिया तथा सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलनों में अत्यधिक जनसहयोग की दृष्टि से विभिन्न देशों के इतिहास में मुद्रणालयों की अहम भूमिका रही है।

1- ई लायड समरलाद, द प्रेस इन डेवेलेप्ड कन्ट्रीज, पृष्ठ 191

मुद्रण तकनीक के विकास से पत्रकारिता ने मानव सभ्यता को एक नया मोड़ दिया है । अँधेरे युग के अज्ञान भरे वातावरण से निकलकर शिक्षित और सभ्य समाज के निर्माण में पत्रकारिता ने कल्पनातीत मदद पहुँचायी है । पत्रकारिता और मुद्रणकला का अटूट सम्बन्ध है । मुद्रण कला के अभाव में पत्रकारिता के माध्यम से मानव विकास का यह वर्तमान स्वरूप सम्भव नहीं था । मुद्रण ने ज्ञान प्राप्ति और नवीन आविष्कारों को नया मूल्य, नयी चेतना और नया आधार दिया है जिसमें पत्रकारिता भी सम्मिलित है ।

मुद्रण कला के विकास का इतिहास स्पष्ट और क्रमबद्ध नही है । आम धारणा है कि मुद्रण कला की जानकारी सर्वप्रथम यूरोपवासियों को हुई किन्तु नवीन शोध से पता चलता है कि यूरोप से बहुत पहले चीन तथा जापान में मुद्रण कला से वहाँ के लोग परिचित थे । कागज बनाने की प्रणाली का आविष्कार भी चीन में ही हुआ । 175ई0 में चीन में ठप्पे की छपाई का उल्लेख मिलता है । काठ पर अक्षरों को उकेर कर और उस पर स्याही लगाकर काठ के दो तख्तों के बीच उसे दबाया जाता था जिससे कागज पर उसकी छाप बन जाती थी । 1041ई0 में चीन के पी0शांग नामक व्यक्ति ने चीनी मिट्टी के अक्षर तैयार किये । इसे वर्तमान टाइपों का आदि रूप माना जा सकता है ।[1]

मुद्रण कला का प्रचलन यूरोप में किस तरह हुआ ? यह कला चीन से यूरोप किस तरह गयी इसके बारे में अधिक जानकारी नहीं मिलती है । उस युग में चीन में लोग एशिया के अन्य देशों में भारत के ही मार्ग से आते जाते थे । ऐसा माना जाता है कि चीन से कागज बनाने की कला

1- डफ हार्ट डेविस, बिहाइन्ड द सीन्स, पृ0 63

अरब देशों में और वहाँ से यूरोपीय देशों में पहुँची । इस पर भी चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में यूरोप में मुद्रण कला का विकास लगभग स्वतंत्र रूप से हुआ ।[1] उस युग में यूरोप में अनेक प्रसिद्ध चित्रकार थे । उनके चित्रों की प्रतिकृतियाँ बनाने के लिये चीनी पद्धति से छपाई की जाती रही । इस तरह अक्षरों की छपाई सम्भव नहीं थी । अक्षरों को उकेरकर ठप्पे तैयार करने का कार्य बहुत कठिन था । उस पर अधिक खर्च आने की सम्भावना थी । इन असुविधाओं ने जर्मनी के लारेन्स जैस जोन को छुट्टे ■ टाइप बनाने की प्रेरणा दी । उसके पश्चात उसका परिवर्धित स्वरूप जर्मनी के ही जोन्स गुन्टेनबर्ग § 1398ई0 - 1468ई0 §ने प्रस्तुत किया । उसने जर्मनी के मेज नगर में सर्वप्रथम बाइबिल के कुछ आरम्भिक अंश प्रकाशित किये । गुन्टेनबर्ग ने ऐसे टाइपों का आविष्कार किया जिनका उपयोग अलग-अलग शब्दों के बनाने में किया जा सकता था । गुन्टेनबर्ग द्वारा विकसित मुद्रण कला शीघ्र ही सारे यूरोप में फैलने लगी । 1465ई0 और 1553 के मध्य इटली, फ्रांस, स्पेन, इंग्लैण्ड, स्वीडन, पुर्तगाल तथा रूस में इन टाइपों का प्रचलन हो गया ।[2] 1556 ई0 में भारत में सर्वप्रथम गोवा के पुर्तगाली जेसुइट लोगों ने ईसाई धर्म का साहित्य छापने के लिये इसका प्रयोग किया । 1561ई0 में गोवा में छपी एक पुस्तक की प्रति आज भी न्यूयार्क लाइब्रेरी में सुरक्षित है । पुर्तगाली जेसुइट लोगों ने काफी समय तक मुद्रणकला को धार्मिक पुस्तकों के प्रकाशन तक ही सीमित रक्खा ।[3]

1- फ्रेके जुयो, स्टोरी आफ प्रिन्टिंग - थ्रू द एजेज , पृ0 23

2- वही, पृ0 29

3- के0जी0ओ0विन्गर, द आर्ट आफ प्रिन्टिंग ट्रांसफार्मस द वर्ल्ड, पृ057

सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में भारत में काफी उथल पुथल के बाद सत्ता संघर्ष में अंग्रेजों ने विजय पाई और सम्पूर्ण भारत उनके नियन्त्रण में आ गया । इस समय तक मुद्रण का कार्य पुर्तगालियों के पास ही रहा । दूरदर्शी गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स का ध्यान मुद्रण कला के लाभ तथा उसकी आवश्यकता की ओर गया तो उसने चार्ल्स विंकिल्स नामक एक व्यक्ति द्वारा बंगला के टाइप तैयार कराये और प्रेस की व्यवस्था करायी । 1805 ई0 में विंकिल्स ने ही देवनागरी अक्षरों के टाइप तैयार कराये । इसलिये चार्ल्स विंकिल्स को ही देशी भाषाओं की छपाई की नींव डालने का श्रेय दिया जाता है ।[1]

1810 ई0 में विलियम करे नामक एक ईसाई मिशनरी धार्मिक ग्रन्थों के मुद्रण के लिये बड़ा प्रेस स्थापित करने के उद्देश्य से कलकत्ता आया किन्तु जब उसे कोई प्रोत्साहन सरकारी तंत्र से नहीं मिला तो वह कलकत्ते के पास श्रीरामपुर नामक स्थान में चला गया ।[2] श्रीरामपुर में डेनमार्क के लोगों की एक छोटी सी बस्ती में रहकर उसने एक प्रेस खोला और वहीं से धार्मिक पुस्तकें प्रकाशित करने लगा । चार्ल्स विंकिल्स के पास से टाइप बनाने का कार्य सीखकर गया एक बंगाली युवक पंचानन कर्मकार, विलियम करे के छापेखाने में काम करने लगा । विलियम करे और पंचानन कर्मकार ने मिलकर 1812 ई0 में देवनागरी बालबोध लिपि के टाइपों का सांचा तैयार किया और देवनागरी के टाइप ढालने लगे । श्रीरामपुर में टाइप बनाने का काम काफी प्रसिद्ध हुआ । पंचानन कर्मकार और उसके एक सहयोगी मनोहर ने मिलकर देशी भाषाओं के छोटे बड़े टाइप तैयार किये और उन्हें देश के विभिन्न भागों में भेजा ।[3]

1- प्रफुल्ल चन्द्र ओझा, मुद्रण कला, पृ0 6

2- वही, पृष्ठ 7

3- वही, पृष्ठ 8

महाराष्ट्र में प्रख्यात राजनीतिज्ञ नाना फड़नवीस ने मुद्रण कला के विकास पर ध्यान दिया था और पूना के कई लोगों को इसके लिये राजकीय सहायता दिलायी थी किन्तु राजनीतिक कार्यों में व्यस्त रहने के कारण नाना फड़नवीस इस ओर अधिक ध्यान नहीं दे सका । उसकी अधूरी अभिलाषा को बाद में श्रीमंत मिरजकर नामक एक सामन्त ने पूरा किया । मुद्रण कला के विकास के साथ ही 29 जनवरी, 1780ई0 को कलकत्ता से जेम्स आगस्टस हिक्की ने " बंगाल गजट " नामक साप्ताहिक पत्र निकाला जिसे हिक्की गजट भी कहा जाता है । इसे आधुनिक भारत का पहला समाचार पत्र कहलाने का श्रेय प्राप्त है ।[1] 1790ई0 में बम्बई में " बाम्बे गजट " नामक पत्र प्रकाशित होने लगा । 1812ई0 में बम्बई में एक पारसी सज्जन फरदून जी मर्दबान दस्तूर ने एक प्रेस खोला । उन्होंने 10 वर्ष बाद इसी प्रेस से " मुंबई समाचार " नामक पत्र प्रकाशित किया जिसका प्रकाशन अभी भी हो रहा है ।

बम्बई में मुद्रण कला के विकास में अमरीकी ईसाई मिशनरियों ने काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । उन्होंने देशी और अंग्रेजी भाषा के टाइप तैयार कराये तथा इंग्लैन्ड से छपाई की मशीनें मंगाकर मुद्रण कार्य को आगे बढ़ाया । अमरीकी मिशनरियों से प्रेरणा लेकर बम्बई में गणपति कृष्ण जी ने विकसित ढंग का छापाखाना खोला और 1831ई0 में पहला पंचांग मुद्रित करके अमरीकी मिशनरियों की बराबरी कर ली । गणपति कृष्ण जी की सफलता से प्रोत्साहित होकर जावजी दादा जी, टामस ग्राहम तथा राणोजी रावजी ने विभिन्न प्रकार के टाइपों का निर्माण शुरू करके भारतीय मुद्रण कला के इतिहास में एक नया पृष्ठ जोड़ दिया ।

उत्तर प्रदेश [संयुक्त प्रान्त] में पहला छापाखाना बरेली में एक ईसाई मिशिनरी नार्मन ग्रेस ने लगाया । उसके पश्चात 1855 ई0 तक कानपुर, इलाहाबाद, अलीगढ़, मेरठ, बनारस तथा आगरा में छपाई का काम होने लगा ।[2]

मुद्रण कला के विकास ने पत्रकारिता को नई दिशा दी किन्तु पत्रकारिता के प्रमुख अंग समाचार पत्रों का विकास विकसित मुद्रण कला से काफी पहले हो गया था । विश्व में समाचार पत्रों की शुरुआत यूरोप से हुई । ईसा पूर्व पाँचवी शताब्दी के पहले रोम में संवाद लेखक हुआ करते थे जो राजधानी से दूर तक के निवासियों तक समाचार लिखकर पहुँचाया करते थे । छापेखाने का आविष्कार होने तक इसी तरह के हस्त--लिखित समाचार पत्रों का प्रचलन रहा । व्यापारियों तथा राजनीति में रुचि रखने वाले व्यक्तियों को इन संवाद लेखकों की सेवायें उपलब्ध थीं । ई0 पूर्व 60 में जब जूलियस सीजर ने रोमन साम्राज्य की परिषद का नेतृत्व संभाला तो उसने " एक्टा ड्यूना " नामक दैनिक समाचार बुलेटिन आरम्भ कराया ।[1]

" एक्टा ड्यूना " में लड़ाई, आगजनी, त्योहारों तथा जनरुचि के समाचार होते थे । उनको सार्वजनिक दस्तावेजों के रूप में तैयार किया जाता था तथा बस्तियों के प्रमुख स्थानों पर चिपका दिया जाता था जिससे लोग वहाँ एकत्र होकर समाचारों से अवगत हो सकें । कभी-कभी कुछ प्रतियाँ रोमन साम्राज्य के अन्य नगरों में भी भेजी जाती थीं । रोम में ही " एक्टा सिनेटस" में विधेयकों, भाषणों तथा रोमन सीनेट की अन्य घटनाओं की जानकारी दी जाती थी । " एक्टा पब्लिका " में आम जनता के उपयोग के समाचार होते थे । उनमें सरकार की वित्त सम्बन्धी सूचनायें भी होती थी । डोंडीधर, घंटेवाले, पत्थरों पर खुदी घोषणायें§शिलालेख§ धर्मशाला सूचना पत्रक आदि को समाचारपत्रों का आदि स्वरूप माना जा सकता है । पश्चिमी जर्मनी तथा अन्य यूरोपीय देशों में 16वीं शताब्दी के

1- डॉ0 वेद प्रताप वैदिक, हिन्दी पत्रकारिता विविध आयाम, पृ022

मेलों में तथा दुकानों पर समाचार पर्चियां बिकती थी । इन पर्चियों के माध्यम से युद्ध के समाचार, दुर्घटनाओं के विवरण, अद्भुत प्रसंग तथा राज दरबारों की रोचक घटनायें प्रकाश में लायी जाती थीं ।[1]

जर्मनी में छापेखाने के विकास के साथ ही समाचार पत्र - प्रकाशित होने लगे । 1609 ई0 आसवर्ग में प्रकाशित " अविश रिलेशन ओडरे जीटुंग " की अनेक प्रतियाँ तथा उसी वर्ष प्रकाशित " स्ट्रासवर्ग रिलेशन " की एक प्रति मिली है । 17वीं शताब्दी के अन्त तक जर्मनी को लगभग 30 दैनिकों के प्रकाशन का श्रेय प्राप्त है । इन समाचारपत्रों में बर्लिन के " बोचिस्व जीटुंग " §1704ई0§, हेमबुर्गर नारवराइरवटन § 1792ई0 § तथा अलजेमीन जीटुंग §1798ई0§ प्रमुख हैं ।

इंग्लैन्ड में 1476ई0 में छापेखाने की शुरुआत हुई । इसके पूर्व वहाँ पर समाचार पत्रों का स्थान कथा गायकों, पेशेवर संवाद लेखकों तथा विशेष अवसरों पर घटनाओं का ब्योरेवार वर्णन पर्चों ने ले रक्खा था । छापेखाने के आविष्कार के बाद भी काफी समय तक राजनीतिक और धार्मिक अशान्ति के कारण छापाखाने की सुविधा सरकार के नियंत्रण में रही । इंग्लैण्ड में पहला पत्र " न्यूज़ आफ कैंट " नाम से 1561ई0 में प्रकाशित हुआ । अनियतकालीन पत्र " द न्यूज़ " 1575ई0 में प्रकाशित हुआ था ।[2]

1620ई0 में एमस्टर्डम में अंग्रेजी का पहला नियमित समाचार पत्र छपना शुरु हुआ । बोर्न, थामस तथा नायनियल बटर तीनों इंग्लैण्ड में पत्रकारिता के अग्रणी थे । आर्चर 1621ई0 के मध्य लन्दन से " डच न्यूज़ शीट्स" नामक पत्र प्रकाशित करता था । उसकी पहचान उत्तेजनात्मक

1- डॉ0 वेद प्रताप वैदिक : हिन्दी पत्रकारिता विविध आयाम, पृ023

2- एच0एस0टेलर : द ब्रिटिश प्रेस, ए क्रिटिकल सर्वे, पृ019

– गार्जियन " का जन्म 1821ई0 में साप्ताहिक पत्र के रूप में हुआ । यह इंग्लैण्ड की लिबरल पार्टी की नीतियों का प्रबल समर्थक था । आगे चलकर सी0पी0स्काट के सम्पादकत्व में उसे विश्व व्यापी ख्याति मिली । विशुद्ध राजनीतिक पत्र के रूप में 1791ई0 में " आबजर्वर " का प्रकाशन शुरू हुआ । संडे टाइम्स 1822ई0 में निकला । 1843ई0 में " न्यूज़ आफ द वर्ल्ड " अस्तित्व में आया तथा कुछ ही वर्षों में सर्वाधिक बिक्री वाला पत्र बन गया । " लन्दन डेली एडवाइज़र " का प्रकाशन 1726ई0 से हुआ । 1785ई0 में " लन्दन डेली यूनीवर्सल रजिस्टर " छपने लगा । तीन वर्ष बाद इसका नाम " टाइम्स " कर दिया गया । इंग्लैण्ड में पत्रकारिता में विविध आयाम स्थापित करने वाले पत्रों में " मार्निंग क्रानिकल " §1769ई0§ ,"मार्निंग पोस्ट " §1772ई0§, डेली न्यूज़ §1846ई0§,"डेली टेलीग्राम" §1855ई0§ तथा डेली स्टैण्डर्ड § 1857ई0§ प्रमुख हैं ।

पहला अमरीकी पत्र 25 सितम्बर 1690ई0 को एक अंग्रेज बैंजामिन हेरिस के प्रयास से प्रारम्भ हुआ ।[1] 'पब्लिक अकरेन्सेज़ बोथ फॉरेन ऐण्ड डोमेस्टिक' में हेरिस ने फ्रान्स के सम्राट पर जब अनैतिक होने का आरोप लगाया और अंग्रेजों द्वारा फ्रांसीसी युद्ध बन्दियों पर अत्याचार की कटु आलोचना की तो चौथे दिन ही पत्र को बन्द करने का आदेश जारी कर दिया गया । "पब्लिक अकरेन्सेज़ " के साथ किये गये सरकारी व्यवहार के परिणामस्वरूप अगले 14 वर्षों तक अमरीका में कोई नया पत्र प्रकाशित नहीं हुआ । 24 अप्रैल,1704ई0 को "बोस्टन' के पोस्टमास्टर जान कैम्पबेल ने सरकारी आज्ञा लेकर " बोस्टन न्यूज़ लेटर " नामक पत्र का प्रकाशन शुरू किया । सरकारी नीतियों का समर्थक होने के कारण इसका प्रकाशन काफी समय तक होता रहा ।[2]

1– फ्रैंक लूथर माट : द स्टोरी आफ द अमरीकन न्यूज पेपर्स, पृ0 41

2– वही, पृ0 §47

अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बोस्टन और फिलाडेल्फिया से दो औपनिवेशिक पत्र प्रकाशित हुये। 21 दिसम्बर 1719ई0 को बोस्टन से "गजट" का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। यह पत्र अमरीकी क्रांति के समय ब्रिटिश-विरोधी उग्र नीति के कारण राष्ट्र भक्ति का प्रतीक बन गया।[1] 22दिसम्बर 1719ई0 को फिलाडेल्फिया से ए0 ब्रेड फोर्ड ने " वीकली मरक्युरी " नामक पत्र का प्रकाशन शुरू किया। अमरीका में पत्रकारिता के विकास में फ्रेंकलिन बन्धुओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। 7 अगस्त 1721ई0 को जेम्स फ्रेंकलिन ने " न्यू इंग्लैण्ड कोरांट" की शुरुआत की। जेम्स फ्रेंकलिन ने ही "पेनसिल्वानिया गजट " का प्रकाशन शुरू किया। 8 नवम्बर, 1725ई0 को विलियम ब्रेडफोर्ड ने " न्यूयार्क गजट " शुरू किया।[2] अमरीका में बस गये एक जर्मन जान पीटर जैंगर ने 5 नवम्बर 1733 ई0 को " न्यूयार्क वीकली जर्नल " का प्रकाशनxआरम्भ किया। गुणवत्ता के आधार पर यह शीघ्र ही ब्रेड फोर्ड के " न्यूयार्क गजट " के समकक्ष हो गया। न्यूयार्क के गवर्नर, जर्मन द्वारा प्रकाशित पत्र की उन्नति नहीं देखना चाहते थे। उन्होंने कई बार न्यायालय के माध्यम से जैंगर को नीचा दिखाने का असफल प्रयास किया। अन्त में विवश होकर गवर्नर ने अपने विशेषाधिकार का दुरुपयोग करके जैंगर को जेल भेज दिया जैंगर पर चला मुकदमा अमरीकी पत्रकारिता के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

1770ई0 तक अमरीका के उत्तरी तथा दक्षिणी उपनिवेशों से लगभग 50 समाचार पत्र प्रकाशित होने लगे थे। "मैरीलैण्ड गजट" का प्रकाशन तो अब तक निर्बाध रूप से हो रहा है। 1765ई0 में स्टाम्प ऐक्ट के विरुद्ध अमरीकी समाचार पत्रों की ऐतिहासिक लड़ाई शुरू हुई। इसके परिणामस्वरूप अमरीका में भी अंग्रेजों के विरुद्ध घृणा का वातावरण बना।

1- फ्रेंक ब्रू लूथर माट : द स्टोरी आफ द अमरीकन न्यूज पेपर्स, पृ054

2- वही, : अमेरिकन जर्नलिज्म {1690-1950} पृ0 109

1772 ई0 में " बोस्टन गजट " और " मैसेचुयेट्स स्पाय ने' तो अंग्रेजों के विरूद्ध खुला विद्रोह सा कर दिया था । समाचार पत्रों के माध्यम से क्रांति के पश्चात गणतांत्रिक व्यवस्था को ठीककरने के प्रयासों को तेज किया गया ।[1] अमरीकी पत्रकारिता के इतिहास में यह समय दलगत समाचार पत्रों के माध्यम से जनता तक पहुँचने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । क्रांति के पश्चात व्यावसायिकों से सम्बद्ध शिक्षित तथा प्रबुद्ध लोगों ने नये तरह के समाचार पत्रों का विकास किया । इस तरह के पत्रों में जून 1783ई0 में प्रकाशित बैंजामिन टावनी का " पेनसिल्वानिया इवनिंग पोस्ट " तथा "डेली एडवर्टाइजर " प्रमुख था ।

अमरीकी पत्रकारिता में 1830-1835 के मध्य एक उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ । इसी काल में अमरीका में आधुनिक तरह के समाचार पत्रों की अवधारणा का जन्म हुआ ।[2] लन्दन से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों ने सस्ते तथा समाचार-प्रधान पत्रों का आदर्श प्रस्तुत कर दिया था । इसी पृष्ठभूमि पर आधारित पत्र अमरीका में भी प्रकाशित हुये । इनमें बोस्टन से प्रकाशित ट्रांसक्रिप्ट §1830ई0§ और "मार्निंग पोस्ट " §1831ई0§प्रमुख थे । राज्यों के मध्य हुये युद्धों ने अमरीकी पत्रकारिता को परिपक्व बनाया । " सेंट लुइस पोस्ट डिस्पैच " के प्रकाशक जोसेफ पुलित्जर ने 1883ई0 में 'न्यूयार्क वर्ल्ड' पत्र का प्रकाशन शुरू किया । उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में जोसेफ पुलित्जर व न्यूयार्क जर्नल के प्रकाशक एडवर्ड हर्स्ट में उत्पन्न विवाद से अमरीकी समाचार पत्र जगत में खलबली मच गयी । इस विवाद के फलस्वरूप अमरीका में उत्तेजनात्मक पत्रकारिता विकसित हुई ।[3]

1- फ्रैंक लूथर माट : अमेरिकन जर्नलिज्म §1690-1950§ पृष्ठ 117

2- वही, पृष्ठ 123

3- वही, : द न्यूज इन अमरीका, पृष्ठ 53

भारत में आधुनिक पत्रकारिता की शुरूआत बहुत देर से हुई । प्राचीन काल में जन संचार के परम्परागत माध्यमों के अतिरिक्त सार्वजनिक स्थानों पर शिलालेखों से काम लिया जाता रहा । सम्राट अशोक ने अपने धर्म का प्रचार इन्हीं लेखों और वैयक्तिक सम्पर्क द्वारा किया था । इस दृष्टि से शिलालेख, गुहालेख तथा स्तम्भ प्रमुख थे । उत्तर प्रदेश में अशोक के शिला-लेख कालसी[1] तथा अहरौरा[2] में मिलते हैं । स्तम्भ लेख प्रयाग में है । इसके अतिरिक्त अशोक के शिलालेख शाहबाजगढ़ी (पेशावर) मान्सेहरा (एबटाबाद-पाकिस्तान), गिरनार (सौराष्ट्र), सोपरा (बम्बई के निकट), एर्रगुडि (आन्ध्र प्रदेश), जौगढ़ एवं धौली (उड़ीसा), रूपनाथ(मध्यप्रदेश), सहसराम (बिहार), बैराट(राजस्थान), गुजर्रा(म0प्र0), मास्की(आन्ध्र) ब्रहयगिरि (कर्नाटक) तथा सिद्धगिरि (कर्नाटक) आदि स्थानों में मिलते हैं । स्तम्भ लेख टोपरा (दिल्ली), लौरिया अरराज(बिहार) रामपुरवा (बिहार) सारनाथ[3](उ0प्र0), तथा साँची (म0प्र0) में मिलते हैं । अशोक कालीन शिलालेख पत्थर की मोटी पट्टियों पर ब्राह्मी लिपि में हैं । सिक्के, मुद्रायें ताम्रपत्र भी जनमत को प्रभावित करने के महत्वपूर्ण साधन थे । डुग्गी पीटने वाले, चारण, तीर्थयात्री तथा दूरस्थ प्रान्तों के व्यापारी भी समाचारों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने में सहायक सिद्ध होते थे ।

भारत में मुगलकाल में वर्तमान समय की तरह तो समाचार पत्र नहीं थे किन्तु उस समय समाचारों का विशेष महत्व था तथा उनके बारे में लोगों की पर्याप्त दिलचस्पी भी थी । उस समय समाचारों के संकलन के लिये बहुत से संवाद लेखक (निजी एवं सरकारी) सारे देश में तैनात थे । अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में तो अखबारों में जनरुचि तथा जनकल्याण के समाचारों

1- उत्तर प्रदेश के देहरादून जिले में चूहड़पुर से चकराता जाने वाली सड़क पर स्थित ।

2- उत्तर प्रदेश में मिर्जापुर-वाराणसी मार्ग पर स्थित एक कस्बा ।

3- उत्तर प्रदेश में वाराणसी से तीन मील दूर स्थित बौद्ध तीर्थ स्थान ।

को विशेष स्थान दिया जाने लगा था । मुगल काल में संवाद लेखन का उद्देश्य शासन की कार्यप्रणाली को गतिशील बनाये रखनाथा । समाचार संप्रेषण का कार्य डाक विभाग के पास था । संवाद लेखक का प्रत्यक्ष सम्बन्ध सतर्कता विभाग से होता था ।[1]

सल्तनत काल में भी सुल्तानों ने केन्द्र तथा राज्यों में गुप्तचरों तथा संवाद लेखकों का जाल बिछा रखा था । सतर्कता विभाग का प्रमुख " बरीद ए ममालिक " होता था । उसका अधीनस्थ कर्मचारी नायब कहलाता था जिसका काम विभिन्न स्त्रोतों से समाचारों का संकलन होता था । अमीरों § सामन्तों § तथा सूबेदारों की गतिविधियों तथा शक्ति पर नियंत्रण रखने के लिये सुल्तान, बरीद §गुप्तचर§ तथा सरकारी अखबार नवीसों की नियुक्ति प्रान्तों के प्रमुख कस्बों तथा बाजरों में करते थे । वे सभी तरह के आवश्यक समाचारों की सूचना सुल्तान को देते थे ।[2]

सुल्तान गयासुद्दीन बलबन के बारे में समकालीन इतिहास--कार जियाउद्दीन बर्नी ने लिखा है कि सुल्तान ने न्याय तथा कानून व्यवस्था बनाये रखने के लिये सभी महत्वपूर्ण स्थानों में गुप्तचरों की नियुक्ति की थी । वे अपना कर्तव्य पालन ठीक से कर सकें इसलिये उन्हें देखरेख के लिये बड़ा इलाका नहीं सौंपा जाता था । इन सबका सामन्तों तथा सूबेदारों पर इतना प्रभाव था कि वे किसी तरह का ग़ैर-कानूनी काम करने का साहस नहीं जुटा पाते थे । बरीद§गुप्तचरों§ के माध्यम से ही बलबन ने समाना में नियुक्त अपने पुत्र बुगरा खाँ पर कड़ी चौकसी कर रखी थी । सूबेदार द्वारा अपने एक अनुचर की हत्या कर देने का समाचार देने में विफल रहने पर बलबन ने बदायूँ§उ0प्र0§ के कई बरीदों को फाँसी दे दी थी ।[3]

1- टी0डब्लू0एरनाल्ड, : कैम्ब्रिज़ मेडिवल इन्डियन हिस्ट्री, पृ0 283

2- मो0 अजीज़ अहमद : अर्ली टर्किश अम्पायर आफ देहली, पृ0 362

3- वही, पृ0 363

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने अपनी राजनीतिक तथा आर्थिक महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिये उचित समय पर महत्वपूर्ण समाचारों को पाने के लिये सुचारू व्यवस्था की थी । मुहनीत §गुप्तचर§ उन्हें छोटे-छोटे अपराधों तक की खबर देते थे । जियाउद्दीन बर्नी ने लिखा है कि अलाउद्दीन खिलजी को अमीरों तथा वरिष्ठ अधिकारियों की घरेलू बातों तक की खबर रहती थी । वह अपने संवाददाताओं की खबरों के आधार पर सम्बन्धित व्यक्ति से स्पष्टीकरण माँगता था । अमीरों तथा अधिकारियों में इस तरह का भय व्याप्त था कि वे सार्वजनिक स्थानों तथाअपने घरों तक में कुछ कहने का साहस नहीं जुटा पाते थे । सावधानी के तौर पर वे अन्य अमीरों से अधिक -तर लिख कर ही पूछताछ करते थे । सुल्तान द्वारा मद्य निषेध लागू करने पर संवाददाताओं के भय से ही लोग उसका उल्लंघन नहीं कर पाते थे । सराय तथा अन्य सामाजिक समारोहों में अमीर आपस में कानाफूसी तक नहीं कर पाते थे । जहाँ तक बाजार नियन्त्रण का प्रश्न था, सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी को मूल्य दर तथा सामान्य अनियमितताओं की खबर हर दिन मिलती रहती थी । सुल्तान बाजार के अधीक्षक, बरीद §संवाददाता§ तथा मुहनीस §गुप्तचर§ से अलग-अलग मूल्य सूची माँगता था । सभी रिपोर्टों का तुलनात्मक अध्ययन किये जाने पर यदि कोई अन्तर पाया जाता था तो बाजार अधीक्षक को दण्ड दिया जाता था ।[1]

अलाउद्दीन खिलजी की इस चौकस व्यवस्था से बाजारों में किसी भी तरह की हेराफेरी सम्भव नहीं थी । उसे जो सूचनायें मिलती थी उसमें संवाददाताओं तथा गुप्तचरों की खबरों को वह सर्वाधिक विश्वसनीय मानता था । मुहम्मद तुगलक ने भी समाचारों से अवगत होते रहने के लिए सुचारू व्यवस्था की थी । इब्नबतूता ने अपने यात्रा विवरण तथा शहाबुद्दीन अब्दुल अब्बास अहमद ने " मसाली कुल अबसार फी ममालिक उल अमसार " में इसका

1- किशोरी शरण लाल : खिलजी वंश का इतिहास, पृष्ठ 237

उल्लेख विस्तार से किया है । इब्नबतूता के अनुसार सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक ने सल्तनत के कोने कोने का समाचार पाने के लिये व्यवस्था की थी । उसके प्रतिनिधि समाज के सभी वर्गों में रहकर उसे घटनाओं की प्रामाणिक सूचना देते थे । शहाबुद्दीन अबुल अब्बास अहमद के अनुसार सुल्तान को छोटी -छोटी घटनाओं तक की खबर समय से मिल जाया करती थी । उसके संवाद-वाहकों में कर्तव्य पालन तथा सत्यनिष्ठा का अभाव नहीं था ।[1]

सल्तनत काल में सुल्तान समाचारों से अवगत होने के लिये जो प्रबन्ध करते थे यद्यपि उससे जनसामान्य को कोई प्रत्यक्ष लाभ नहीं था किन्तु उससे अराजकता तथा विद्रोह की संभावना समाप्त होने में मदद मिलती थी जिससे अप्रत्यक्ष रूप से जनता का भी लाभ था । सुल्तानों का कठोर दण्ड विधान तथा सतर्कता संवाद लेखकों को अपना कर्तव्य पालन ठीक से करने के लिये बाध्य करता था । इस तरह शान्ति एवं कानून व्यवस्था बनाये रखने तथा प्रशासनिक स्थायित्व में संवाद लेखकों का विशिष्ट योगदान था ।

मध्यकाल में संवाद लेखक केन्द्रीकृत सरकार के संचालन में महत्वपूर्ण योगदान देते थे । जन संचार के पर्याप्त साधनों के अभाव में भी संवाद लेखक देश के दूरस्थ भागों की घटनाओं से सुल्तान को अवगत कराकर सल्तनत की अखण्डता को बनाये रखने में सहयोग करते थे । अबुल फजल ने " आइने अकबरी" में लिखा है कि संवाद सम्प्रेषण में किसी तरह की ढील बहुत मंहगी सिद्ध हो सकती है इसलिये अकबर ने सर्वाधिक विश्वस्त लोगों को इस कार्य में लगाया । निरन्तर युद्धों के कारण औरंगजेब के शासन काल में शासन प्रबन्ध में अनेक दोष व्याप्त हो गये थे किन्तु संवाद एकत्र करने की उपयोगिता को औरंगजेब अच्छी तरह समझता था । उसने अपनी वसीयत में लिखा कि " साम्राज्य के कोने कोने से प्रामाणिक समाचार मिलते रहने पर शासन का स्थायित्व निर्भर करता है । एक बार की गयी बड़ी भूल का परिणाम वर्षों भुगतना पड़ सकता है ।

1- निशीथ ओबेराय : भारत में समाचार लेखन का इतिहास, पृ0 46

शिवाजी मेरी ही असावधानी के कारण भागने में सफल रहा और इसके परिणामस्वरूप मुझे लम्बे समय तक मराठों से युद्ध में उलझे रहना पड़ा ।[1]

सल्तनत काल के बाद अपने काल में मुगल बादशाहों ने समाचार एकत्र करने की व्यवस्था में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किये । उन्होंने शाही समाचारों को लिपिबद्ध करने के लिये एक विभाग अलग से खोला । मुगल काल में समाचार भेजने वाले कर्मचारियों की चार श्रेणियां थीं । वे लिखित या मौखिक समाचार भेजते थे । लिखित समाचार भेजने वालों की तीन श्रेणियां थीं । प्रथम वाकयानवीस या वाकयानिगार जो घटनाओं का सर्वेक्षण करते थे, द्वितीय सवानीहवीस या सवानीहनिगार जो समाचारों को लिपिबद्ध करते थे तथा तृतीय खुफियानवीस जो गुप्त रूप से समाचारों का संकलन करते थे ।[2]

वाकयानवीस या वाकयानिगार सभी तरह के समाचारों का संग्रह करते थे । सवानीहनवीस या सवानीहनिगार तथा खुफिया नवीस संवाद लेखक तथा संवाददाता दोनों ही होते थे । इनका सम्बन्ध सरकारी अधिकारियों से भी होता था । केवल संवाददाता को हरकारा कहा जाता था । कहने को तो हरकारा का काम केवल समाचार भेजना था किन्तु गुप्तचरी का काम भी उसी के जिम्मे होता था । समकालीन मुगल स्रोतों से पता चलता है कि संवाद संप्रेषण की प्रक्रिया मुगल काल में विकसित थी । सियारूल मुतारवरीन के लेखक गुलाम हुसैन के अनुसार " संवाद संप्रेषण के लिये निर्धारित कार्यालय में चार प्रमुख कर्मचारी होते थे । ये वाकयानिगार सवानाहनिगार, खुफियानवीस तथा हरकारा होते थे ।[3]

1- सर यदुनाथ सरकार : औरंगजेब, पृ0 216

2- वही : मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ0 63

3- गुलाम हुसैन : सियारूल मुतारवरीन, पृ0 56

बादशाह अकबर ने अपने शासनकाल में विशेषकर आगरा के समीपवर्ती भागों में वाकयानिगारों की संख्या काफी बढ़ा दी थी। उसने ऐसा समाचारों को विस्तार से पाने के उद्देश्य से किया था। अबुल फजल ने " आइने-अकबरी" में लिखा है कि अकबर वाकयानिगारों की कार्यविधि से काफी संतुष्ट था। उनके कार्य की सफलता देखकर ही उसने उनकी संख्या में वृद्धि की थी।[1]

अकबर ने सभी सूबों में संवाद लेखकों की नियुक्ति की। उसकी व्यवस्था जहाँगीर के शासनकाल में भी लागू रही। अपनी आत्मकथा में जहाँगीर ने लिखा है कि यह नियम बना दिया गया था कि विभिन्न सूबों में नियुक्त समाचार-लेखक शासन के लिये उपयुक्त समाचार अविलम्ब भेजें। मेरे पिता ने यह प्रक्रिया प्रारम्भ करायी थी जो हर दृष्टि से शासन के लिये लाभदायक सिद्ध हुई। बहारिस्ताने गैबी का लेखक मिर्जा अकरम लिखता है कि समाचार पाने के लिये मुगलों ने जिस व्यवस्था को लागू किया वह किसी न किसी रूप में सल्तनत काल में भी थी। समाचार लेखकों को अपने सूबे तथा सूबेदारों से सम्बन्धित समाचार दरबार में भेजने होते थे। समाचार लेखक अपनी रिपोर्ट सूबेदार तक को नहीं दिखाता था। समाचार लेखकों पर इसकी निगरानी रखी जाती थी कि किसी दबाव या लोभ में गलत सूचना तो नहीं भेज रहे हैं। 1608ई - 1613ई० के मध्य बंगाल में इस्लाम खाँन सूबेदार था तो बादशाह जहाँगीर ने यागमा इसफहानी को वहाँ का समाचार लेखक नियुक्त किया था।[2] बादशाह जहाँगीर ने अपने पिता के समय से शुरू की गयी परम्परा में एक प्रमुख परिवर्तन किया। उसने विभिन्न सूबों से प्राप्त होने वाले समाचार लेखकों के विवरणों को दरबार में पढ़े जाने का आदेश दिया। "बहारिस्ताने गैबी" के लेखक मिर्जा अकरम के अनुसार जहाँगीर ने ऐसा फारस के राजदूतों को प्रभावित करने के लिये किया था।[3]

1- अबुल फजल : आइने अकबरी, पृ0 149

2- मिर्जा अकरम : बहारिस्ताने गैबी, पृ0 23

3- वही, पृ0 41

मुगलकाल में वाकयानवीस तथा सवानीहनिगार के काम का भी स्पष्ट विभाजन था । वाकयानिगार एक प्रकार से जन संवाददाता था क्योंकि उसका काम सेना । कस्बों तथा जनता के रुख का पता लगाने वाले समाचारों को भेजना था । सवानीहनिगार का काम महत्वपूर्ण कामों की विस्तृत तथा खोजपूर्ण जानकारी देना था । " मीराते अहमदी " से पता चलता है कि सवानीहनिगार का काम महत्वपूर्ण गुप्तचरों की तरह का था तथा वह वाकयानिगार की कार्यविधि पर चौकसी भी रखता था । वाकयानिगार निजी स्वार्थ, स्थानीय दबाव तथा लालच में समाचारों को कभी कभी दबा देते थे तथा उसकी सूचना तोड़ मरोड़ कर देते थे । मीराते अहमदी से यह पता नहीं चलता कि वाकयानिगार पर चौकसी रखने की जिम्मेदारी सवानीहनिगार को कब सौंपी गयी । " आलमगीरनामा" से पता चलता है कि सवानीहनिगारों के कार्यों में सामान्य परिवर्तन औरंगजेब ने किये थे । औरंगजेब के शासनकाल में सवानीहनिगारों द्वारा वाकयानिगारों की सूचना के बिना गुप्त रिपोर्ट भेजने की परम्परा शुरु हुई । यह इसलिये किया गया था जिससे किसी कारण से भी वाकयानिगार की कर्तव्यविमुखता के बाद भी शासन को सही वस्तुस्थिति का पता चल सके । सवानीहनिगारों को बाद में प्रान्तीय डाक सेवा का पर्यवेक्षक भी बना दिया गया था ।[2] ।,

अबुल फज़ल ने आइने अकबरी में लिखा है कि बादशाह ने 14 वाकयानवीसों की नियुक्ति की थी । ये सभी उत्साही, अनुभवी तथा निष्पक्ष थे । एक दिन दो वाकयानवीस काम पर आते थे । उन्हें एक सप्ताह में केवल एक दिन काम पर आना होता था । इनकी मदद के लिये अनेक लोग होते थे जिन्हें कोतल कहा जाता था ।[2]

1- पी0के0 सेन : मुगल अखबारात, पृष्ठ 63

2- अबुल फजल : आइनें अकबरी, पृष्ठ 141

अबुल फज़ल लिखता है कि दरबार में तैनात वाकयानवीसों का काम दरबार में जारी होने वाले आदेशों को लिखना होता था । वह मीर बख्शी द्वारा भेजी आख्याओं को बादशाह के समक्ष पेश होने के पूर्व लिपिबद्ध करता था । वाकयानवीस का विवरण मीर बख्शी के सामने प्रस्तुत किया जाता था । परवानची और मीर अर्ज के माध्यम से उसे बादशाह की स्वीकृति मिलती थी । इस रिपोर्ट को याददाश्त कहा जाता था । इसकी अनेक प्रतियाँ तैयार की जाती थी जिनपर वाकयानवीस, रिसाला, मीर अर्ज व दरोगा के हस्ताक्षर होते थे । अबुल फज़ल के अनुसार बादशाह अकबर चाहता था कि भ्रष्ट अधिकारियों तथा सामंतों को दण्डित किया जाये तथा निष्ठावान कर्मचारी निर्भीक होकर काम कर सकें इसलिये उसने समाचार संकलन के लिये योग्य कर्मचारियों की नियुक्ति की।[1]

मुगल काल में भारत आने वाले विदेशी यात्रियों ने भ्रमवश वाकयानवीस तथा सवानीहनवीस में अन्तर न समझकर उनके कार्यों को गलत ढंग से निरुपित किया है । डाक्टर फ्रेमर की नजर में वाकयानवीस "पब्लिक नोटरी" था । जो हर तरह के क्रय विक्रय की जानकारी शासन को देता था । बर्नियर लिखता है कि वाकयानवीस का काम हर घटना की खबर शासन को देना है । इटली के यात्री मनूची ने अपने यात्रा संस्मरण "स्टोरिया डी मोगोर§स्टोरी आफ द मुगल्स § में लिखा है कि वाकयानवीस तथा खुफियानवीस को हर तरह के समाचारों का लेखा-जोखा तैयार करके बादशाह के पास भेजना होता था । सामान्य तौर पर ये खबरे रात्रि में 9 बजे बादशाह को हरम की महिलायें सुनाती थीं । जिससे बादशाह को सारे देश के समाचार साररूप में ज्ञात हो सकें ।[2] गुलाम हुसैन ने सियारुल मुताखरीन में लिखा है कि वाकयानवीस उन्हीं कस्बों तथा नगरों में नियुक्त किये जाते थे जिनका राजनीतिक, धार्मिक तथा सुरक्षा की दृष्टि से विशेष महत्व था । केन्द्र तथा राज्य दोनों के वाकयानवीस होते थे । राज्य की अपेक्षा केन्द्र के वाकयानवीसों का दर्जा §ओहदा§ऊँचा होता था ।

1- अबुल फज़ल : आइने अकबरी, पृ0 119

वाकयानवीसों को निर्भीकता से अपना काम सम्पादित करने के लिये शासन से पूरी छूट मिली थी । वाकयानवीस केवल बादशाह के प्रति उत्तरदायी होता था किन्तु उसका काम बादशाह तथा सूबेदार में सामंजस्य बनाये रखना भी था । वाकयानवीस तथा सवानीहनिगार यद्यपि अपने विवरण अलग-अलग भेजते थे किन्तु केन्द्र में उनकी रिपोर्ट में xxxxx मिलान किया जाता था । वाकयानिगार तथा सवानीहनिगार की रिपोर्ट पर तत्काल कार्यवाही की जाती थी ।[1] वाकयानवीस की सत्यनिष्ठा को सदैव ध्यान में रक्खा जाता था । औरंगजेब ने शाहजादा मुईजुद्दीन § बाद में जहाँदार शाह§ द्वारा एक वाकयानवीस को सेना में मन्सबदार का दर्जा देने की सिफारिश तो मान ली थी किन्तु कुछ समय बाद उसे हटा दिया था क्योंकि उसकी दृष्टि में वह वाकयानवीस विवादग्रस्त था ।

समाचार लेखक का काम अत्यन्त दायित्व का होता था तथा उसमें बहुत खतरा भी था । 18वीं शताब्दी की हिदायतउल्ला बिहारी कृत हिदायतुल कवैद में लिखा है कि " वाकयानवीस का काम काफी जिम्मेदारी का होता है । उसे एक ओर तो सच्चाई का चित्रण करना होता है तो वहीं दूसरी ओर इसका भी ध्यान रखना होता था कि अनावश्यक रूप से किसी का विरोध न हो । उसे आपत्तिजनक गतिविधियों की सूचना देते समय इसका ध्यान रखना चाहिये कि उसकी सूचना पर ही कार्यवाही की जानी ~~x~~ है अतः उसमें एक तरह का संतुलन बना रहे । कर्तव्यपरायणता में बाधा पहुँचाने वाले तत्वों का सामना निर्भीकतापूर्वक करना चाहिये तथा उसकी सूचना बादशाह को अविलम्ब देनी चाहिये जिससे भ्रष्ट अधिकारी को उचित दण्ड दिया जा सके । ऐसी अनियमिततायें जिन्हें आसानी से दूर करना सम्भव है उसकी जानकारी बादशाह को देना उपयुक्त नहीं है क्योंकि सामान्य गल्तियाँ तो हर जगह सम्भव है । वाकयानवीस के पास खबरों का पक्का सबूत होना चाहिये अन्यथा प्रमाण के अभाव में वह बादशाह की नजर में गिरकर दण्ड का भागीदार बन सकता है ।[2]

1- गुलाम हुसैन : सियारुल मुताखरीन, पृ0 68

वाकयानवीस के अपने सूत्र छोटे छोटे परगनों तथा गाँवों तक में होते थे । अपने सूत्रों द्वारा दी गयी खबरों में से उसे शासनोपयोगी खबरों को चुनना पड़ता था । उसके अपने सूत्र सूबेदार, नाजिम, दीवान, फौजदार, काजी तथा कोतवाल के कार्यालयों में होते थे किन्तु इसकी जानकारी बहुत कम लोगों को ही होती थी । वाकयानवीस द्वारा संकलित समाचारों में जो केवल सूबेदार के लिये जरूरी होते थे उन्हें बादशाह के पास नहीं भेजा जाता था । बादशाह को भेजी जाने वाली खबरों की भनक भी सूबेदार को नहीं लग पाती थी । वाकयानवीस तथा सवानीहनिगार द्वारा भेजे समाचारों को मीर बख्शी बादशाह के समक्ष प्रस्तुत करता था । छोटे सूबे तथा छावनी में कभी कभी वाकयानवीस और बख्शी का पद एक ही व्यक्ति को सौंप दिया जाता था । जहाँगीर के कार्यकाल में मोहम्मद हुसैन जाहिदी उड़ीसा में वाकयानवीस तथा बख्शी दोनों का ही काम देखता था ।[1] जहाँगीर के समय में ही मीर अब्दुल जलील बिलग्रामी गुजरात व सिंध में दोनों पद का काम देख रहा था । खुफियानवीस का काम तो गुप्त सूचनायें भेजना होता था किन्तु वह एक तरह से बादशाह के गुप्तचर विभाग का अंग भी था । उसकी कार्यप्रणाली सवानीह-निगार के प्रारम्भिक कार्य जैसी निर्धारित की गई । उसकी गतिविधियों की सूचना स्थानीय अधिकारियों को नहीं रहती थी । खुफियानवीस के अपने सूत्र परगना, कस्बों तथा महत्वपूर्ण कार्यालयों में होते थे ।[2] इस प्रकार खुफिया-नवीस समाचारों से सम्बन्धित होने के बाद भी गुप्तचर विभाग से पूरी तरह सम्बद्ध था ।

हरकारा समाचार भेजने की व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग था । "मीराते अहमदी" के अनुसार हरकारा हर तरह की खबर की सूचना सूबेदार को देते थे । वे इसके बाद बादशाह के दरबार में खबर भेजने के लिए

1- टी० के० मोहंती : उड़ीसा अण्डर मुगल्स, पृ० 137

2- एन० टामस : सम आसपेक्ट्स आफ मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ०344

विवरण भी तैयार करते थे । वाकयानवीस, सवानीहनिगार तथा हरकारा के अतिरिक्त अखबारनवीस भी समाचार संकलन में सहयोग करते थे । यह पद वाकयानवीस, सवानीहनिगार तथा हरकारा के अधीन होता था ।[1]

" हिदायत उल क्वैद " के अनुसार वाकयानवीस को सप्ताह में एक बार सवानीहनिगार को सप्ताह में दो बार तथा अखबारनवीस को सप्ताह में एक बार समाचार भेजने होते थे । समाचार भेजने में वरीयता या प्राथमिकता उसी समाचार को दी जाती थी जो तत्काल भेजने योग्य होता था । इसके कुछ अपवाद भी मिलते हैं । मीराते अहमदी के अनुसार गुजरात प्रान्त से 18वीं शताब्दी में बादशाह को सप्ताह में एक बार ही समाचार भेजे जाते थे । इसमें सूबेदार और दीवान के विवरण तथा खजाने की रकम भी होती थी ।[2]

अनेक कारणवश समाचार लेखक तथा गुप्तचर समाचार भेजने में ही तत्परता नहीं बरतते थे अपितु सैनिक कार्यों की भी अपेक्षित जानकारी एकत्र करते थे । वाकयानवीस सैनिक अभियानों के साथ भी जाते थे । उन्हें दूसरे देशों में राजदूत के रूप में भी भेजा जाता था । सैनिक अभियान के साथ गये वाकया--नवीस को अपनी रिपोर्ट बादशाह को भेजने के पूर्व सेनापति को दिखाना जरूरी होता था ।[3]

वाकयानवीस, सवानीहनिगार हरकारा तथा अखबार नवीस के ऊपर दारोगा-ए-डाकचौकी होता था । वह डाक तथा गुप्तचर विभाग का अधीक्षक होता था । दारोगा-ए-डाकचौकी कभी कभी क्रूर सूबेदार से कर्तव्य-निष्ठ वाकयानवीस, सवानीहनिगार, हरकारा तथा अखबारनवीस की सुरक्षा भी करता था । दारोगा-ए-डाकचौकी पद पर कार्यरत व्यक्ति बादशाह का

1- निशीथ ओबेराय : भारत में समाचार लेखन का इतिहास, पृष्ठ 71

2- वही पृ0 73

3- वही, पृ0 74

अत्यन्त विश्वासपात्र तथा निकट का होता था । डाक विभाग का प्रभारी होने के कारण वह शाही दरबार से सूबों को भेजी जाने वाली डाक का महत्वपूर्ण काम देखता था ।[1] डाक में फरमान, रुक्का, निशान, हस्बे हुक्म, सनद परवाना तथा दस्तक भेजे जाते थे । वाकयानवीस, अखबारनवीस तथा सवानीहनिगार अपनी रिपोर्ट लिखकर दारोगा-ए-डाक चौकी को भेज देते थे । दरबार में पहुँचने के पहले तक इस रिपोर्ट को न तो कोई खोल सकता था और न पढ़ सकता था । इन रिपोर्टों को भेजने में तत्परता बरती जाती थी । कुछ विशेष प्रकार की रिपोर्टों के लिफाफों को केवल बादशाह ही खोल सकता था । ऐसी रिपोर्ट के विवरण को आमतौर पर गुप्त रक्खा जाता था । वाकयानवीस की रिपोर्ट समय से भेजने में डाक चौकियों पर तैनात हरकारों तथा द्रुत गति से भागने वाले घोड़ों की भूमिका महत्वपूर्ण होती थी ।[2]

मुगल काल में आगरा तथा दिल्ली के निकटवर्ती क्षेत्रों में सुरक्षा व्यवस्था को चुस्त बनाये रखने के लिये वाकयानवीस तथा अखबारनवीसों की सहायता के लिये डाक विभाग के विशेष कर्मचारी, घुमक्कड़ व्यापारी, फेरी लगाकर सामान बेचने वाले, चिकित्सक तथा गुलाम युवतियाँ होती थी । वाकयानवीस तथा खुफियानवीस के अतिरिक्त पूर्ण कालिक गुप्तचर भी सूचनायें संकलित करते थे । अखबारनवीस तथा वाकयानवीसों का दर्जा पूर्णकालिक गुप्त--चरों से बड़ा होता था । कतिपय कारणवश औरंगजेब ने आगरा और दिल्ली के आसपास वाकयानवीसों की तुलना में पूर्णकालिक गुप्तचरों को अधिक महत्व दिया था ।[3] उसे भय था कि वाकयानवीस के पदों पर काफी पहले से काम

1- निशीथ ओबेराय : भारत में समाचार लेखन का इतिहास, पृष्ठ 77

2- एस0के0 बनर्जी : कम्यूनीकेशन सिस्टम इन मेडिवल इण्डिया, पृ029

3- वही पृ03।

कर रहे लोगों की सत्यनिष्ठा संदिग्ध हो सकती है और वे निजी स्वार्थ तथा स्थानीय दबाव के कारण गलत सूचनायें भी दे सकते हैं । औरंगजेब के समय में यह स्थिति विशेष रूप से उस समय हुई जब शिवाजी आगरा से भागने में सफल हो गये थे । औरंगजेब ने अपने शासनकाल में मुगल शहज़ादों, उनकी सेवा के लिये नियुक्त कर्मचारियों तथा राजपूत सेनापतियों के बारे में महत्वपूर्ण खबरें देने के विशेष निर्देश वाकयानवीस, अख्बारनवीस,सवानीह-निगार, हरकारों तथा पूर्णकालिक गुप्तचरों को दिये थे ।[1]

वाकयानवीस, अखबार नवीस, सवानीहनिगार तथा गुप्तचरों के अतिरिक्त नगरों तथा कस्बों में समाचार संकलन का काम कुछ वेतनभोगी विशिष्ट कर्मचारी करते थे जिन्हें हलालखोर या सफाई कर्मचारी कहा जाता था । हलालखोर शहर कोतवाल अथवा नगर पुलिस को भी महत्वपूर्ण सूचनायें देने का काम करते थे । इटली के यात्री मनूची ने अपने यात्रा विवरण " "स्टोरिया डी मोगोर " में लिखा है कि मुगलकाल में हलालखोर घर घर की जानकारी रखने वाले महत्वपूर्ण कर्मचारी होते थे । सफाई करने के लिये मुहल्लों तथा घरों में गये हलालखोर जनसाधारण तथा स्थानीय घटनाओं की महत्वपूर्ण जानकारी रखते थे ।[2]

मुगलकाल में अख्बारनवीस, वाकयानवीस तथा सवानीहनिगार की मदद के लिये महिला कर्मचारी भी होती थीं । इन महिला कर्मचारियों की पैठ शाही हरम तक होती थी । औरंगजेब के समय में शहज़ादा मुअज्जम के महल की अधीक्षिका §महलदार§ हामिदा बानू थी । 1687 से 1695 तक कैद रहने के बाद मुअज्जम को जब 1696 में मुल्तान का सूबेदार बनाया गया तो हमीदा बानू के माध्यम से प्राप्त सूचना के आधार पर वाकयानवीस ने बादशाह औरंगजेब को सूचित किया कि शहज़ादा मुअज्जम रात में अपने सोने

1- जी०एच०खरे : न्यूज़ लेटर्स आफ द मेडियल पीरियड, पृष्ठ 147

2-सं०डा०एस०पी०सेन : न्यूज राइटर्स इन मुगल इंडिया§द इंडियन प्रेस§पृ०113

के कमरे में कलम, दावात तथा कागज़ लेकर जाता है । वाकयानवीस ने यह संदेह भी व्यक्त किया कि मुअज्जम गुप्त पत्र रात में ही लिखता है । इस तरह वाकयानवीस, अखबारनवीस, सवानीहनिगार तथा हलालखोर शासन की " आँख और कान " का काम करते थे ।[1]

अपरिहार्य कारणों से मुगलकाल में समाचार संकलन के लिये वाकयानवीसों को अरब, फारस तथा टर्की में भेजना सम्भव नहीं था । इन देशों में व्यापार के लिये जाने वाले व्यापारियों से महत्वपूर्ण सूचनायें एकत्र की जाती थी । औरंगजेब द्वारा सूरत में नियुक्त अत्यन्त विश्वस्त वाकयानवीस इन व्यापारियों से सीधा सम्बन्ध बनाये रखते थे । शासन के हित में महत्वपूर्ण समाचारों से अवगत होने के लिये बादशाह ने व्यापक प्रबन्ध किये थे किन्तु शाहज़ादों, सामन्तों तथा सम्पन्न व्यापारियों ने भी अपने हित के समाचारों के संकलन के लिये विभिन्न नगरों में अपने प्रतिनिधि नियुक्त कर रखे थे । मीराते अहमदी के अनुसार रजवाड़ों तथा प्रमुख व्यवसायियों के यहाँ भी मुख्य शहरों में अखबारनवीस रखने की परम्परा थी ।[2]

विस्तृत मुगल साम्राज्य में संचार और यातायात के साधनों के अभाव में समाचार संकलन तथा सम्प्रेषण अत्यन्त कठिन काम था । मुगल बादशाहों ने अखबारनवीसों तथा वाकयानवीसों की नियुक्ति शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने तथा उच्चाधिकारियों के आपसी वैमनस्य और षड्यंत्रों का पता लगाने के लिये की थी । मुगलकाल में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं कि केवल अखबारनवीस तथा वाकयानवीस द्वारा प्रेषित खबर के आधार पर अनेक सूबेदारों, दीवानों तथा बख्शियों के तबादले किये गये तथा कुछ के विरुद्ध कार्यवाही भी की गई । समाचार संप्रेषण की व्यवस्था इस तरह की गई थी कि वह युद्ध तथा शान्ति दोनों में समानरूप से प्रभावी बनी रहे ।

1- सं0 डॉ0 एस0 पी0 सेन : न्यूज राइटर्स इन मुगल इंडिया
§ द इन्डियन प्रेस § पृ0 114

2- वही पृ0 115

समाचार संकलनकर्ताओं की नियुक्ति केन्द्र, राज्य, जिला, कस्बा तथा परगनों में की गई थी । कार्य तथा स्थान को ध्यान में रखकर उनकी श्रेणियाँ भी निर्धारित की गयी थीं ।[1]

मुगलकाल में संवेदनशील स्थानों में सामान्यतया अधिक संख्या में अखबारनवीस तैनात किये जाते थे । भौगोलिक तथा सैनिक महत्व के स्थानों को वरीयता दी जाती थी । मुगलकाल में किसी भी बादशाह के कार्यकाल में अखबारनवीसों की निश्चित संख्या का पता नहीं चलता है । दानिशमंद खाँ के अनुसार 1708-1709 ई0 में बादशाह की सेवा में 4 हजार अखबारनवीस कार्यरत थे किन्तु साम्राज्य की विशालता को देखते हुये यह संख्या कम प्रतीत होती है । फादर फ्रांसिस काटरोउ लिखा है कि मुगलकाल में वाकयानवीस और अखबारनवीस देश के हर भाग में थे । उनके भेजे समाचारों को प्रमुखता दी जाती थी । यह व्यवस्था अपने में इसलिये अनूठी थी क्योंकि अखबारनवीसों को स्थानीय गुप्तचर विभाग का पूर्ण सहयोग ॿ मिलता था ।[2]

इटली के यात्री मनूची के यात्रा विवरण से पता चलता है कि अखबारनवीसों के क्रियाशील होने से अमीरों, उच्च पदाधिकारियों तथा जनसाधारण में भय का वातावरण बना रहता था । वे सार्वजनिक स्थानों में तो दूर अपने घरों में भी शासन की आलोचना करने का साहस नहीं जुटा पाते थे । अगर वाकयानवीसों के विवरण किसी तरह सुरक्षित रह पाते तो उस काल का इतिहास जानने के वे महत्वपूर्ण स्रोत होते किन्तु इस व्यवस्था के बारे में हमें फारसी के अभिलेखों, यूरोपीय कारखानों के दस्तावेजों तथा विदेशी यात्रियों के यात्रा विवरणों से सामान्य जानकारी ही मिल पाती है ।

मध्यकालीन इतिहासविद् डाक्टर बेनीप्रसाद के मत में जहाँगीर के शासनकाल में संवाददाता केवल राजनीतिक तथा प्रादेशिक महत्व के ही समाचार नहीं भेजते थे अपितु वे सामान्य लोकरुचि,सनसनीखेज तथा आर्थिक समाचार भी शाही दरबार को भेजते थे ।[3]

1- एस0के0बनर्जी : कम्यूनीकेशन सिस्टम इन मेडिवल इण्डिया, पृ0 39

मोतामद खाँ तथा बादशाह जहाँगीर के विवरणों से पता चलता है कि अखबारनवीस वे सभी खबरें भेजते थे जिन्हें देखते या सुनते थे । इसमें लाहौर में फलों के विवरण तथा कश्मीर में मुल्ला गदाई दरवेश को दफनाये जाने तक के समाचार होते थे ।

शाहजहाँ के शासनकाल में जब औरंगजेब दक्षिण में सूबेदार था तो उसने बादशाह को खत भेजकर सूचित किया कि इस समय बुरहानपुर में "शाहपसंद" किस्म के आम उपलब्ध नहीं है । औरंगजेब ने अपने खत में यह भी लिखा कि इसके बारे में सम्भवतः स्थानीय वाकयानवीस ने भी लिखा होगा । औरंगजेब के समय में जौनपुर में तैनात वाकयानवीस सैय्यद मीर हबीबुल्ला ने औरंगजेब को सूचना भेजी कि जजिया वसूलने वाले अमीन ने खजाने से धोखा-धड़ी करके 40 हजार रुपये निकाल लिये हैं । सूबेदार ने इस धन की वसूली के लिये साजावाल {संग्राहक} नियुक्त किया है । औरंगजेब ने उक्त धन की वसूली उचित नहीं समझी क्योंकि अमीन ने सारा धन और अपनी सम्पत्ति धार्मिक कार्यों तथा गरीबों की मदद के लिये खर्च कर दिया था ।[1]

गुजरात से एक वाकयानवीस ने औरंगजेब के शासनकाल में समाचार भेजा कि सरकारी डाक तथा बादशाह के लिये फल तथा उपहार लेकर जाने वाले शाही कर्मचारी कभी कभी गाँव वालों को लूट लिया करते थे । वाकयानवीस के समाचार के आधार पर शाही कर्मचारियों को कठोर निर्देश दिये गये कि भविष्य में शिकायत मिलने पर कठोर कार्यवाही की जायेगी ।[2]

1- युसुफ हुसैन खाँ : सेलेक्टीन्ड सैंचुरी वाकये {इस्लामिक कल्चर 1954} पृष्ठ 34

2- वही पृष्ठ 37

वाकयानवीसों द्वारा भेजे गये सैनिक समाचार भी महत्त्व के होते थे। नांदेर में तैनात अखबारनवीस ने बादशाह औरंगजेब को समाचार भेजा कि सैय्यद हसन अली खाँन बारहा {बाद में फर्रुखसियर का वजीर} ने मराठा सेनापति हनुमंत के साथ वीरतापूर्वक युद्ध किया तथा उसे बलात मुसलमान बना लिया है। नांदेर के सूबेदार जुल्फिकार खाँन नुसरत जंग ने उसकी पदोन्नति की संस्तुति भी की किन्तु औरंगजेब ने उसे केवल उपहार भेजे और उसकी पदोन्नति करना स्वीकार नहीं किया क्योंकि औरंगजेब बारहा के सैय्यदों को बढ़ावा देने के पक्ष में नहीं था। इसी तरह खेलना के वाकयानवीस ने बादशाह औरंगजेब को सूचना भेजी कि खेलना में राजपूत राजा के दुर्ग के रक्षक {पेशादस्त} परशुराम ने मुगलों को किला सौंप देने का निर्णय किया तो राजपूत राजा के सैनिक अधिकारियों ने उसे गिरफ्तार करके कैदखाने में डाल दिया।[1]

हैदराबाद के मुख्य अभिलेखागार में सुरक्षित 1660-1671ई0 के मध्य हैदराबाद, औरंगाबाद, दौलताबाद, रामगीर, बरार, परेन्दा, अहमद-नगर, कल्याण, फतेहाबाद {धरौर}, सूपा, बगलाना, उदगीर, जालना तथा जन्नीर से वाकयानवीसों द्वारा भेजे रोजनामचों {दैनिक खबरों} का संकलन है। इनसे 17वीं शताब्दी के दक्षिण की आर्थिक, राजनीतिक तथा प्रशासनिक स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इन रोजनामचों में विशेषकर वकीलों तथा दूतों के दौरे तथा विभिन्न देशों के व्यापारियों के विवरण तथा उनके बारे में स्थानीय अधिकारियों की टिप्पणियाँ हैं। इन अभिलेखों से दक्षिण में सेना की तैनाती तथा सेना को रसद आपूर्ति की व्यवस्था का भी पता चलता है। इसके अतिरिक्त खजाने में रोजाना जमा की जाने वाली धनराशि के विवरण, शाही सैनिक दस्ते की देखरेख में खजाने को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने, अदालतों में मुकदमों की कार्यवाही, मनसबदारों को –

1- एस0के0 मीणा : हिस्ट्री आफ द मारवाड़, पृ0 29।

जागीर देने के सम्बन्ध में किये गये कारनामे, मनसबदारों की पदोन्नति, पदावनति तथा तबादले, जरूरी कागजातों को गुप्त तरीके से भेजे जाने की प्रक्रिया, सामंतों को सम्मानित किये जाने से सम्बन्धित प्रक्रिया, सैनिक सामानों का निरीक्षण, बादशाह को भेजे जाने वाले उपहारों का विवरण, हाथियों की खरीद, घोड़ों को दागने के निर्देश, हीरे की खानों से होने वाली आय का विवरण, तीरंदाजी तथा निशानेबाजी के अभ्यास, मनसबदारों के निधन के बाद उनकी सम्पत्ति की देखरेख की व्यवस्था तथा सैनिक अधिकारियों पर पाबंदी तथा उनके तबादलों के बारे में भी पता चलता है ।[1]

मुगलकाल में वाकयानवीस सेना के आन्तरिक अनुशासन, राजपूत, मराठों, जाटों तथा सिखों की सैनिक तैयारियों तथा संदिग्ध गतिविधियों वाले शाहजादों से मिलने वालों की भी खबर रखते थे । विभिन्न राज्यों में नियुक्त वाकयानवीस सोने और चाँदी का मूल्य, उनकी बिक्री और खरीद के आँकड़े तथा विभिन्न खाद्य पदार्थों की मूल्य सूची भी बादशाह के पास भेजते थे । वाकयानवीसों की रिपोर्टों से ही पता चलता है कि पगोड़ा, शाहजहाँनी, आलमगीरी, महमूदी, चंगेजखानीं, मुजफ्फरी, मीरनशाही, चालनी, औरंगशाही, बेरारी तथा गोलकुंडी अलाई तरह के रूपये, सिक्के और अशर्फी प्रचलित थी ।[2]

मुगलकाल में किसी के निधन के समाचार को प्रेषित करने में विशेष तत्परता दिखायी जाती थी । देशाटन के लिये निकले यात्रियों की मार्ग में हुई मृत्यु के समाचार भी शाही दरबार को भेजे जाते थे । वाकयानवीसों को निष्पक्ष समाचार भेजने के इतने कठोर निर्देश थे कि वे चाहकर भी सूबेदारों, शाहजादों तथा सामंतो की त्रुटियों को छिपाने का प्रयास नहीं करते थे । अकबर के शासनकाल में पंजाब के सूबेदार हुसैन कुली खान महराम को वाकयानवीस द्वारा भेजी खबरों के आधार पर ही हटाया

1- टी0एस0 महापात्र , ए बिबलियोग्राफी आफ मैडिवल इण्डिया, पृ0116

2- आफताब हैदर बैदी, क्वाइन्स आफ मैडिवल पीरियड, पृ06।

गया था । इसी तरह दिल्ली के एक कर-संग्राहक {अमलगुजार} के खिलाफ उच्च राजस्व अधिकारियों ने जाँच वाक्यानवीस द्वारा भेजी शिकायत पर की थी । करोरी के पद पर थानेश्वर में तैनात शेख सुल्तान के विरुद्ध अखबार-नवीस ने गम्भीर किस्म की रिपोर्ट बादशाह अकबर को भेजी तो शेख सुल्तान को आरोप सही पाये जाने पर फाँसी दे दी गई ।[1] बैरम खाँ के प्रपौत्र तथा अब्दुल रहीम खानखाना के पुत्र द्वारा एक काज़ी पर कातिलाना हमले की खबर अखबारनवीस के माध्यम से जब बादशाह को मिली तो उसे तत्काल दण्डित किया गया ।[2] गुजरात के सदर हाजी इब्राहीम सरहिन्दी, सियाल-कोट के पास सादिक खान के प्रतिनिधि शिकदार उल्लाह बरदी को गम्भीर किस्म के आरोपों के जुर्म में मृत्युदण्ड की सजा दी गयी । ये मामले अखबार-नवीस तथा वाक्यानवीसों ने बादशाह तक पहुँचाये थे । मुगलदरबार में अंग्रेजों के राजदूत से सूरत में मुकर्रब खाँन ने दुर्व्यवहार किया, हाकिन्स ने आगरा आकर इसकी शिकायत बादशाह जहाँगीर से की । उसे तब बहुत आश्चर्य हुआ जब उसे यह पता चला कि उससे सम्बन्धित घटना की सूचना वाक्यानवीस के माध्यम से बादशाह को पहले ही मिल चुकी है ।

बादशाह जहाँगीर ने 1612ई0 में आगरा से दूरस्थ प्रान्तों में तैनात शाहजादों, अधिकारियों तथा सामन्तों को निर्देश दिये थे कि वे अपने विशेषाधिकारों का दुरुपयोग न करें । बादशाह ने यह निर्देश इसलिये दिया था क्योंकि वाक्यानवीसों द्वारा देश के कोने कोने से इस आशय की शिकायतें मिल रही थी । जहाँगीर वाक्यानवीसों तथा सवानीहनिगारों की रिपोर्ट पर तत्काल कार्यवाही करता था । उसने जनता को परेशान करने के

1- के0 बी0 प्रधान , हिस्ट्री आफ ला एण्ड जस्टिस इन इण्डिया, भाग 2, पृष्ठ 172

2- वही, पृष्ठ 179

आरोप में पंजाब के सूबेदार सैदखाँन को चेतावनी दी थी । मुकर्रब खाँन द्वारा जनता से निर्दयता से पेश आने के कारण जहाँगीर ने उसका मन्सब घटा दिया । थट्टा के सूबेदार मिर्जा रूस्तम के विरूद्ध वाकयानवीस ने जब जनता पर अत्याचार करने के सम्बन्ध में बादशाह को अवगत कराया तो रूस्तम खान को तत्काल गिरफ्तार करके शाही कैदखाने में डाल दिया गया । इसी आरोप में जहाँगीर ने किल्च खाँ को जौनपुर से वापस बुला लिया तथा उड़ीसा के सूबेदार राजा कल्याण के खिलाफ जाँच करायी । भ्रष्टाचार तथा जनशोषण करने की शिकायत मिलने पर जहाँगीर ने गुजरात के सूबेदार - अब्दुल्ला खाँन फिरोज जंग के विरूद्ध जाँच करने के लिये दियानत खाँन को भेजा और आरोप सही पाये जाने पर न केवल अब्दुल्ला खाँन फिरोज जंग को वापस बुला लिया अपितु उसे अपमानित भी किया । वाकयानवीस द्वारा यह समाचार मिलने पर कि शाहजादा खुर्रम §शाहजहाँ§ अपने समर्थकों द्वारा अंग्रेज व्यापारियों को सताता है तो जहाँगीर ने शाहजहाँ को निर्देश दिया कि वह ऐसा न करे ।[1]

बुरहानपुर में शाहजहाँ द्वारा नियुक्त वाकयानवीस मीर नासिर ने एक बार यह समाचार भेजा कि दक्षिण के सूबेदार शाहजादा औरंगजेब ने स्थानीय शाही कारखाने के अधीक्षक को धमकाकर वहाँ के बुनकरों को अपने कारखाने में लगा दिया है । इससे शाही कारखाने तथा शाहजादी जहाँआरा के कारखाने में उत्पादन प्रभावित हो रहा है । शाहजहाँ ने इस पर आक्रोश व्यक्त करते हुये औरंगजेब से स्पष्टीकरण माँगा ।[2] औरंगजेब ने व्यक्तिगतरूप से जहाँआरा से मिलकर इस सम्बन्ध में अपनी सफाई दी । जहाँआरा ने अन्त में शाही दीवान अल्लामी सईदुल्ला खाँन से मिलकर मामले का निपटारा कराया ।[3]

1- प्रकाश सूद, मुगल अखबारात ए स्टडी, पृ0 17

2- वही, पृ0 15

3- टी0एन0 जाधव, एडमिनिस्ट्रेटिव पालसीज़ आफ ग्रेट मुगल्स, पृ0 107

इतना ही नहीं मुगलकाल में अखबारनवीसों की खबरों पर सामाजिक तथा चरित्रगत दोषों के कारण उच्चाधिकारियों को दण्डित भी किया गया । बादशाह अकबर ने हाफिज कासिम नामक अपने एक उच्चा--धिकारी को एक कश्मीरी महिला के साथ दुर्व्यवहार करने के आरोप में दण्डित किया । जहाँगीर ने तो शिकायत मिलने पर काम्बे के सूबेदार मुकर्रब खान का मन्सब घटा दिया तथा घटना के लिये जिम्मेदार मुकर्रब खान के अनुचर को मृत्युदण्ड दे दिया । उस पर एक विधवा की पुत्री को यातना देकर मार डालने का आरोप था । जहाँगीर के समय में सिंध के सूबेदार इज्जत खाँन ने एक धनी व्यापारी की पुत्री को ब्र जबरन अपने महल में बुलाया तथा उसके बाद उसे गायब करा दिया । वाकयानवीस से मिली इस आशय की खबर के बाद जहाँगीर ने इज्जत खान को सूबेदार के पद से हटा दिया तथा उसका ओहदा भी घटा दिया ।[1]

राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली में काफी संख्या में औरंगजेब-कालीन वाकयानवीसों की रिपोर्ट सुरक्षित है । ये रिपोर्ट अधिकांशतः काबुल, गजनी, गुजरात, बंगाल, नांदेर तथा मुसुलीपट्टम की हैं । कुछ रिपोर्ट ऐसी हैं जिनसे शाही सेना की अंतरंग बातों का स्पष्ट विवरण है । इन रिपोर्टों को भेजने वाले वाकयानवीसों के नाम मोहम्मद आजम, जुल्फिकार नसरत जंग, फिरोज जंग तथा हामिद खान मिलते हैं । अहकामें आलमगीरी में अखबारनवीसों वाकयानवीसों तथा सवानीहनिगारों की साहसिक तथा निष्पक्ष रिपोर्ट के अनेक उद्धरण मिलते हैं । शाहजादों तथा सामन्तों के विलासितापूर्ण जीवन, कर्तव्यविमुखता, शाहजादों की आपसी कलह, सामन्तों की क्रूरता तथा उनकी अवैध गतिविधि, सीमान्तप्रदेशों के सूबेदारों की लापरवाही तथा विदेशी आक्रमण की संभावनाओं पर भी शाही दरबार में वाकयानवीसों की रिपोर्ट पर विशेष ध्यान दिया जाता था ।[2]

1- टी० एन० जाधव, एडमिनिस्ट्रेटिव पालसीज आफ ग्रेट मुगल्स, पृ०111

2- वही, पृ० 129

शाहजादा मोहम्मद मुअज्जम को मई 1698 ई० में अफगानिस्तान का सूबेदार नियुक्त किया गया था । उसने अपने दरबार में चार नगाड़े बजवाने शुरू किये तो औरंगजेब ने वाकयानवीस द्वारा भेजी खबर के आधार पर शाहजादा मुअज्जम से दीवान के माध्यम से स्पष्टीकरण माँगा और निर्देश दिया कि दरबार में चार नगाड़े केवल शाही दरबार में बजवाये जा सकते हैं वह केवल ढोलकों का प्रयोग कर सकता है । इसी तरह काबुल के वाकयानवीस ने कुछ दिनों बाद यह खबर भेजी कि मोहम्मद मुअज्जम [बहादुर शाह प्रथम] ने बैठने के लिये एक मंच बनवाया है जो भूमि से लगभग एक गज ऊँचा है । औरंगजेब ने यह खबर मिलने के बाद पत्र के माध्यम से मुअज्जम को काफी लताड़ा और मंच तत्काल गिरा देने का निर्देश दिया । बंगाल के सूबेदार इब्राहिम खाँन [1691-98 ई०] के बारे में वाकयानवीस ने औरंगजेब को सूचना भेजी कि वह मोटे गद्देदार ऊँचे तख्त पर बैठकर कामकाज देखता है जबकि काजी तथा अन्य वरिष्ठ पदाधिकारी जमीन पर कालीन बिछाकर बैठते हैं । इस पर बादशाह औरंगजेब ने इब्राहीम खाँन को लिखा कि अगर तुम किसी खास बीमारी सम्भवतः बवासीर के कारण जमीन पर नहीं बैठ पाते हो तो तुम्हें ठीक होने तक तख्त पर बैठने की छूट दी जा सकती है परन्तु तुम शीघ्र ही अपनी बीमारी का इलाज करा लो । औरंगजेब ने उस वाकयानवीस की पदोन्नति करके 100 पैदल सैनिकों का फौजदार बना दिया । औरंगजेब वाकयानवीसों की अन्य पदों पर कभी कभी इसलिये भी पदोन्नति कर दिया करता था जिससे कि वह यह अनुभव करें कि दूसरा वाकयानवीस भी उनके विरुद्ध खबर भेज सकता है ।[1]

औरंगजेब ने अपनी शंकालु प्रवृत्ति के कारण वाकयानवीसों तथा अखबारनवीसों को अपने शाहजादों तथा सेना से सम्बन्धित छोटे-छोटे समाचारों तक को भेजने के निर्देश दिये थे । एक वाकयानवीस ने बादशाह को यह समाचार भेजा कि शाहजादा मुहम्मद आजमशाह नाजिर और महलदार की उपेक्षा करके नित्य सायंकाल पन्हाला किले की ओर जाता है ।

1- प्रकाश सूद , मुगल अखबारात - ए स्टडी, पृष्ठ 43

औरंगजेब ने समाचार भेजने वाले वाकयानवीस बहरोज़ खाँन की तारीफ करते हुये मुहम्मद आज़मशाह को आवश्यक निर्देश भेजे ।[1]

1701-1705 ई० के मध्य गुजरात के सूबेदार ने किसी बात पर नियम का उल्लंघन करते हुये महलदार नूरुन्निसा से झगड़ा कर लिया । वाकयानवीस ने इस घटना से बादशाह को अवगत करा दिया । औरंगजेब ने प्रादेशिक मनसबदारों, ख्वाजा कुली खाँन और नरवर के राजा को आदेश दिया कि सूबेदार को घोड़े पर न बैठने दिया जाये और न ही उसे जनता से मिलने के लिये दरबार लगाने दिया जाये । उसने सूबेदार के वेतन से 50 हजार रूपये की कटौती करने का भी आदेश दिया । सूबेदार के माफी माँगने के बाद भी उसे सबक सिखाने के लिये औरंगजेब ने पाबन्दियाँ कुछ समय तक लागू रक्खीं ।[2]

मराठा सेनापति धनाजी दाल्वे ने अहमदाबाद से सूरत जाने वाले मार्ग पर कुछ धनी व्यापारियों को लूट लिया था । सूबेदार शाहजादा आजम को इसकी खबर एक वाकयानवीस के माध्यम से मिली । व्यापारियों के लुटने का स्थान अमानत खान की फौजदारी में पड़ता था इसलिये शाहजादा आजम ने कोई कार्यवाही नहीं की । औरंगजेब को जब इसकी सूचना मिली तो सबसे पहले उसने शाहजादा आजम का ओहदा घटा दिया और व्यापारियों को तत्काल शाही खजाने से क्षतिपूर्ति देने को कहा । औरंगजेब ने शाहजादा आजम पर अदूरदर्शिता तथा कर्तव्यविमुखता का आरोप लगाया ।[3]

1- प्रकाश सूद , मुगल अखबारात - ए स्टडी, पृ0 45

2- सर विलियम नोरिस, औरंगजेब एण्ड लेटर मुगल्स, पृष्ठ 219

3- वही, पृष्ठ 221

औरंगजेब के शासनकाल में ही 1691 ई0 में असद खाँन तथा नुसरतजंग ने जिन्जी के किले पर कब्जा किया । नुसरत जंग ने शाहजादा से कहा कि 5 हजार मराठा छापामार मुगल सेना पर घात लगाने के लिये घूम रहे हैं इसलिये सावधान रहना चाहिये । मुगल शाहजादा गुप्त रूप से मराठों से मिला हुआ था । उसने नुसरत जंग के पिता असद् खाँन से न केवल दुर्व्यवहार किया बल्कि उसे बन्दी बनाने का भी षडयंत्र किया । शाहजादा की नीयत का पता लगने पर असद खाँन ने वाक्यानवीस को बुलवाया और उसे एक प्रत्यक्षदर्शी की हैसियत से हाथी पर बिठा कर ले गया । असद् खाँन राव दलपत बुंदेला के साथ गया और शाहजादा का तम्बू आदि उखाड़ कर फेंक दिया तथा शाहजादा को लगभग नजरबन्द सा कर लिया । औरंगजेब को जब इस घटना का पता चला तो उसने असद् खाँन की कार्यवाही को उचित करार दिया । इस घटना से वाक्यानवीस के कार्य का महत्व स्वतः स्पष्ट हो जाता है । एक अन्य वाक्यानवीस की रिपोर्ट से पता चलता है कि 1690 ई0 राजाराम जाट के खिलाफ सैनिक अभियान के दौरान सिनसानी किले के लिये एक मुगल शाहजादे ने कायरता का परिचय दिया तो वाक्यानवीस से खबर मिलते ही बादशाह औरंगजेब ने शाहजादा की कर्तव्यविमुखता के आरोप में उसकी आधी जागीर छीन ली ।[1]

बादशाह औरंगजेब नितान्त पारिवारिक मामलों में भी नाजिर तथा महलदार से खबर देने की अपेक्षा करता था । नाजिर और महलदार अंतःपुर §हरम§ में वाक्यानवीस के महत्वपूर्ण तथा विश्वसनीय सूत्र होते थे । एक मुगल शाहजादे की बेगम का नाम शमुन्निसा उर्फ पूती बेगम था । शाहजादे व बेगम के सम्बन्ध इसलिये भी तनावपूर्ण हो गये थे क्योंकि शाहजादा उसे चाची की बेटी कहकर पुकारता था ।

1- सर विलियम नोरिस, औरंगजेब एण्ड लेटर मुगल्स, पृ0 226

— बादशाह को जब अन्य सूत्रों से इसका पता चला तो शाहजादे को उसने समझाया और बेगम से उसका समझौता कराया । औरंगजेब ने महलदार, नाज़िर तथा वाकयानवीस को यह समाचार न बताने के कारण चेतावनी दी ।[1]

वाकयानवीस तथा अखबारनवीस सैन्य गतिविधियों तथा अनुशासन की सूचनायें भी भेजते थे । औरंगजेब के एक सैनिक पदाधिकारी ने मुहम्मद आकिल नामक एक सैनिक पर राहजनी के आरोप में मुकदमा चलाया । इसकी खबर जब वाकयानवीस के माध्यम से बादशाह को मिली तो उसने फिरोज जंग खान को निर्देश दिया कि मुकदमा इस्लामी कानून के अनुसार चलाया जाना चाहिये और बिना ठोस प्रमाण के सजा देना उचित नहीं होगा ।[2]

मीर मलिक हुसैन बहादुर खाँन §1673ई0§ तथा जफर जंग §1675ई0§ औरंगजेब के शासनकाल में पंजाब के सूबेदार रह चुके थे । इन दोनों को औरंगजेब ने वाकयानवीस द्वारा भेजे समाचार के आधार पर भ्रष्टाचार के आरोप में हटाया था । इसी तरह औरंगजेब के विश्वस्त सैनिक अधिकारी हामिदउद्दीन खान बहादुर ने अचानक अपने पद से त्याग पत्र दे दिया तो उसके त्यागपत्र का कारण वाकयानवीस की रिपोर्ट से ही पता चल सका ।[3]

1- प्रकाश सूद, मुगल अखबारात - ए स्टडी, पृ0 53

2- वही, पृ0 57

3- वाकयानवीस यार अली बेग ने बादशाह को लिखा कि हमीदुद्दीन ने इसलिये इस्तीफा दिया था क्योंकि मुहम्मद मुराद ने उसे कमीना व गुलाम कहकर अपमानित किया था । एम0अतहर अली, मुगल नोबिलिटी अण्डर औरंगजेब, पृ0 203,

औरंगजेब के समय में ही मिर्जा तुफक्कुर {औरंगजेब के मामा} जो एक सम्मानित सामन्त थे ने घनश्याम नामक एक हिन्दू रईस की पत्नी का अपहरण कर लिया। औरंगजेब ने वाकयानवीस द्वारा इसका पता चलने पर मिर्जा तफक्कुर को तत्काल गिरफ्तार कराकर कैदखाने में डलवा दिया। डाँडा राजपुरी के थानेदार सीदी याकूत खाँन ने अपनी पदोन्नति के लिये बादशाह के पास प्रार्थनापत्र भेजा। औरंगजेब ने इसे थानेदार की अति महत्वाकांक्षा माना और मुसलीपट्टम् के वाकयानवीस को थानेदार के बारे में विस्तृत विवरण भेजने को कहा। वाकयानवीस द्वारा यह लिखने पर कि सीदी याकूत खाँन की छवि जनता में अच्छी नहीं है और वह रोज शाम शराब पीता है, औरंगजेब ने याकूत खाँन की पदावनति कर दी।

मुगल बादशाह सीमान्त प्रदेशों की सुरक्षा तथा वाह्य आक्रमणों से बचाव के लिये अत्यधिक सतर्क रहते थे। इस कारण उन्होंने सीमान्त प्रदेशों में अत्यन्त सक्षम वाकयानवीसों को नियुक्त किया था। अमीर खाँन {1677-98ई0} काबुल में सूबेदार था। उसके कार्यकाल में लगभग 5500 इरानी सैनिकों ने अलग-अलग जत्थों में मुगल साम्राज्य की सीमा में प्रवेश किया तो वाकयानवीस ने इसकी सूचना बादशाह को भेज दी। बादशाह ने इसे सूबेदार की गम्भीर प्रकृति की कर्तव्यविमुखता माना और उसे चेतावनी दी कि भविष्य में 20 घुड़सवारों से अधिक के जत्थों को सीमा में प्रवेश की अनुमति नहीं दी जाये।[1]

काबुल में ही तैनात मुगल वाकयानवीस नफीस खाँन ने बादशाह को समाचार भेजा कि कन्दहार के फारसी थानेदार ने मुगल थानेदार को लिखा है कि यदि वह मुगल सीमा के चार मील के अन्दर थाना स्थानान्तरित करने की अनुमति दे देता है तो वह बादशाह को 100 फारसी घोड़े भेंट करेगा

1- पी0 अधिकारी, मिलेट्री आर्गनाइजेशन इन मेडिवल इण्डिया, पृ0302

बादशाह औरंगजेब ने अमीर खाँन {काबुल के सूबेदार} को लिखा कि तुम्हें सात साल की उम्र से मुगल दरबार में प्रशिक्षित किया गया है किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि फारसी थानेदार की संदिग्ध गतिविधि के बारे में सूचना केवल वाकयानवीस द्वारा भेजी गयी है । फारसियों की गतिविधियों पर निरन्तर नज़र रखी जानी चाहिये ।[1]

पड़ोसी देशों के रवैये तथा वाह्य आक्रमण की सम्भावनाओं का पता लगाने के लिये वाकयानवीसों की मदद के लिये वे व्यापारी होते थे जिन्हें व्यापार के लिये निकटवर्ती देशों में जाना होता था । फारस से मोहम्मद सादिक ने खबर दी कि शाह अब्बास द्वितीय ने भारत के लिये इस्फहान से कूच कर दिया है । वाकयानवीस के माध्यम से खबर पाते ही सम्भावित हमले से निपटने के लिये सभी तैयारियाँ पूरी कर ली गयीं । 1666ई0 में औरंगजेब को खबर मिली कि फारस भारत पर हमला करना चाहता है । उसने मुअज्जम तथा जसवन्त सिंह को 4 सितम्बर 1666ई0 को पंजाब के लिये भेजा और 9 अक्टूबर, 1666ई0 को स्वयं भी आगरा से प्रस्थान कर दिया ।[2]

मुगलकाल में सूबेदारों के पद के दुरूपयोग, महत्वाकांक्षा तथा अव्यवस्था की महत्वपूर्ण खबरें देने वाले वाकयानवीसों, अखबारनवीसों - सवानीहनिगारों तथा हरकारों की कमी नहीं थी किन्तु अनेक ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं कि जब वाकयानवीसों तथा अन्य संवाद प्रेषकों ने अपनी अक्षमता, उदासीनता तथा निजी स्वार्थ के लिये गलत सूचनायें दी । मुगलकाल में संवाद प्रेषकों के लिये प्रतिबंधो तथा सतर्कताओं के अतिरिक्त उन पर आचार संहिता थी किन्तु इसके बाद भी सूबेदारों का दबाव, लालच, निजी स्वार्थ तथा

1- पी0 अधिकारी, मिलेट्री आर्गनाइजेशन इन मेडिवल इण्डिया, पृ0311
2- वही, पृ0317

पारस्परिक मतभेद उनकी कर्तव्यपरायणता में बाधक होते थे। दिल्ली और आगरा से दूरस्थ प्रान्तों में तैनात वाक्यानवीसों के विवरणों में ये कमियाँ विशेषरूप से पायी जाती थीं। लार्ड ब्रूस का मत है कि मुगलकाल के वाक्यानवीसों को राजनीतिक खबरें भेजने की सूचना में सामाजिक खबरें भेजने में अधिक खतरे थे।[1]

वाक्यानवीसों की कर्तव्यविमुखता का पहला उदाहरण राजा मानसिंह के उड़ीसा अभियान के समय का मिलता है। राजा मानसिंह ने अपने बड़े पुत्र जगत सिंह को अफगानों के खिलाफ मुगल सेना के साथ भेजा। स्थानीय सामंत हम्मीर ने कुँअर जगत सिंह को अफगानों के बारे में महत्वपूर्ण सूचना दी किन्तु उसके आधार पर उसने कोई कार्यवाही नहीं की। एक वाक्यानवीस ने जगत सिंह को एक निकटवर्ती जंगल में अफगानों के पड़ाव और उनकी गतिविधियों के बारे में गलत खबर दी जिसके परिणामस्वरूप जगतसिंह अफगानों के आक्रमण की तत्काल सम्भावना न देखकर निश्चिंत हो गया। वाक्यानवीस की खबर गलत थी। वास्तविकता यह थी कि अफगान जंगल में अपने तम्बुओं से निकलकर गुप्त रास्ते से मुगल सैन्य शिविरों की ओर बढ़ रहे थे। उन्होंने मुगलसेना पर अचानक हमला बोलकर उन्हें पराजित कर दिया।[2]

बर्नियर ने लिखा है कि मुगलकाल में लगभग हर प्रान्त में वाक्यानवीस नियुक्त किये जाते थे। उनका काम हर तरह की खबरों से बादशाह को अवगत कराना था किन्तु वाक्यानवीसों तथा सूबेदारों में बेहतर तालमेल न होने के कारण वाक्यानवीस सामान्य घटनाओं को भी गम्भीर बनाकर बादशाह को सूचित करते थे तथा सूबेदार वाक्यानवीसों से

1- एस0के0 बनर्जी, कम्यूनीकेशन सिस्टम इन मेडिवल इण्डिया, पृष्ठ 63
2- टी0के0 मोहन्ती, उड़ीसा अण्डर मुगल्स, पृष्ठ 141

सहयोग करने की जगह प्रायः असहयोग ही करते थे । वाकयानवीसों पर निगाह रखने के लिये बाद में खुफियानवीस तथा सवानीहनिगारों की नियुक्ति की जाने लगी किन्तु इससे स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हुआ ।[1]

इटली का यात्री मनूची लिखता है कि मुगलकाल में अधिकारी पैसा कमाकर धनी बनने तथा गलत काम करने के लिये वाकयानवीसों को घूस देते थे जिससे उनकी शिकायत बादशाह तक न पहुँच सके । एक अंग्रेज चिकित्सक डाक्टर फ्रेयर लिखता है कि वाकयानवीसों की दोनों तरफ से चाँदी थी । वे एक ओर शाही खजाने से वेतन पाते थे और दूसरी ओर से भ्रष्ट अधिकारियों से घूस और नजरानें ।[2] डॉ० फेयर लिखता है कि औरंगजेब के शासनकाल में तो भ्रष्ट वाकयानवीसों की भरमार थी । दक्षिण में अनेक युद्धों में मुगलों की पराजय का एक बड़ा कारण वाकयानवीसों द्वारा लगातार गलत सूचनायें भेजना था । साधन सम्पन्न विशाल मुगल सेना वाकयानवीसों की गलत खबरों के कारण प्रायः परेशानी में फँस जाती थी । वाकयानवीसों को "खरीदने" के बाद सूबेदार एक स्वतन्त्र शासक की तरह काम करते थे तथा वरिष्ठ सैनिक अधिकारी मनमाने ढंग से काम करते थे जिससे सेना में अनुशासन का स्तर बहुत गिर गया था ।[3]

वाकयानवीसों के बारे में विदेशी लेखकों की टिप्पणियों को एकपक्षीय कहना उचित नहीं होगा क्योंकि उत्तर मुगलकाल§औरंगजेब और उसके बाद§ में अनेक भारतीय स्रोतों से भी वाकयानवीसों के भ्रष्ट होने के प्रमाण मिलते हैं । औरंगजेब के एक विश्वस्त सेनापति मीर जुमला ने उसे पत्र लिखकर सूचित किया था कि शाही वाकयानवीस गलत तथा अधूरी खबर भेजने

1- एन0 टामस, सम आसपेक्ट्स आफ मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ0 310
2- फोस्टर , अर्ली ट्रेवेल्स, पृ0 290
3- सरफराज हुसैन, ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन सेवेनटीन्थ सेन्चुरी, पृ0 356

के अभ्यस्त हैं । मीर जुमला के अनुसार असम अभियान के दौरान केवल शहाबुद्दीन तालिश नामक वाकयानवीस द्वारा भेजी गयी खबरें सही पायी गयीं । औरंगजेब के शासनकाल में ही मिर्जा राजा जय सिंह ने बीजापुर अभियान के दौरान वाकयानवीसों की गलत खबरों के कारण उत्पन्न परेशानियों से औरंगजेब को अवगत कराया था । मिर्जा राजा जय सिंह के पत्र के अनुसार संवाद-प्रेषकों § हरकारा§ द्वारा एकत्र समाचार तो दस प्रतिशत भी सही नहीं होते थे । वाकयानवीसों, अखबारनवीसों, सवानीहनिगारों तथा हरकारों के लिये यह आम धारणा थी कि वे स्वार्थी, लालची तथा दक्षिण समर्थक हैं । बीजापुर में बीजापुर की सेनाओं से मुगल सेनाओं की दूरी जब केवल दस बारह कोस ही होती थी तो बीजापुर के सैनिक अधिकारी बहुत थोड़ा धन देकर ही मुगल सेना के बारे में महत्वपूर्ण सूचनायें पा लेते थे ।[1]

मुगलकाल में ईमानदारी तथा सत्यनिष्ठा से काम करने वाले वाकयानवीसों के लिये कम खतरा नहीं था । दबंग और भ्रष्ट अधिकारियों द्वारा वाकयानवीसों को सार्वजनिक रूप से अपमानित करने की घटनायें होती रहती थी । ऐसी स्थिति में दारोगा-ए-डाक चौकी §डाक व गुप्तचर विभाग का अधीक्षक § वाकयानवीस के हितों की सुरक्षा करता था और मामले को अग्रिम कार्यवाही के लिये बादशाह तक पहुँचाता था ।[2]

समाचार अधीक्षक §सबानीह§ की रिपोर्ट की प्रति उपलब्ध है जिससे पता चलता है कि बिहार के सूबेदार उमेद खाँन ने अब्दुर रहीम नामक एक वाकयानवीस को भरे दरबार में अपमानित करके निकाल दिया था ।

1- पी0 अधिकारी , मिलिट्री आर्गनाइजेशन इन मेडिवल इण्डिया, पृ0273

2- एस0के0 बनर्जी , कम्यूनीकेशन सिस्टम इन मेडिवल इण्डिया, पृ0 31

समाचार अधीक्षक ने मामला बादशाह तक पहुँचाया और लिखा कि इस मामले में यदि सूबेदार को छोड़ दिया गया तो वाकयानवीस भविष्य में घटनाओं के सही विवरण भेजने का साहस नहीं कर पायेगा । बादशाह ने वाकयानवीस की सेवायें समाप्त कर दीं तथा सूबेदार की जागीर छीन ली और उसका ओहदा घटा दिया । यह पता नहीं चलता कि आखिर वाकयानवीस को क्यों दण्डित किया गया ।[1] महत्वपूर्ण घटनाओं की खबर अगर बादशाह को दूसरे माध्यम से मिल जाती थी और वाकयानवीस उसे देने से चूक जाते थे तो बादशाह वाकयानवीस से स्पष्टीकरण माँगता था । अफगानिस्तान से एक गुप्तचर ने औरंगजेब को खबर भेजी कि शाहजादा मुअज्जम (बहादुरशाह) ने जामा मस्जिद में नमाज़ अदा करने के लिये अपनी सुविधा हेतु एक पर्दा (कैनवस स्क्रीन) लगवा रखा है । औरंगजेब ने मुअज्जम को पत्र में काफी लताड़ बतायी और वाकयानवीस का दर्जा घटा दिया क्योंकि वह इसकी खबर बादशाह को नहीं भेज पाया था । इसी प्रकार आजम के एक सवानीहनवीस ने औरंगजेब को सूचना भेजी कि एक पंजाबी घुड़सवार ने पीर धीसू दराज़ की मजार पर शराब पीकर गाली गलौज़ की है । वाकयानवीस द्वारा यह खबर न भेजने पर औरंगजेब ने उसे कड़ी चेतावनी दी ।[2]

वाकयानवीसी का काम कुल मिलाकर बड़ा दायित्व का था । उनकी सामान्य असावधानियों को अनदेखा नहीं किया जाता था । सामान्य तथ्य छिपाने या तथ्य सम्बन्धी त्रुटि पर उन्हें निश्चित रूप से दण्डित किया जाता था । 1705 ई0 में गुजरात का सूबेदार इब्राहिम खाँ पालकीनुमा एक सवारी पर बैठकर मस्जिद जाता था । वाकयानवीस ने अपने विवरण में सवारी को निश्चित रूप से पालकी लिख दिया । मात्र इतनी त्रुटि पर औरंगजेब ने वाकयानवीस का दर्जा घटा दिया ।

1- एन0 टामस, सम आसपेक्ट्स आफ मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृष्ठ 244
2- कानूनगो , हिस्ट्री आफ मुगल डाइनेस्टी, पृष्ठ 46

वाकयानवीस के समाचारों का विवरण केवल शासन के कुशल संचालन के लिये नहीं था । वाकयानवीसों द्वारा साहित्यिक तथा कलात्मक ढंग से लिख गये विवरणों का संकलन भी किया जाता था । मई 1663 ई0 में कूचबिहार तथा असम के अभियान में साथ गये मीरजुमला के वाकयानवीस इब्न मुहम्मद वली अहमद ने अपने विवरण को " फतियाये इब्रिया " नाम से पुस्तक का रूप दे दिया । इस प्रकार से उसके सैनिक अभियान का आँखों देखा विवरण ऐतिहासिक महत्व का हो गया । आगे चलकर गुजरात के वाकयानवीस अब्दुल जलील ने भी अपने कुछ विवरणों को पुस्तक का रूप दिया ।[1]

औरंगजेब और उसके बाद के मुगल बादशाहों के शासनकाल के वाकयानवीसों, अखबारनवीसों तथा सवानीहनिगारों के विवरण तथा शाही दरबार के समाचार बुलिटनों के संग्रह को " अखबाराते दरबारे मुआला" नाम से जाना जाता है । दरबार की दैनिक कार्यवाही शिकस्ता लिपि में भूरे कागज पर लिपिक लिखते थे । एक काफी बड़े कागज़ पर सबसे ऊपर अखबा--राते दरबारे मुआला लिखा होता था तथा उसके बाद दिन, सप्ताह, तारीख महीना और वर्ष अंकित होता था ।[2]

शाही समाचार लेखन तथा संवाद संप्रेषण का काम अठारहवीं शताब्दी के पूर्वान्ह तक बिना किसी अवरोध के जारी था परन्तु बाद में मुगल शासन की गिरावट का प्रभाव उस पर भी नजर आने लगा । फर्रुखसियर §1713-19ई0§ के शासनकाल में आगरा का सूबेदार छबीला राम था ।उसने बादशाह से शिकायत की कि उसने वाकयानवीस के सहायकों के निजी स्वार्थों को पूरा नहीं होने दिया है इसलिये वे उसके विरुद्ध निरन्तर गलत समाचार भेज रहे हैं । छबीलाराम ने अपने पत्र में यह भी लिखा कि आगरा तथा उसके

1- एस0सी0सान्याल, न्यूजपेपर्स आफ द लेटर मुगल पीरियड
§ इस्लामिक कल्चर, जनवरी, 1928ई0§, पृ0 137

2- जे0बी0 प्रीमोज़, अर्ली हिस्ट्री आफ प्रेस इन इंडिया, पृ0 23

निकटवर्ती क्षेत्रों में पहले से अधिक शान्ति है और यात्रीगण बिना किसी भय के आते जाते रहते हैं । फर्रुखसियर ने छबीलाराम की शिकायत को सही नहीं माना और उसे लिखा कि शाही संवाददाताओं की सत्यनिष्ठा पर संदेह करना उचित नहीं है । यह विश्वास योग्य नहीं है कि संवाददाताओं के समाचार तथ्यपरक नहीं होते हैं ।[1]

" सियारुल मुताखरीन " के लेखक गुलाम हुसैन ने अपनी पुस्तक में 1720ई0 में देश के विभिन्न भागों में अति वृष्टि से भीषण अकाल पड़ने का उल्लेख किया है । मुहम्मदशाह "रंगीले" के शासनकाल में पड़े इस अकाल की पुष्टि देश के विभिन्न भागों के वाकयानवीसों द्वारा भेजे समाचारों से भी होती है ।

मुगलकाल में बंगाल में वाकयानवीसों पर सबसे अधिक दबाव रहता था । बंगाल में प्रायः मुगल शाहजादे ही सूबेदार नियुक्त होते थे । वे वाकयानवीसों पर सही समाचार न भेजने के लिये दबाव डालते थे । औरंगजेब ने तो सूबेदारों द्वारा वाकयानवीसों का दर्जा बढ़ाने की संस्तुति को नहीं माना । सूबेदारों द्वारा वाकयानवीसों की शिकायतों के प्रति भी उसका दृष्टिकोण काफी संतुलित होता था । वह बिना व्यापक छानबीन के वाकयानवीसों को दण्डित भी नहीं करता था ।[2]

1756 से 1765 ई0 के मध्य कलकत्ता में अंग्रेजों तथा देशी राज्यों के मध्य विकसित हो रहे सम्बन्धों का विवरण भी तत्कालीन वाकयानवीसों की रिपोर्टों में मिलता है । बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला के

1- पी0जे0 पटनायक, फर्रुखसियर एण्ड हिज़ टाइम्स, पृष्ठ 243

2- युसुफ हैदर खॉन , सेवेनटीन्थ सेंचुरी वाकये {इस्लामिक कल्चर, जुलाई, 1954 पृष्ठ 73

समय दारोगा-ए-हरकारा के पद पर मिदनापुर का राजा रामनारायण सिंह नियुक्त था । इस समय तक बंगाल में मुगल पद्धति की समाचार प्रेषण व्यवस्था लागू थी । 1763ई0 में शाकिरउद्दौला को बंगाल और बिहार का वाकयानवीस और बख्शी नियुक्त किया गया था । उसका मासिक भत्ता दो हजार रुपये था तथा उसे 80 लाख रुपये मूल्य की जागीर भी दी गयी थी । उसकी मदद के लिये मोहम्मद वारिस खाँन तथा राय सीदामल दो वरिष्ठ सहायक थे ।[1]

1757 से 1825 ई0 के मध्य भी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्थानीय अधिकारियों ने अपनी सुविधा के लिये मुगल पद्धति की समाचार प्रेषण व्यवस्था लागू रखी । इस अवधि के अभिलेखों में बख्शी, वाकयानवीस वाकयानिगार, अखबारनवीस, सवानीहनिगार, हरकारा तथा दारोगा-ए-हरकारा आदि शब्दों का प्रयोग होता रहा ।[2]

शाही वाकयानवीसों तथा अखबारों के अतिरिक्त देश के अनेक भागों में निजी वाकयानवीस रखने की प्रथा प्रचलित थी । राजस्थान तथा महाराष्ट्र में यह बहुत अधिक विकसित थी । बीकानेर स्थित राजकीय अभिलेखागार में निजी अखबारों का अनुपम संग्रह है जिन्हें वकील अखबार, वाकया परचा, खतूत महाराजगन तथा अहलकरन कहा जाता था । इनमें दैनिक घटनाओं के वृत्तान्त, समाचार तथा दरबार की कार्यवाही का संकलन होता था । वाकया परचों में जयपुर के शासकों की व्यक्तिगत तथा प्रशासनिक बातों, सामाजिक परम्पराओं, शिष्टाचार तथा महलों की आन्तरिक स्थिति कीभी चर्चा रहती थी । खतूत महाराजगन तथा अहलकारन में राजपूत राजाओं के मुगलों, मराठों तथा अन्य पड़ोसी राज्यों से सम्बन्धित समाचारों का

1- पी0के0 सरकार , द बंगाल नवाब्स, पृष्ठ 97

2- सी0 आर0 विल्सन,अर्ली एनल्स आफ इंग्लिश इन बंगाल भाग-1,पृ0123

संकलन किया जाता था । राजस्थानी पत्रों में विभिन्न प्रकार के समाचार ही नहीं अपितु 17वीं शताब्दी में विकसित राजस्थानी हिन्दी का विकसित स्वरूप भी देखने को मिलता है ।[1] राजकुमार, धनाढ्य व्यापारी तथा अन्य सम्पन्न सामन्त जो संवाददाताओं के पारिश्रमिक का बोझ वहन कर सकते थे, अपने हित और रुचि के स्थानों पर संवाददाता नियुक्त करके अखबार निकलवाते थे । ये पत्र अधिकतर हस्तलिखित होते थे । आवश्यकतानुसार कई लोग मिलकर इनकी हस्तप्रतियाँ तैयार करते थे । कुछ पत्र तो लीथो पर छपे भी होते थे । इन पत्रों को स्थानीय प्रशासन तथा प्रभावशाली लोगों का संरक्षण प्राप्त होता था । यह स्थिति 18वीं शताब्दी के अन्त तक बनी रही ।

मराठों के इतिहास के विद्वान ग्रांट डफ ने अपनी कृतियों में महाराष्ट्र में विशेषकर पूना दरबार में इन निजी पत्रों के प्रभाव की चर्चा की है । एक बार जब एक उन्मत्त हाथी पेशवा माधवराव की ओर लपका तो उसके भाई नारायण राव ने अन्य लोगों के साथ घबराहट में उसे घेर लिया तो माधवराव ने नारायण राव की बाँह पकड़कर कहा कि भाई अखबार अब आपके बारे में जाने क्या लिखेंगे ।[2]

राजस्थान की तरह महाराष्ट्र के निजी अखबारों की भाषा कलात्मक होती थी तथा संवाददाताओं को घटनाओं की तत्काल जानकारी हो जाती थी । मुगल बादशाहों के समाचार प्रेषण व्यवस्था के वाकयानवीस महाराष्ट्र में इसलिये अधिक सफल नहीं हो सके थे क्योंकि महाराष्ट्र के संवाद-दाताओं को महाराष्ट्र की भौगोलिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्थिति का बहुत अच्छा ज्ञान था ।"भास्कर" नामक एक पत्र ने तो पानीपत के तृतीय युद्ध में मराठों के पतन का सजीव उल्लेख किया था ।[3] 1773ई0 में जब -

---

1- सं0 डा0 एस0पी0 सेन, द इंडियन प्रेस, पृष्ठ 139

2- ग्रांट डफ , हिस्ट्री आफ द मराठाज़ भाग - दो, पृष्ठ 250

3- वासुदेव वामन खरे, ऐतिहासिक लेख संग्रह (महाराष्ट्र के अखबारात) पृष्ठ 59

नारायण राव की हत्या हुई तो हत्या के दो घन्टे के भीतर पूना के संवाददाता मिराज के पटवर्धन ने घटना का सम्पूर्ण विवरण अखबार में दे दिया था । ये वृत्तान्त इतने सही थे कि उनमें तथा अंग्रेज लेखकों के विवरण में कोई विशेष अन्तर नहीं है । महादजी सिंधिया पेशवा सवाई माधवराव के लिये मुगल बादशाह से सम्मानजनक अंलकरण लाया था । पेशवा को ये पूना में एक भव्य समारोह में भेंट किये गये । इस समारोह में पटवर्धन का प्रतिनिधि उपस्थित था । उसने समारोह का जो विवरण अपने स्वामी को भेजा उसकी शैली आधुनिक विकसित संवादलेखन शैली से कम नहीं थी । 1792ई0 में दिल्ली के सार्वजनिक पत्रों ने मुगल बादशाह तथा महादजी सिंधिया के बारे में अनेक महत्वपूर्ण समाचार प्रकाशित किये थे ।[1]

1813 ई0 में लाहौर, आगरा तथा दिल्ली के कई समाचार पत्रों ने काबुल के वजीर फतेह खाँन तथा रंजीत सिंह द्वारा कश्मीर को जीतने के लिये किये गये संयुक्त प्रयास के समाचार विस्तारपूर्वक प्रकाशित किये ।

मुगलकालीन समाचार प्रेषण व्यवस्था की समाप्ति का निश्चित समय पर्याप्त दस्तावेजों के अभाव में पता नहीं चलता है । ऐसा प्रतीत होता है कि औरंगजेब के पश्चात अक्षम बादशाहों, निरन्तर गिरती आर्थिक स्थिति तथा छिन्न-भिन्न होती शासन व्यवस्था के कारण समाचार प्रेषण व्यवस्था कमजोर होती चली गई । 1783ई0 में लिखे गये गुलाम हुसैन के वृत्तान्त से पता चलता है कि उस समय उत्तर भारत में प्रशासन में भ्रष्ट अधिकारियों का बोलबाला हो गया था और वाकयानवीसों तथा गुप्तचरों की कमी के कारण शोषणकारी अधिकारियों की शिकायतें ऊपर तक नहीं पहुँच पाती थी ।[2]

1- रार्बट विलियम्स, हिस्ट्री आफ द मराठाज, पृष्ठ 138

2- पी0एन0 देशपांडे, इन्डिया इन स्टीन्थ सेंचुरी, पृष्ठ 26।

ब्रिटिश अभिलेखों से पता चलता है कि लार्ड मैकाले और मैटकाफ ने 1830ई0 के दशक में भारतीय समाचार पत्रों को जब विशेष रियायतें दी तो उस समय देशी समाचारपत्रों की भरमार थी । लेफ्टिनेन्ट कर्नल सर विलियम स्लीमैन ने 1849-50 ई0 में अवध प्रान्त की व्यापक यात्रा की थी । अपने यात्रा वृत्तान्त में उसके अनेक हस्तलिखित समाचार पत्रों की चर्चा की है । 1852-53ई0 में संसदीय जाँच समिति के सर सी0ई0 ट्रेवलयान ने देशी राज्यों के दरबारों में समाचार संकलन व्यवस्था तथा निजी पत्रों का अस्तित्व देखा था ।[1]

संयुक्त प्रान्त में पत्रकारिता का प्रादुर्भाव फारसी पत्रों के रूप में उत्तर मुगलकाल में ही हो गया था किन्तु यहाँ संस्कृत, उर्दू और हिन्दी के समाचारपत्र-पत्रिकाओं का विकास होने में कई दशक और लग गये । श्रीरामपुर §बंगाल§ के ईसाई, मिशनरियों ने प्रथम हिन्दी मासिक पत्र- " समाचार दर्पण " 1818 में प्रकाशित किया था । मिशनरियों का यह प्रयास भारत में 1813 के चार्टर एक्ट से प्राप्त विधि सम्मत अनेक सुविधाओं के अन्तर्गत सम्भव हो सका था । संयुक्त प्रान्त में कानपुर, वाराणसी, आगरा, मिर्जापुर तथा मेरठ सर्वप्रथम मिशनरियों के प्रभाव में आये इसलिये 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इन केन्द्रों से अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । प्राप्त अभिलेखों के अनुसार संयुक्त प्रान्त में प्रकाशित होने वाला प्रथम आधुनिक अंग्रेजी पत्र "कानपुर एडवरटाइजर " था जिसका प्रकाशन 1822 से ग्रीनवे नामक कम्पनी ने प्रारम्भ किया ।[2] 1831 में मेरठ से एच0 कूप नामक अंग्रेज पादरी ने मेरठ आब्जर्वर " नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया ।

1- जे0बी0 नार्टन, टापिक्स फार इन्डियन स्टेट्समैन , पृष्ठ 377

2- याकूब अली खाँ, पत्रकारिता संदर्भ ज्ञानकोष, पृष्ठ 84

1833 में आगरा से " आगरा अखबार " नामक एक समाचार-पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ जिसके प्रकाशक एवं सम्पादक डा0जान एन्डरसन थे ।[1] इसी वर्ष आगरा से सान्डर्स ने " मफसलाइट अखबार " आरम्भ किया । 1835 ई0 में मेरठ से " यूनीवर्सल मैगजीन " नामक अंग्रेजी पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ ।[2] 1836ई0 में इलाहाबाद से " सेन्ट्रल फ्री प्रेस जर्नल "1838ई0 में आगरा से ग्रीनवे एण्ड कम्पनी द्वारा प्रकाशित " आगरा जर्नल " तथा 1839 में आगरा से ही मि0 मासन के संपादकत्व में " आगरा मेसेन्जर " नामक पत्र का प्रकाशन संयुक्त प्रान्त में अंग्रेजी पत्रकारिता के प्रादुर्भाव की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण था परन्तु ये पत्र अपनी किसी विशिष्टता की छाप नहीं छोड़ सके ।

संयुक्त प्रान्त में हिन्दी का प्रथम समाचार पत्र " बनारस अखबार" था जिसका प्रकाशन 1845 में प्रारम्भ हुआ । इसके संपादक गोविन्द रघुनाथ थत्ते तथा प्रकाशक राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द थे ।[3] 1847 में मेजर थाम्स ने मेरठ से " मफसलाइट " नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया । यह पत्र 14 वर्ष पूर्व आगरा से प्रकाशित होता था । 1848 में एम0आरथर नामक एक अंग्रेज ने धार्मिक विचारों की मासिक पत्रिका "बनारस मैगजीन" वाराणसी से निकाली । 1850 में ग्रीनवे कम्पनी ने आगरा से "लेडीज मिसलेनी" नामक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया । वाराणसी से 1850ई0 में तारा-मोहन मित्र के संपादकत्व में साप्ताहिक पत्र "सुधाकर" का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ 1852 में आगरा से " बुद्धि प्रकाश " नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ जिसके संपादक सदा सुख लाल थे । राजा लक्ष्मण सिंह के —

1- याकूब अली खाँ, पत्रकारिता सन्दर्भ कोष, पृ0 86

2- वही, पृ0 86

3- अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, पृ0 133

संपादन में " प्रजा हितैषी " तथा शिवनारायण के संपादन में "सर्वहित कारक" साप्ताहिक पत्र 1855ई0 में आगरा से प्रारम्भ हुये । गणेशी लाल ने 1861ई0 में आगरा से " सूरज प्रकाश नामक साप्ताहिक पत्र निकाला जो कि हिन्दी और उर्दू दोनों ही भाषाओं में प्रकाशित होता था ।[1] देश-वासियों में राष्ट्रीय चेतना लाने के उद्देश्य से हकीम जवाहर लाल ने 1861ई0 में इटावा से " प्रजाहित " नामक पाक्षिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया । इसके उर्दू तथा अंग्रेजी संस्करण भी प्रकाशित होते थे । 1864 में आगरा से वंशीधर ने " भारत खण्डामृत " नामक मासिक पत्र तथा 1865 में बरेली से गुलाब शंकर के सम्पादन में " तत्व बोधिनी"नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ ।

इलाहाबाद से 1865 ई0 में " पायनियर " नामक अंग्रेजी दैनिक का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ जिसके प्रथम संपादक " जूलियन राबिन्सन " थे ।[2] सर जार्ज एलेन द्वारा आरम्भ किया गया यह पत्र सरकारी नीतियों का पक्षधर था । 1866 में इलाहाबाद में " द सदर्न क्रास " नामक अंग्रेजी पत्र अस्तित्व में आया । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 1867 में " कवि वचन सुधा " नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन वाराणसी से प्रारम्भ किया । यह पत्रिका सामान्य जनता के दुख दर्द, आकांक्षाओं तथा अपेक्षाओं की प्रतीक थी । 1885 में इसका प्रकाशन बन्द हो गया । 1867 में ही आगरा से दो मासिक पत्र - " सर्वजनोपकारक " तथा " धर्म प्रकाश " प्रकाशित हुये ।

1- अम्बिका प्रसाद बाजपेई, समाचार पत्रों का इतिहास, पृ0 120

2- एम0 चलपति राव, समाचार पत्र, पृ0 82

इलाहाबाद से 1868 में मासिक पत्र " वृत्तान्त दर्पण " का प्रकाशन आरम्भ हुआ । विविध विषयक यह पत्र 1870 ई0 में कानून का पत्र हो गया । 1870 में आगरा से हिन्दी और उर्दू मिश्रित भाषा में "आगरा" नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ ।[1]

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम तीन दशकों में समाचार पत्रों में बहुत नयापन आ गया था । विचारों को जन-जन तक पहुँचाने वाले इस सशक्त माध्यम की उपयोगिता तत्कालीन समाज सुधारकों ने भी अनुभव किया जिनमें स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रमुख थे । स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज के सिद्धान्तों के प्रचार एवं प्रसार के उद्देश्य से 1870 ई0 में शाहजहाँपुर से मुंशी बख्तावर सिंह ने " आर्य दर्पण " नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया । 1871ई0 में अल्मोड़ा में डिबेटिंग क्लब प्रेस से " अल्मोड़ा अखबार " नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन बुद्ध बल्लभ पंत के संपादन में आरम्भ हुआ । इसने पर्वतीय क्षेत्रों के आर्थिक, सामाजिक - सांस्कृतिक तथा राजनीतिक उन्नयन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई । 1918ई0 में इस पत्र का प्रकाशन बन्द हो गया । 1873 ई0 में वाराणसी से " हरिश्चन्द्र मैगजीन " तथा " चरणाद्रि चन्द्रिका " नामक दो साप्ताहिक पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ ।[2] इनमें समाज के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित सामग्री के अतिरिक्त राष्ट्रीय महत्त्व के समाचार भी प्रकाशित होते थे । इसी वर्ष आगरा में " मर्यादा परिपाटी समाचार " नामक मासिक पत्र का प्रकाशन दुर्गा प्रसाद शुक्ल के संपादन में प्रारम्भ हुआ । इस पत्र में सनातन धर्म तथा भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित लेख प्रमुखता से प्रकाशित किये जाते थे । 1874 में वाराणसी से हिन्दी और

1- राम रतन भटनागर, राइज़ ऐण्ड ग्रोथ आफ हिन्दी जर्नलिज्म , पृ0734

2- अम्बिका प्रसाद बाजपेई, समाचार पत्रों का इतिहास, पृ0143

अंग्रेजी में एक साथ " हरिश्चन्द्र " पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ । इसके संपादक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे । भारतेन्दु ने इसी वर्ष स्त्री शिक्षा और नारी स्वतन्त्रता के लिये अनुकूल वातावरण बनाने के उद्देश्य से " बाला-बोधिनी " नामक मासिक पत्रिका आरम्भ किया ।[1] विद्यार्थियों के कल्याण के उद्देश्य से 1875 ई0 में लक्ष्मीशंकर मिश्र के संपादन में " काशी पत्रिका " नामक साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसी वर्ष इलाहाबाद से " प्रयाग धर्म प्रकाश " और " सुदर्शन समाचार " मिर्जापुर से "आर्य - पत्रिका " तथा अलीगढ़ से " मंगल समाचार " नामक मासिक पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ ।

1877 में इलाहाबाद से हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकार बालकृष्ण भट्ट ने " हिन्दी प्रदीप " नामक मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया । विविध विषयक इस राष्ट्रीय विचारधारा वाले पत्र ने भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन तथा सांस्कृतिक विकास में अविस्मरणीय भूमिका निभाई ।[2] सरकार की दमनात्मक नीति के कारण 1910ई0 में इसका प्रकाशन बन्द हो गया । 1878ई0 में वाराणसी से एस0के0भट्टाचार्य के संपादन में " आर्यमित्र " नामक मासिक पत्रिका अस्तित्व में आई ।

1879 ई0 में फर्रुखाबाद से गणेशी प्रसाद के संपादन में " भारत दुर्दशा " नामक मासिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ । कुछ दिनों पश्चात इसका नाम " भारत सुदशा प्रर्वतक " हो गया । तीन वर्ष पश्चात साप्ताहिक हो गये इस पत्र में सामाजिक कुरीति निवारण, वैदिक धर्म, मद्य निषेध तथा स्त्री शिक्षा पर लेख प्रमुखता से प्रकाशित होते थे

1- राधाकृष्ण दास, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन चरित्र, पृ0 5।
2- एम0 चलपति राव, समाचार पत्र, पृ0118

1880ई0 में वाराणसी में मुंशी प्रेमचन्द्र के संपादन में " परमार्थ ज्ञान चन्द्रिका " नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ जिसमें धर्म, दर्शन तथा सामाजिक लेख प्रकाशित होते थे । 1882ई0 में इलाहाबाद से " प्रयाग समाचार " नामक साप्ताहिक तथा " नूतन चरित्र " एवं " बाल दर्पण " नामक मासिक पत्र अस्तित्व में आये ।[1]

1883 ई0 में कानपुर से प्रताप नारायण मिश्र ने "ब्राह्मण" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया ।[2] प्रताप नारायण मिश्र के निराले अन्दाज़ के कारण लोकमत को निष्पक्ष तथा निर्भीक रूप में समाज तथा सरकार तक ले जाने की दिशा में ब्राह्मण की भूमिका विलक्षण थी । इसी वर्ष बरेली से " सत्य प्रकाश " लखनऊ से "दिनकर प्रकाश " बस्ती से "कवि कुल कुंज दिवाकर " नामक मासिक पत्रों का प्रकाशन आरम्भ हुआ । 1884ई0 में वाराणसी के जीवन प्रेस से " भारत जीवन " नामक साप्ताहिक पत्र राम कृष्ण वर्मा ने आरम्भ किया । इसी वर्ष कानपुर से "वैद प्रकाश " मासिक पत्र अस्तित्व में आया । इसके प्रकाशक राधा कृष्ण गुप्त थे । अमरीकी मिशन ने लखनऊ स्थित एम0ई0पी0 हाउस से पाक्षिक पत्र " अबला हितकारक" प्रारम्भ किया । इस पत्र का उद्देश्य भारतीय स्त्रियों में जागृति लाकर उन्हें ईसाई धर्म की ओर उन्मुख करना था । इन्हीं दिनों जाति विशेष को संगठित करने और उनका विकास करने के उद्देश्य से अनेक जातीय पत्र अस्तित्व में आये । इनमें इलाहाबाद से प्रकाशित " गौड़ कायस्थ " मथुरा से " कुलश्रेष्ठ समाचार" तथा फतेहपुर से " कायस्थ व्यवहार " नामक मासिक पत्र प्रमुख थे ।

1- अम्बिका प्रसाद बाजपेई, समाचार पत्रों का इतिहास, पृष्ठ 185
2- सं0डा0वेद प्रताप वैदिक, हिन्दी पत्रकारिता विविध आयाम, पृष्ठ 124

1885 में कानपुर से सीताराम ने " भारतोदय " नामक हिन्दी दैनिक का प्रकाशन आरम्भ किया । यह पत्र अल्पकालिक सिद्ध हुआ । इसी वर्ष कालाकाँकर,प्रतापगढ़ से राजा रामपाल सिंह ने "हिन्दुस्तान" नामक पत्र का प्रकाशन हिन्दी और अँग्रेजी भाषाओं में अलग-अलग प्रारम्भ किया ।[1] जार्ज टेम्पल अँग्रेजी संस्करण के तथा पं0 मदनमोहन मालवीय हिन्दी संस्करण के प्रथम संपादक थे । यह पत्र प्रारम्भ में मासिक था परन्तु कुछ दिनों तक साप्ताहिक रहने के बाद दैनिक हो गया । राष्ट्रीय विचारों का यह अखबार 1907 में राजा रामपाल सिंह के निधन के उपरान्त बन्द हो गया । 1887 में इलाहाबाद के देशोपकारक प्रेस से " प्रयाग मित्र " नामक पाक्षिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ । माधो राम तथा बैद्यनाथ, संयुक्त रूप से इस पत्र का संपादन करते थे । इसी वर्ष लखनऊ में " धर्म सभा " साप्ताहिक अखबार का प्रकाशन आरम्भ हुआ । यह पं0 हरिशंकर के संपादन में रिफाहे आम प्रेस से छपता था ।[2] राष्ट्रीय धारा से महिलाओं को जोड़ने के उद्देश्य से 1888 में इलाहाबाद में श्रीमती महादेवी तथा भीमसेन शर्मा ने संयुक्त तत्वावधान में " भारत भगिनी " नामक पत्रिका आरम्भ किया । यह सरस्वती प्रेस से प्रकाशित होती थी ।[3] इसी वर्ष ज्वालादत्त शर्मा के संपादन में 'विद्या मार्तण्ड' तथा ~~श्री~~ जगन्नाथ वैद्य के संपादन में " आरोग्य दर्पण " इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाले अन्य प्रमुख पत्र थे ।

1889 में वाराणसी से दामोदर विष्णुसप्रे ने " मित्र " नामक साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया । इसी वर्ष लखनऊ से " भारत भानु " इटावा से " विचार-पत्र " बिठूर [कानपुर] से "भारतवर्ष", इलाहाबाद से "कान्यकुब्ज-हितकारी" तथा आगरा से "कायस्थ उपकारक" नामक मासिक पत्रों का प्रकाशन पहली बार प्रारम्भ हुआ । 1890 में

1- एम0 चलपति राव, समाचार पत्र, पृ0 118

2- राम रतन भटनागर, राइज ऐण्ड ग्रोथ आफ हिन्दी जर्नलिज्म, पृ0 745

3- अम्बिका प्रसाद बाजपेई, समाचार पत्रों का इतिहास, पृ0 199

पं० अयोध्या नाथ ने कालाकाँकर के राजा रामपाल सिंह के सहयोग से " इन्डियन यूनियन " नामक अंग्रेजी साप्ताहिक का प्रकाशन आरम्भ किया परन्तु 1892 में पं० अयोध्या नाथ के असामयिक निधन से उक्त पत्र का प्रकाशन आगे नहीं हो सका ।[1] इसी वर्ष मुरादाबाद में " भारत प्रकाश ", वाराणसी में " आर्य मित्र ", मुरादाबाद में " सत्य " तथा अलीगढ़ में " हिन्दी पंच " नामक मासिक पत्रों का प्रकाशन आरम्भ हुआ । 1891 में वाराणसी से दो अनोखे पत्र " नौका जनहित " तथा " राम जनहित " अस्तित्व में आये । नौका जनहित मल्लाहों तथा " राम जनहित " वेश्याओं के हितों के पक्षधर थे । ये पत्र इस बात के अनुपम उदाहरण थे कि किस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक हर वर्ग समाचार पत्रों को अपने विचार अभिव्यक्ति का माध्यम मानने लगा था । इलाहाबाद से प्रकाशित मासिक पत्र " मानव धर्म " के माध्यम से उसके संपादक भीमसेन शर्मा ने जनता को उसके सामाजिक दायित्वों का बोध कराने का प्रयास किया ।

1892 में इलाहाबाद से " आर्य दर्पणी", बरेली से "सत्य युग" फर्रुखाबाद से " गो धर्म प्रकाश", वाराणसी से " सरस्वती प्रकाश " तथा अयोध्या से " साकेत जीवन " का प्रकाशन पहली बार आरम्भ हुआ । इन पत्रों का उद्देश्य राजनीतिक चेतना के लिये प्रयास नहीं था अपितु ये सामाजिक तथा सांस्कृतिक जागृति तक सीमित थे । इसी वर्ष मुरादाबाद से " जैन हितैषी" वाराणसी से " ब्राह्मण हितकारी " तथा कानपुर से " भट्ट भास्कर " तथा "कायस्थ कान्फ्रेन्स प्रकाश " जैसे जातीय पत्र अस्तित्व में आये जिनका उद्देश्य जातीयता न होकर जाति में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने के लिये लोगों -

---

1- मोती लाल भार्गव, पं० अयोध्या नाथ, पृ० 123

को आन्दोलित करना था । 1894 में वाराणसी से " गौ सेवक " और " भारत भूषण " कानपुर से " वनिता हितैषी ; इलाहाबाद से "रत्नाकर" मुरादाबाद से " नीति प्रकाश " तथा आगरा से " कायस्थ हितकारी " नामक मासिक पत्र अस्तित्व में आये ।[1] 1895 में जातीय पत्रों के प्रकाशन की बहुतायत रही इसमें मेरठ से " वैश्य हितकारी " मथुरा से "विश्वकर्मा" लखनऊ से " जैन समाचार " हरदोई से " ब्राह्मण समाचार " तथा मथुरा से " जैन गजट " जैसे पत्र प्रमुख थे ।

1896 में लखीमपुर खीरी के अभ्यंकर प्रेस से " आर्य भास्कर " नामक मासिक पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ । यह पत्र आर्य समाज की विचार-धारा से प्रभावित था । 1897 में मेरठ से " भारतोपदेशक" इलाहाबाद से " विद्या धर्मवर्धिनी " तथा मुरादाबाद से " सनातन धर्म-पताका " जैसे मासिक पत्रों का प्रकाशन आरम्भ हुआ । अपने नामों के अनुरूप इनका उद्देश्य किसी भी रूप में राजनीतिक नहीं था । 1898 में वाराणसी से "पंडित - पत्रिका " नामक मासिक पत्रिका शुरू हुई । इसमें काशी पंडित समाज के कार्य-कलापों का लेखा जोखा होता था । 1899 में अनेक जातीय पत्र अस्तित्व में आये जिनमें आगरा से प्रकाशित "राजपूत" तथा मथुरा से प्रकाशित " माथुर वैश्य सुखदायक " जैसे पत्र प्रमुख थे ।[2]

संयुक्त प्रान्त में संस्कृत के पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन का उद्देश्य केवल धर्म की विवेचना, धर्म के लक्षण तथा धार्मिक तत्वों का मूल्यांकन करना था । इसका लक्ष्य राष्ट्रीय स्वातन्त्रता आन्दोलन में योगदान देना अथवा

1- अम्बिका प्रसाद बाजपेई, समाचार पत्रों का इतिहास, पृ0 222

2- राम रतन भटनागर, राइज़ ऐण्ड ग्रोथ आफ हिन्दी जर्नलिज्म, पृ0252

व्यावसायिक नहीं था । संयुक्त प्रान्त में संस्कृत भाषा में पहला पत्र 1866में ई0जे0 लाजरस ने प्रकाशित किया । इस मासिक पत्र का नाम "काशी - विद्या सुधा निधि " था । इसका प्रकाशन निर्बाध रूप से 1917 तक होता रहा । इस पत्र ने संस्कृत भाषा में भविष्य में प्रकाशित होने वाले पत्रों को प्रेरणा प्रदान की । 1867 में सत्यव्रत के संपादन में वाराणसी से "प्रत्न--कम्रनन्दिनी " नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । धर्मदर्शन तथा भारतीय संस्कृति विषयक लेख इसमें प्रकाशित होते थे । प्रकाशन के 8 वर्ष के उपरान्त इसका प्रकाशन आर्थिक कारणों से नहीं सम्भव हो सका । इसी वर्ष आगरा से ज्वालाप्रसाद के संपादन में " धर्म प्रकाश " का प्रकाशन आरम्भ हुआ । इस मासिक पत्र की भाषा हिन्दी और संस्कृत मिश्रित थी ।[1]

1875 में पं0 शिव शंकर ने इलाहाबाद से "प्रयाग धर्मप्रकाश" नामक पाक्षिक पत्र निकाला । इस पूर्ण धार्मिक पत्र की भाषा हिन्दी और संस्कृत मिश्रित थी । 1890 में यह पत्र रुड़की से प्रकाशित होने लगा । इसी वर्ष ज्वालाप्रसाद भार्गव ने आगरा से "सद्मामृतवर्षिणी" नामक पत्रिका आरम्भ की जो 1896 तक प्रकाशित होती रही । 1879 में वाराणसी से "संस्कृत कामधेनुः " 1883 में बरेली से धर्मोपदेशः, 1887 में मथुरा से "आयुर्वेदोद्धारक" 1888 में मथुरा से ही "विद्यामार्तण्ड " और इलाहाबाद से "आरोग्य दर्पण" नामक पत्रों ने संयुक्त प्रान्त में संस्कृत पत्रकारिता को नई दिशा प्रदान किया ।[2] 1890 में " पीयूषवर्षिणी" नामक पत्रिका का प्रकाशन गौरीशंकर वैद्य ने फर्रूखाबाद से प्रारम्भ किया । नयेपन के अभाव तथा आर्थिक संकट के कारण यह पत्र दो वर्ष में ही बन्द हो गया । 1891 में इलाहाबाद से भीमसेन शर्मा ने "मानव धर्म-प्रकाश"तथा 1895 में गोविन्द चन्द्र मिश्र ने"आर्यावर्त तत्त्व--वारिधिः" नामक मासिक पत्रों का प्रकाशन आरम्भ किया । धर्म, दर्शन

1- राम गोपाल मिश्र, संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास, पृ0 31

2- कमलकान्त मिश्र, संस्कृत पत्रकारिता, पृ0 36

एवं प्राचीन भारतीय संस्कृति के विषय में पठनीय सामग्री के बाद भी यह पत्र 1913 तक ही प्रकाशित हो सके ।

ब्रह्मानन्द सरस्वती ने मेरठ से 1891 में "भारतोपदेशक" नामक मासिक पत्र आरम्भ किया ।[1] कर्मकाण्ड तथा धर्म आडम्बर की आलोचना के कारण यह बहुत लोकप्रिय हुआ परन्तु इसे कट्टर हिन्दुओं के विरोध का भी सामना करना पड़ा । बालविवाह, सती प्रथा, दहेज, अन्धविश्वास, छुआछूत, जाति भेद आदि विषयों के सम्बन्ध में इसमें लेख प्रकाशित होते थे । जगन्नाथ शर्मा ने 1895 में इलाहाबाद से "प्रयाग पत्रिका" नामक पत्र का प्रकाशन शुरू किया ।[2] प्रगतिशील धार्मिक विचारों के कारण इसने अत्यधिक ख्याति अर्जित की । 1921 में इसका प्रकाशन बन्द हो गया । बाल कृष्ण शास्त्री ने 1898 में वाराणसी से "पंडित चन्द्रिका " नामक मासिक पत्रिका आरम्भ किया । धर्म, दर्शन एवं संस्कृति विषयक उच्च स्तरीय सामग्री के कारण यह पत्रिका बौद्धिक वर्ग में सराहना अर्जित करने में बहुत सफल रही । संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं ने परोक्ष रूप से नव जागरण में योगदान दिया । तत्कालीन ब्रिटिश शासन की तुलना में प्राचीन भारतीय व्यवस्था को श्रेष्ठ बताकर इन पत्र-पत्रिकाओं ने सामयिक परिस्थितियों पर जनता को गम्भीर रूप से चिन्तन हेतु प्रेरित किया ।

भारत में उर्दू समाचार पत्रों का प्रकाशन उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में लिथोप्रेस के चलन के साथ हुआ । संयुक्त प्रान्त में सर्वप्रथम लिथोप्रेस पर छपाई लखनऊ में आरम्भ हुई । गाजी अलाउद्दीन हैदर ने 1819-20 में लीथो प्रेस पर छपाई होते देखा था । लीथो प्रेस 1824 में बनारस में,

---

1- राम गोपाल मिश्र, संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास, पृ0 52

2- वही, पृ0 56

1826 में आगरा में तथा 1831 में कानपुर में स्थापित हो गये थे ।[1] लीथो प्रेस की स्थापना से उर्दू समाचार पत्रों के प्रकाशन को बल मिला । संयुक्त प्रान्त का प्रथम मुद्रणालय इलाहाबाद में 1845 में लगा । मुद्रणालय की तुलना में लीथो प्रेस में छपाई सस्ती होने के कारण उर्दू पत्रों के प्रकाशन में आसानी हुई ।[2]

संयुक्त प्रान्त में पहला उर्दू अखबार 1833 में पीटर सान्डर नामक ईसाई मिशनरी ने आगरा से आरम्भ किया । इस पत्र का नाम " मौफुसिल अखबार " था । सान्डर ने यह पत्र उर्दू भाषी हिन्दू तथा मुसलमानों को ईसाई धर्म के प्रति आकर्षित करने के उद्देश्य से शुरू किया था ।[3] 1838 में फारसी के अदालत तथा सरकारी काम काज की भाषा न रहने पर उर्दू के विकास का मार्ग प्रशस्त हो गया । 1837 के 31वीं अधिनियम के अन्तर्गत 20 नवम्बर, 1837 को पारित आदेश से सरकारी कार्यालयों में " हिन्दुस्तानी " भाषा का प्रयोग किया जाने लगा । यह संयोग था " हिन्दुस्तानी" का सामान्य तात्पर्य उर्दू भाषा से था । उस समय उर्दू मिश्रित हिन्दी जन सामान्य की बोल चाल की भाषा थी । इसी कारण उर्दू पत्र-पत्रिकाओं का विकास हिन्दू तथा मुसलमानों के सम्मिलित प्रयास एवं सहयोग का परिणाम था । अनेक उर्दू पत्र-पत्रिकाओं के संपादक हिन्दू थे इसलिये उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में उर्दू समाचार पत्र-पत्रिकाओं की भाषा हिन्दी उर्दू मिश्रित थी ।

1- सी०एस०स्टोने, द बिगनिंग आफ प्रिन्टिंग इन इण्डिया, पृ० 460

2- रामरत्न भटनागर, राइज़ ऐण्ड ग्रोथ आफ हिन्दी जर्नलिज्म, पृ० 683

3- जे० नटराजन, हिस्ट्री आफ इन्डियन जर्नलिज्म, पृ० 80

ईसाई पादरी तरशान ने 1837 में वाराणसी से "खैर ख्वाहे हिन्द " नामक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया ।[1] 1842 में लखनऊ से " जलाली " नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन हसन अली महशार ने आरम्भ किया । इस्लाम धर्म का प्रचार करने के उद्देश्य से 1845 में लखनऊ में " अहमदी " नामक मासिक पत्रिका अस्तित्व में आयी । लखनऊ से 1846 में " ख्याली " नामक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ । इसी वर्ष छात्रों में जागृति लाने के उद्देश्य से आगरा में वाजिद अली खाँ ने " सदरूल " अखबार का प्रकाशन आरम्भ किया । आगरा कालेज से प्रकाशित होने वाले इस समाचार पत्र का नाम बाद में " अखबार-उल-हकायक" हो गया और संपादक एक अंग्रेज मिस्टर फैलेन बने ।[2] मेरठ से 1847 में राजनीतिक समाचारों को प्रमुखता देने वाले " जाम-ए-जमशेद" निकाला । इसी वर्ष बरेली में "उमदुल-अल-अखबार" का प्रकाशन ट्रैनियर नामक एक अंग्रेज ने आरम्भ किया जिसके प्रथम संपादक मौलवीक अब्दुल रहमान थे । बनारस में "बनारस गजट " नामक पत्र का प्रकाशन 1847 में ही आरम्भ हुआ ।[3] इस पत्र में स्थानीय के अतिरिक्त राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समाचारों को प्रमुखता से प्रकाशित किया जाता था । वाराणसी से " बागोबहार " मेरठ से "मिताहुल अखबार " तथा आगरा से"अखबार-उल-नवाह" 1849 में अस्तित्व में आने वाले प्रमुख समाचार पत्र थे ।[4] वाराणसी से 1850 में दो पत्र " सयूरीने हिन्द " तथा"आफताबे हिन्द"का प्रकाशन आरम्भ हुआ । अपने सरकार विरोधी रवैये के कारण " सयूरीने हिन्द " ने अनेक उर्दू अखबारों के मध्य अपनी अलग पहचान बनायी । इसी वर्ष आगरा से "नूरूल अखबार" का प्रकाशन शुरू हुआ ।

1- राम रतन भटनागर, राइज़ ऐण्ड ग्रोथ आफ हिन्दी जर्नलिज्म, पृ0 672
2- जे0 नटराजन, हिस्ट्री आफ इन्डियन जर्नलिज्म, पृ0 48
3- एम0 चलपति राव, समाचार पत्र, पृ0109
4- जे0 नटराजन, हिस्ट्री आफ इन्डियन जर्नलिज्म, पृ0 53

सरकार विरोधी समाचार-पत्रों की कड़ी में 1851 में लखनऊ के पत्र "तिलस्मे लखनऊ " का नाम भी जुड़ गया । 1857 के विद्रोह के दौरान इस पत्र की भूमिका महत्वपूर्ण रही । क्रान्ति के बाद यह पत्र सरकार की दमन नीति का शिकार होने के कारण बन्द हो गया । 1851 में ही आगरा से पांच मेरठ से दो वाराणसी से एक तथा कानपुर में एक पत्र लीथो प्रेस पर प्रकाशित हो रहे थे ।

1852 में लखनऊ से "सिहरे-सामरी लखनऊ " नामक पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ । 1857 के विद्रोह के दौरान सरकार का अत्यधिक विरोध इस पत्र ने किया जिसके फलस्वरूप सरकारी दमन का शिकार होकर यह पत्र सदैव के लिये बन्द हो गया । आगरा में भरतपुर के महाराजा के सहयोग से 1853 में " मजहरूल-सरूर " नामक पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ । उर्दू समाचार पत्रों द्वारा गदर में अंग्रेजों के तीव्रतम विरोध तथा गदर के नेताओं और सैनिकों की हर प्रकार से मदद का अद्वितीय उदाहरण 1857 में बदायूँ के चौक बाजार स्थित हबीबुल प्रेस से प्रकाशित 'हबीबुल अखबार' था ।[1] इसके प्रकाशक एवं संपादक मुन्शी हबीब उल्ला थे । इस अखबार के सरकार विरोधी रूख का पता हर अंक में प्रथम पृष्ठ के शीर्ष पर अंकित पद्य से ही स्पष्ट था ।[2]

1- क्षेत्रीय अभिलेखागार, इलाहाबाद में संरक्षित हबीबुल अखबार की प्रतियाँ ।

2- दिखा ऐ खामा तर्जे सिहर साज़ी । रकम कर नक्शाये जादू तराजी ।।
किया तसक्षीर तूने मुल्के अखबार । खबर सच्ची यहाँ लिखना खबरदार ।।
जिसे तर्ज इसका मन्जूरे नजर हो । रसीदे नामा से पहले खबर हो ।।
छपेगा हर जुमे को बस यह अखबार ।वहाँ पहुँचेगा जो होगा खरीददार ।।

इस पत्र ने न केवल अंग्रेज सिपाहियों के अमानुषिक कृत्यों का विवरण अपने पाठकों के लिये लिखा अपितु गदर के सैनिकों की मदद करने के लिये जन सामान्य का आह्वान भी किया । हबीबुल अख़बार उर्दू और फारसी दोनों भाषाओं में छपता था । इस पत्र के प्रति सरकार का क्या दृष्टिकोण था इसका उल्लेख किसी भी अभिलेख में उपलब्ध नहीं है किन्तु अनुमान है कि इसका भविष्य सरकार का विरोध करने वाले तत्कालीन अन्य उर्दू पत्रों से अलग न हुआ होगा ।

1857 के विद्रोह के समय संयुक्त प्रान्त में उर्दू समाचार-पत्र पत्रिकाओं के विकास का पहला दौर पूरा हो गया । अधिकतर उर्दू समाचार -पत्रों की नीति गदर के दौरान सरकार के पक्ष में न होकर विद्रोही नेताओं की समर्थक थी । बेगम हजरत महल, नाना साहब, राव साहब, तात्या टोपे, कुँवर सिंह, बिरजिस कदर, मौलवी अहमद उल्ला, अजीम उल्ला तथा मौलवी लियाकत अली को संयुक्त प्रान्त के अधिकांश समाचार-पत्र पत्रिकाओं का समर्थन प्राप्त था । विद्रोह समाप्ति के पश्चात अधिकतर समाचार पत्र अंग्रेजों के कोप भाजन बनकर बन्द हो गये ।[1]

1858 में कानपुर से " शोलयेतूर " नामक पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ । मुंशी नवल किशोर ने लखनऊ में 1859 में "अवध अखबार" नामक साप्ताहिक पत्र निकाला । एक वर्ष के बाद यह दैनिक हो गया । यह पत्र जन साधारण में कभी भी लोकप्रिय नहीं हो सका क्योंकि इसमें सरकार, प्रभावशाली लोगों तथा अधिकारियों के विरुद्ध कुछ भी प्रकाशित नहीं होता था । इसी समय लखनऊ से प्रकाशित हो रहे एक अन्य पत्र "अवध पंच" के संपादक सज्जाद हुसैन ने "अवध अखबार" की सरकार समर्थक नीति पर टिप्पणी

1- एस0 नटराजन, ए हिस्ट्री आफ प्रेस इन इण्डिया, पृ0 70

शिक्षा के विकास के उद्देश्य से आगरा से 1871 में "आगरा अखबार" नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ । यह पहले " एजूकेशनल गजट " के नाम से छपता था । इसी वर्ष फरहत अली ने लखनऊ से " कौकबे हिन्द " नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुआ । तालुक्केदारों के संगठन की ओर से लखनऊ से 1873 में " अखबारे अन्जुमने हिन्द " का प्रकाशन शुरू हुआ जिसमें सामान्य रूप से सरकार, तालुक्केदार तथा जमींदारों के लिये आवश्यक सूचनाये प्रकाशित होती थी ।[1] 1874 में लखनऊ से अनवर हुसैन के संपादन में " मुरक्काये तहजीब", 1875 में मुंशी पूरन चन्द्र के संपादन में " अखबारे तमन्नायी " तथा 1889 में लखनऊ से मुंशी गुलाम अहमद साबित के संपादन में " मुशीरे कैसर " नामक पत्रों ने अपनी अलग पहचान बनायी ।

1880 से उर्दू पत्र-पत्रिकाओं के दृष्टिकोण तथा उद्देश्य में परिवर्तन आया । इस अवधि में मुस्लिम समाज में रूढ़िवाद, धार्मिक अंध - विश्वास तथा प्रतिक्रियावादी विचारों का विरोध करने के लिये योजनाबद्ध ढंग से प्रयास किये गये । 1883 में गंगा प्रसाद वर्मा द्वारा लखनऊ से प्रकाशित " हिन्दुस्तानी " नामक पत्र ने उर्दू पत्रों को नई दिशा का बोध कराया । राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक घटनाक्रमों पर निष्पक्ष, निर्भीक तथा तटस्थ दृष्टिकोण अपनाने में " हिन्दुस्तानी " पत्र बेजोड़ था ।

कड़ा § इलाहाबाद § से 1885 में रईस खान बहादुर मौलवी फरीदुद्दीन अहमद ने साप्ताहिक पत्र " रिफाहे आम कड़ा " का प्रकाशन आरम्भ किया[2]। इसके संपादक शेख निहाल अहमद अल्वी हमीदी थे ।

1- ग्रासिन डीतासी, अर्वा डी हिन्दुस्तानी, उर्दू एट हिन्दी डिसकर्स - डी आइवरचर, भाग - 2, पृष्ठ 156

2- शालिग्राम श्रीवास्तव, प्रयाग प्रदीप, पृष्ठ 164

इस पत्र का नाम बाद में " हामी हिन्द कड़ा " हो गया । यह पत्र केवल तीन वर्ष तक प्रकाशित हुआ । इन्हीं दिनों कड़ा से प्रकाशित हो रहे अन्य प्रमुख पत्र " कड़ा पंच " " अल अहसान " तथा " हमदर्द " थे । इसी वर्ष काव्यमय शैली में आगरा से प्रकाशित " गुलदस्तये शुकून " ने अत्यधिक लोकप्रियता अर्जित की । काव्यमयी परम्परा की शैली में प्रकाशित होने वाले अन्य प्रमुख पत्र लखनऊ के " पयामे यार " "तोहफये इश्शाक " कन्नौज के " पयामे आशिक " तथा गोरखपुर के " इबे फितना " प्रमुख थे । 1890 में मुरादाबाद के सुदर्शन प्रेस से प्रख्यात क्रान्तिकारी सूफी अम्बा प्रसाद ने सरकार की नीतियों का विरोध करने के उद्देश्य से " सितारे हिन्द " नामक मासिक पत्र निकाला । सरकार का दमन चक्र शुरू होने पर उन्होंने इसे पहले " जाम्युल-उलूम " तथा बाद में " चारपूज " नाम से प्रकाशित किया । इसी वर्ष शौकत जाफरी ने लखनऊ से " शौकत जाफरी अखबार " नामक मासिक पत्र आरम्भ किया ।[1]

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में प्रकाशित होने वाले अन्य चर्चित अखबार " दिल गुदाज "§लखनऊ,1893§, "खदंगे नजर"§ लखनऊ, 1898§, " आइनये तन्दुरूस्ती "§इलाहाबाद,1895§, "अल रफीक"§वाराणसी 1896§ तथा " रहबर " §मुरादाबाद,1896§ प्रमुख थे । उन्नीसवीं शताब्दी के उर्दू समाचार पत्र,पत्रिकाओं में यद्यपि प्रगतिशील विचारों तथा सरकार विरोधी राजनैतिक समाचारों केस्थान मिलने लगा था किन्तु अधिकांश सीमा तक ये धार्मिक, साहित्यिक तथा शैक्षिक सामग्री का प्रकाशन करते थे ।

1- राम रतन भटनागर, राइज़ ऐण्ड ग्रोथ आफ हिन्दी जर्नलिज्म, पृ0670

::x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x::

* अध्याय – द्वितीय *

** उत्तर प्रदेश के प्रमुख समाचार पत्र एवं पत्रिकायें **

::x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x::

बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दशक समाचार पत्र पत्रिकाओं को नवीन आयाम देने की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण थे । भारत के राजनीतिक पटल पर बढ़ रही घटनाओं ने सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया । विचार अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होने के कारण तथा अन्य संचार माध्यमों के अविकसित होने से समाचार पत्र, पत्रिकाओं का दायित्व बहुत अधिक बढ़ गया था । राष्ट्रीय धारा से जुड़ने के प्रयास में उर्दू, हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं में काफी परिवर्तन आया तदापि सभी भाषाओं के पत्र-पत्रिकाओं का विकास एक जैसा नहीं हो पा रहा था । उर्दू समाचार पत्र-पत्रिकाओं को फारसी भाषा के पत्र-पत्रिकाओं की उपलब्धि का लाभ अवश्य मिला था किन्तु सरकार के विरूद्ध कुछ अधिक प्रकाशित करने का साहस न जुटा पाने तथा साहित्यिक, सामाजिक तथा धार्मिक क्रिया-कलापों की चर्चाओं में अपने को केन्द्रित रखने के कारण उर्दू समाचार पत्र-पत्रिकायें प्रयास के बाद भी राष्ट्रीय धारा से नहीं जुड़ पा रहे थे । इसके विपरीत हिन्दी एवं अंग्रेजी समाचार पत्रों का विकास धीमी गति से किन्तु योजनाबद्ध ढंग से हो रहा था । संस्कृत समाचार पत्र-पत्रिकाओं की स्थिति यद्यपि हिन्दी और अंग्रेजी पत्रों के समान नहीं थी फिर भी राष्ट्रीय हितों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के कारण वे संकीर्ण नहीं थे जिसके कारण उनकी स्थिति उर्दू समाचार पत्र-पत्रिकाओं की तुलना में बेहतर थी ।

राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा मदन मोहन मालवीय ने उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दी के संवर्धन के लिये अथक प्रयास किये । 1857 के गदर से सबक ले चुकी तत्कालीन ब्रिटिश सरकार भाषा, धर्म अथवा सम्प्रदाय के विवाद में नहीं पड़ना चाहती थी किन्तु हिन्दी और फारसी समर्थक लोगों द्वारा अलग अलग आन्दोलन चलाने के कारण सरकार ने गम्भीरतापूर्वक विचार करने के बाद इसमें हस्तक्षेप करने

का निर्णय लिया । 18 अप्रैल, 1900 को संयुक्त प्रान्त के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर मैकडानल्ड ने हिन्दी को उचित स्थान दिये जाने के सम्बन्ध में आदेश कर दिये ।[1] राज्य सरकार के नवीन आदेश से सरकारी कार्यालयों तथा न्यायालयों में हिन्दी में प्रार्थना पत्र देने की अनुमति प्रदान कर दी गई । न्यायालयों के आदेश तथा सरकार एवं राजस्व अधिकारियों की अधिसूचनायें नागरी लिपि में जारी करना अनिवार्य कर दिया गया । इसके साथ ही राजकीय सेवाओं में जाने के इच्छुक लोगों के लिये अंग्रेजी के अतिरिक्त उर्दू अथवा हिन्दी में से किसी एक में प्रवीण होना अनिवार्य घोषित किया गया । नागरी लिपि को फारसी लिपि का दर्जा मिल जाने से हिन्दी समाचार पत्र-पत्रिकाओं की सुविधाओं तथा पाठकों में वृद्धि हो गयी ।

इलाहाबाद में हिन्दी की युग प्रवर्तक मासिक पत्रिका "सरस्वती" का प्रकाशन 1900 में इन्डियन प्रेस से आरम्भ हुआ । इसके प्रकाशक चिन्तामणि घोष को वाराणसी के श्याम सुन्दर दास और राधा कृष्ण दास ने प्रेरणा दी थी । 1899 में चिन्तामणि घोष ने काशी नागरी प्रचारिणी सभा से 'सरस्वती' के संपादन का भार लेकर उसे प्रकाशित करने का आग्रह किया । नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रकाशन करने में असमर्थता प्रकट करते हुये संपादन में पूरा सहयोग करने का आश्वासन दिया । प्रारम्भिक वर्षों में 'सरस्वती' का संपादन नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा गठित एक पाँच सदस्यी समिति ने किया । जगन्नाथ दास रत्नाकर, राधाकृष्ण दास, श्यामसुन्दर दास, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, पदुमलाल पुन्ना लाल बख्शी, देवीदत्त शुक्ल, ठाकुर श्रीनाथ सिंह तथा श्रीनारायण चतुर्वेदी इसके संपादक रहे ।

1- एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ यूनाइटेड प्राविन्सेज़ आफ आगरा एण्ड अवध, § 1900 - 1901 §, पृ० 37

एक अरसे तक इसमें सामाजिक सांस्कृतिक तथा शैक्षिक विषयों पर विचारो-
-त्तेजक लेख प्रकाशित होते रहे । ठाकुर श्रीनाथ सिंह के संपादन काल में
इसमें राजनीतिक लेख भी प्रकाशित होने लगे । इसी वर्ष लखनऊ में "एडवोकेट"
का प्रकाशन कांग्रेस के दो शीर्ष नेताओं विशन नारायण दर और अम्बिका
चरण मजूमदार के संपादन में आरम्भ हुआ । बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक
में अम्बिकाचरण मजूमदार के निधन से इसका प्रकाशन बन्द हो गया ।[1]
बनारस में माधवप्रसाद मिश्र तथा देवकीनन्दन खत्री ने सुदर्शन नामक पत्र का
प्रकाशन आरम्भ किया । चौदह वर्ष पश्चात इसका प्रकाशन लखनऊ से होने
लगा ।

लखनऊ से ज्ञान सिंह के संपादन में " अवध समाचार " नामक
साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन 1901 में आरम्भ हुआ । यह केवल 1904 तक
प्रकाशित हो सका । रहस्य रोमांच प्रधान पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन
वाराणसी में गोपाल राम गहमरी ने "जासूस" नाम का पत्र निकालकर
आरम्भ किया था । इसी क्रम में 1901 में वाराणसी से ही "हिन्दी -
नावेल" तथा " निगमागम चन्द्रिका " का प्रकाशन शुरू हुआ । वाराणसी
से "मित्र", लखनऊ से "गोपाल पत्रिका" इलाहाबाद से "कर्त्तव्य सुधा निधि"
तथा लैन्सडाउन से "गढ़वाली समाचार" नामक मासिक पत्रिकायें 1901 में
प्रकाशित होने वाले प्रमुख समाचार पत्र-पत्रिकायें थी ।

1902 में लखनऊ से रामदास वर्मा के संपादन में "वसुन्धरा"
इटावा से भीम सेन शर्मा के सम्पादन में " ब्राह्मण सर्वस्व ", वृन्दावन
से बृजलाल के संपादन में "बृजबासी" तथा इलाहाबाद से "आर्य बाल हितैषी"

1- जे0 नटराजन, हिस्ट्री आफ इन्डियन जर्नलिज्म, पृ0 141

नामक पत्र-पत्रिकायें अस्तित्व में आयीं । 1903 में इलाहाबाद से प्रकाशित "कायस्थ समाचार" का अंग्रेजी संस्करण "हिन्दुस्तान रिव्यू" के नाम से प्रकाशित होने लगा । इस उच्च स्तरीय पत्र के संपादक सच्चिदानन्द सिन्हा थे । 1921 के पश्चात यह पत्र मासिक से त्रैमासिक हो गया । 1903 में ही सच्चिदानन्द सिन्हा ने इलाहाबाद से "इन्डियन पीपुल" नामक अंग्रेजी - साप्ताहिक का प्रकाशन आरम्भ किया । 1905 से इलाहाबाद में "न्यूज पेपर लिमिटेड" के तत्वाधान में "लीडर" नामक अंग्रेजी साप्ताहिक का, प्रकाशन आरम्भ हुआ । इसी वर्ष इटावा से मुंशी शिवचरण लाल के संपादन में " कायस्थ कुल भास्कर " तथा कानपुर से बाबू सीताराम के संपादन में "सिपाही" नामक मासिक पत्रों का प्रकाशन आरम्भ हुआ । कतिपय कारणों से 1905 में "सिपाही" का प्रकाशन बन्द हो गया । कन्नौज से पुत्तन लाल के संपादन में "मोहनी" नामक द्वैमासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ जो कि 1906 में अर्द्ध साप्ताहिक तथा 1908 में साप्ताहिक हो गई । इसी वर्ष वाराणसी से मासिक पत्र "वाणिज्य सुखदायक" जगन्नाथ प्रसाद के संपादन में अस्तित्व में आया ।[1] काशी के "उपन्यास सागर" लखनऊ से " आर्य वनिता ; बिजनौर से " अबला हितकारक " तथा इलाहाबद से अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र " सिटीजन " इस वर्ष प्रकाशित होने वाले पत्रों में प्रमुख थे ।

1903 में कुल पंजीकृत पत्रों की संख्या 131 थी जिनमें 1 दैनिक, 27 त्रैमासिक, 43 साप्ताहिक तथा 59 मासिक पत्र थे ।[2]

1904 में अमृतलाल चक्रवर्ती के संपादन में भारत धर्म महामंडल की ओर से धार्मिक मासिक पत्र "ब्राह्मण सर्वस्व " का प्रकाशन आरम्भ हुआ । हरिद्वार से गुरुकुल कांगड़ी के मुख पत्र के रूप में स्वामी श्रद्धानन्द ने

1- अम्बिका प्रसाद बाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, पृ0242

2- एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ युनाइटेड प्राविन्सेज आफ आगरा एण्ड अवध, (1903 - 1904) पृ0 161

" सत्यवादी " नामक मासिक पत्र का प्रकाशन पं0 रूद्र दत्त के संपादन में शुरू किया । धर्म, दर्शन तथा प्राचीन शिक्षा पद्धति के विषय में लेख इसमें प्रमुखता के आधार पर प्रकाशित किये जाते थे । इसी वर्ष कानपुर से "रसिक विनोद", बनारस से "मानस-पत्रिका" लखनऊ से "गुप्ताधार" नामक मासिक पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हुआ । इलाहाबाद से इसी वर्ष साप्ताहिक पत्र " ला जर्नल" का प्रकाशन भी महत्वपूर्ण था ।

गढ़वाली यूनियन के तत्वाधान में वर्ष 1905 में गिरिजादत्त नैथानी ने " गढ़वाली " नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन देहरादून से आरम्भ किया । इस पत्र के अन्य संपादक तारादत्त गैरोला, विशम्भर दत्त चन्दोला रहे ।[1] यह पत्र यद्यपि ब्रिटिश शासन का प्रबल विरोधी नहीं था किन्तु उत्तराखण्ड की ग्रामीण समस्याओं, पर्वतीय क्षेत्र की वन सम्पदा की सुरक्षा तथा अधिकारियों के शोषण के विषय में इस पत्र ने जनहित को ध्यान में रखकर अपनी नीति निर्धारित की । इसी वर्ष आगरा से हनुमंत सिंह के संपादन में 'स्वदेश बन्धु' नामक पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ जो 1920 तक चलता रहा । कानपुर से "कान्यकुब्ज" काशी से "इतिहास" प्रतापगढ़ से "कला कौशल" तथा इलाहाबाद से " राघवेन्द्र " नामक पत्र इस वर्ष पहली बार अस्तित्व में आये । कानपुर से 1906 में " ब्राह्मण कुल चन्द्रिका " तथा मिर्जापुर से बिहार व उड़ीसा शोध समिति के संस्थापक काशीप्रसाद जायसवाल के संपादन में " कलवार महती सभा " की ओर से "कलवार गजट " नामक दो प्रमुख जातीय मासिक पत्रों का प्रकाशन आरम्भ हुआ ।[2] अलीगढ़ से शिव चरण लाल के सम्पादन में " छात्र हितैषी " तथा बनारस से किशोरीलाल गोस्वामी के सम्पादन में "बाल प्रभाकर " नामक दो मासिक पत्र अस्तित्व में आय

1- भक्त दर्शन, संपादकाचार्य को प्रणाम §लेख§ उ0प्र0 मासिक, मई 1980, पृ0 38

2- अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, पृ0 249

इसी वर्ष देहरादून के बद्री केदार प्रेस ने विशालमणि थपलियाल के संपादन में " विशाल कीर्ति" का प्रकाशन प्रारम्भ किया ।[1] वाराणसी से " मनोहर पत्रिका " " पियूष प्रवाह ", "खेत, खेती और खतिहर ", वृन्दावन से " सद्धर्म " और इलाहाबाद से "सदधर्म कौस्तुभ" तथा "भारत भूमि" नामक नई मासिक पत्रिकाओं का प्रकाशन इसी वर्ष शुरू हुआ । इस वर्ष संयुक्त प्रान्त में कुल 153 पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा था जिनमें तेरह अंग्रेजी तथा चालीस हिन्दी की पत्र-पत्रिकायें थी ।[2]

1907 में महामना मदनमोहन मालवीय के सम्पादकत्व में इलाहाबाद से बसन्त पंचमी के दिन "अभ्युदय" का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसका उद्देश्य भारतीयों में राजनीतिक तथा सामाजिक जागृति लाना था । मालवीय जी के बाद क्रमशः इसके सम्पादक पुरुषोत्तम दास टण्डन, वैंकटेश नारायण तिवारी, सत्यानन्द जोशी, कृष्णकान्त मालवीय तथा पद्मकान्त मालवीय रहे । " अभ्युदय " कई बार साप्ताहिक से दैनिक हो गया किन्तु अन्ततः वह साप्ताहिक ही रहा । पद्मकान्त मालवीय के सम्पादन काल में "अभ्युदय" अग्र राष्ट्रीय पत्र हो गया था । देश की आर्थिक तथा राजनीतिक स्थिति पर "अभ्युदय" की सम्पादकीय टिप्पणियों ने लोकप्रियता की दृष्टि से इसे हर वर्ग का पत्र बना दिया था । 1907 में ही देहरादून से गिरिजा दत्त नैथानी ने "पुरुषार्थ" नामक साप्ताहिक का प्रकाशन आरम्भ किया । इसी वर्ष तुलसीराम के सम्पादकत्व में मेरठ से "दयानन्द पत्रिका" का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसका उद्देश्य आर्य समाज के सिद्धान्तों का प्रचार करना था । आर्य समाजी विचारधारा से ही प्रभावित "स्नातक धर्म पताका " नामक मासिक पत्र का प्रकाशन मुरादाबाद से रामचन्द्र शर्मा के सम्पादन में हुआ ।

1- वेद प्रताप वैदिक, हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम, पृष्ठ 139

2- एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ यूनाइटेड प्राविन्सेज आफ आगरा एण्ड अवध, § 1904 - 1905 §, पृष्ठ 45

यह पत्र बहुत जनप्रिय हुआ और 1950 तक इसका प्रकाशन तद्वत रहा । इसी समय लखनऊ से गोपाल खत्री के सम्पादन में " नागरी प्रचारक " नामक मासिक पत्र अस्तित्व में आया । इसका प्रमुख उद्देश्य अदालतों में देवनागरी लिपि के प्रयोग को प्रोत्साहन देना था । चुनार §मिर्जापुर§ से "कुर्मी क्षत्रिय हितैषी " नामक जातीय मासिक पत्र तथा वाराणसी से "हिन्दी केसरी " नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । यह पत्र पूर्णतया विचारपूर्ण लेखों के लिए अति प्रसिद्ध था । वाराणसी से "उपन्यास बहार " तथा जौनपुर से "रसिक रहस्य" 1907 में पहली बार प्रकाशित होने वाली नयी मासिक पत्रिकाएँ थी । 1907 में कुल चौबीस नये पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ जिसमें छः हिन्दी तथा पाँच अंग्रेजी के थे । " माडर्न रिव्यू " तथा "हिन्दुस्तान रिव्यू" इलाहाबाद, "एडवोकेट" लखनऊ, "निगमागम चन्द्रिका" वाराणसी, "सरस्वती" इलाहाबाद, "आर्यमित्र" तथा "राजदूत" आगरा और "अभ्युदय" इलाहाबाद संयुक्त प्रान्त में लोकप्रियता की दृष्टि से सर्वाधिक चर्चित पत्र-पत्रिकाएँ हुआ करती थीं । 1908 में कालाकांकर से प्रकाशित "हिन्दुस्तान" §अंग्रेजी व हिन्दी§ दैनिक के बन्द हो जाने पर कुंवर रमेश सिंह के सम्पादन में "सम्राट" नामक दैनिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । 1908 तक कालाकांकर के राजा का भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से लगाव अनेक कारणवश लगभग समाप्त हो गया था । उन दिनों देश में तेजी से हो रही राष्ट्रीय जागृति के फलस्वरूप अंग्रेजों के विरुद्ध वातावरण था । ऐसी स्थिति में "सम्राट" लोकप्रिय नहीं हो सका । 1910 में "हिन्दी प्रदीप" के बन्द हो जाने पर बालकृष्ण भट्ट ने कुछ समय तक सम्पादकीय विभागों में काम किया । 1911 में 'सम्राट' का प्रकाशन पूर्णतया बन्द हो गया ।[1] इसी वर्ष लखनऊ से शिवबिहारी लाल बाजपेयी के सम्पादन में "अवधवासी" साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इलाहाबाद से बाँके लाल के सम्पादन में "कलवार मित्र" बनारस से बालमुकुन्द वर्मा के सम्पादन में "खत्री हितकारी" तथा मेरठ से सादीराम वर्मा के सम्पादन में "क्षत्रिय" इस वर्ष प्रकाशित होने वाले प्रमुख

1- अम्बिका प्रसाद बाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, पृ0 334

जातीय मासिक पत्र थे । वृन्दावन से "वैष्णव धर्म दिवाकर " नामक वैष्णवों का मासिक पत्र प्रारम्भ हुआ । इसका उद्देश्य वैष्णव धर्म प्रचार तथा वैष्णव धर्म के विरुद्ध किए जा रहे प्रचार का उत्तर देना था ।

1908 में ही इलाहाबाद से पण्डित सदाशिव राव के संपादन में "भारतवासी" का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । 1914 तक इसका प्रकाशन नियमित रहा । 'भारतवासी' में स्थानीय समाचारों के अतिरिक्त राजनीतिक तथा धार्मिक लेख भी छपते थे । उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में आर्य समाज ने प्रचार के लिए पत्रकारिता को माध्यम बनाया तथा अनेक शिक्षण संस्थाएँ स्थापित की । इन शिक्षण संस्थाओं में हरिद्वार स्थित गुरुकुल कांगड़ी प्रमुख थी । गुरुकुल कांगड़ी ने राष्ट्रभाषा राष्ट्रीयता तथा वैदिक साहित्य के उन्नयन में विशेष योगदान दिया । यहाँ के स्नातकों ने पत्रकार बनकर पत्रकारिता को विकसित करने में योग दिया । 1908 में हरिद्वार से "आर्य सिद्धान्त" नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ ।[1]

1908 में सरकारी सर्वेक्षण के अनुसार संयुक्त प्रान्त में 114 पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होता था जिसमें से साठ प्रतिशत पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक हिन्दू थे । इनमें बारह आर्य समाजी तथा छः बंगाली थे । तैंतीस प्रतिशत के मुसलमान शेष के ईसाई व अन्य जाति के लोग थे । पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की दृष्टि से इलाहाबाद तथा लखनऊ सबसे आगे थे । दोनों शहरों में सोलह-सोलह पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही थीं । इसके बाद आगरा से चौदह तथा मुरादाबाद से दस पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हो रही थीं ।[2]

1- राम रतन भटनागर, राइज़ ऐण्ड ग्रोथ आफ हिन्दी जर्नलिज्म, पृ0 463

2- एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ युनाइटेड प्राविंसेन्स आफ आगरा एण्ड अवध, § 1908-1909 §, पृ0 45

1909 में इलाहाबाद से पंडित सुन्दर लाल ने जन्माष्टमी के दिन "कर्मयोगी" नामक उग्रवादी राष्ट्रीय क्रान्तिकारी विचारों के पाक्षिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया । पंडित सुन्दरलाल क्रान्तिकारी विचारों के थे । क्रान्तिकारी विचारों से पूर्ण भाषण देने के आरोप में इन्हें इलाहाबाद विश्वविद्यालय से निष्कासित कर दिया गया था । सुन्दर लाल के कुशल संपादन से "कर्मयोगी" जनता में बहुत लोकप्रिय हो गया था और उसी वर्ष वह बसन्त पंचमी के दिन साप्ताहिक पत्र हो गया । सरकार ने आपत्ति जनक लेखों के प्रकाशन को रोकने के उद्देश्य से पत्र से जमानत मांगी । जमानत न देने के कारण अप्रैल 1910 में "कर्मयोगी" का प्रकाशन बन्द हो गया ।[1]

इलाहाबाद से "पायनियर" के टक्कर में राष्ट्रीय विचारधारा के अंग्रेजी के कई पत्रों के बन्द हो जाने पर मदनमोहन मालवीय तथा उनके मित्रगण अंग्रेजी का दैनिक पत्र प्रकाशित करने का विचार कर रहे थे । इस उद्देश्य से 1909 में "न्यूज पेपर्स लिमिटेड" नामक एक कम्पनी स्थापित की गई । इसके प्रथम अध्यक्ष पण्डित मोती लाल नेहरू थे । इस कम्पनी के तत्वाधान में 24 अक्टूबर 1909 को विजयदशमी के दिन "लीडर" अंग्रेजी दैनिक का प्रकाशन शुरू हुआ । "लीडर" में सतीशचन्द्र बनर्जी द्वारा सम्पादित अंग्रेजी साप्ताहिक "इन्डियन पीपुल" का विलय हो गया ।[2] "लीडर" के प्रधान संपादक नगेन्द्र नाथ गुप्त तथा सहायक संपादक सी0वाई चिन्तामणि थे । नगेन्द्र नाथ गुप्त के लाहौर के 'ट्रिब्यून' में चले जाने पर चिन्तामणि संपादक हो गये । चिन्तामणि के संपादकत्व में "लीडर" की प्रगति से सरकारी समर्थन प्राप्त "पायनियर" का प्रभाव कम हो गया ।

1- एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ यूनाइटेड प्राविन्सेज आफ आगरा एण्ड अवध, {1910-1911}, पृ0 51

2- शालिग्राम श्रीवास्तव, प्रयाग प्रदीप, पृ0163

1909 में ही बनारस से अम्बिका प्रसाद गुप्त के सम्पादन में "इन्दु" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । "इन्दु" अति-विशिष्ट साहित्यिक पत्रिका थी । सुविख्यात कवि जयशंकर प्रसाद इससे सम्बद्ध थे । साहित्यिक क्षेत्र में " इन्दु " की तुलना कई मामलों में "सरस्वती" से की जा सकती है । 1910 में इसका प्रकाशन इन्दौर से होने लगा । उस समय "इन्दु" के सम्पादक सीताराम दिनकर थे । इसी वर्ष आगरा से सरस्वती भण्डार से "सारस्वत" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन ज्योति स्वरूप शर्मा के सम्पादन में प्रारम्भ हुआ । इसका प्रकाशन 1919 तक होता रहा । " देहाती " नामक मासिक पत्रिका काशी से निकली । इसके सम्पादक मुंशी गुलाबचन्द्र थे । इसी वर्ष दो धार्मिक पत्र चुनार §मिर्जापुर§ से श्रीकान्त उपासनी के सम्पादन में " जान्हवी" तथा फर्रूखाबाद से उमराव सिंह के संपादन में " साधु समाचार" अस्तित्व में आए । इलाहाबाद से महिलाओं की दो मासिक पत्रिकाओं " गृहलक्ष्मी " तथा " स्त्री धर्म शिक्षक " का प्रकाशन शुरू हुआ । " गृहलक्ष्मी " के सम्पादक पंडित सुदर्शनाचार्य थे । "गृहलक्ष्मी" में सामाजिक कुरीतियों की आलोचना की जाती थी तथा नारी शिक्षा व स्वतंत्रता पर बल दिया जाता था । संयोग से पंडित सुदर्शनाचार्य ने भी गोपालादेवी नामक एक विधवा से विवाह किया था ।[1] "स्त्री धर्म शिक्षक " की सम्पादिका यशोदा देवी थीं । उनकी पत्रिका में महिलाओं के लिए उपयोगी जानकारी तथा औषधियों के नुस्खे प्रकाशित होते थे । "वैदिक -सर्वस्व" §इलाहाबाद§ मासिक पत्र तथा इलाहाबाद से ही "फौजी अखबार " 1909 में प्रकाशित होने वाले अन्य नए पत्र थे ।[2]

1- राम रतन भटनागर, राइज़ ऐण्ड ग्रोथ आफ हिन्दी जर्नलिज्म, पृ0 492

2- वही, पृ0 492

1910 में इलाहाबाद से अभ्युदय प्रेस से एक उच्चस्तरीय मासिक पत्रिका " मर्यादा " का प्रकाशन महामना मदनमोहन मालवीय जी के प्रयास से शुरू हुआ । प्रारम्भ में इसका सम्पादन पुरूषोत्तमदास टण्डन ने किया । 1921 में "मर्यादा" का प्रकाशन सम्पूर्णानन्द के संपादकत्व में वाराणसी के "ज्ञान मण्डल" से होने लगा । सम्पूर्णानन्द के राजनीति में सक्रिय होने के कारण इसका सम्पादन समय से नहीं हो पा रहा था । एक दो अंक नियमित रहने के बाद 1924 में "मर्यादा" का प्रकाशन बन्द हो गया ।

1910 में ही वाराणसी से केशवदेव शास्त्री ने "नवजीवन" मासिक का प्रकाशन प्रारम्भ किया । इसके माध्यम से धर्मपीठिका काशी में आर्यसमाज पर किए जाने वाले आक्षेपों का अनुकूल उत्तर दिया जाता था । इलाहाबाद से जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल के सम्पादन में "सुधा निधि", आगरा से बाबूराम शर्मा के सम्पादन में "सुधांशु" तथा वृन्दावन से "श्रीकृष्ण चैतन्य चन्द्रिका" इस वर्ष पहली बार प्रकाशित होने वाले नये मासिक पत्र थे ।[1] संयुक्त प्रान्त में 1910 में कुल 137 पत्र - पत्रिकायें प्रकाशित हो रहे थे । इनमें से हिन्दी के 56 तथा अंग्रेजी के 14 थे । आर्थिक कारणों से 20 पत्र - पत्रिकाओं का प्रकाशन बन्द हो गया ।[2]

आर्य समाज की विचारधारा के मासिक पत्र "भास्कर" का प्रकाशन 1911 में मेरठ से रघुवीरशरण दुबलिश के संपादन में आरम्भ हुआ । अलीगढ़ में जिला बोर्ड की ओर से मनोहर लाल के संपादन में "अलीगढ़ जिला गजट" नामक साप्ताहिक पत्र अस्तित्व में आया । यह 1920 तक प्रकाशित हुआ ।

1- अम्बिका प्रसाद बाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, पृ0 269

2- एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ यूनाइटेड प्राविन्सेज आफ आगरा एण्ड अवध, § 1911-12 §, पृ0 53

विद्यावती देवी के सम्पादन में देहरादून से महिलाओं का पाक्षिक पत्र " महिला हितकारक " तथा संत भगवान दास के संपादन में हरिद्वार से "कामधेनु" नामक मासिक पत्र अस्तित्व में आये । वाराणसी से काली प्रसाद के संपादन में "तेली समाचार " तथा इलाहाबाद से इन्द्रदेव प्रसाद चतुर्वेदी के संपादन में "श्री सरयूपारिण" नामक दो जातीय पत्रों का प्रकाशन इसी वर्ष शुरू हुआ । इस वर्ष कुल समाचार पत्रों-पत्रिकाओं की संख्या 126 थी । नये प्रकाशित पत्र-पत्रिकायें अधिकांशतः हिन्दी की थीं ।[1]

1912 में वृन्दावन से सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी राजा महेन्द्र प्रताप ने "प्रेम" नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया । वे 1919 तक इसके संपादक रहे तत्पश्चात भगवान दास केला के संपादकत्व में यह पत्र 1927 तक निरन्तर प्रकाशित होता रहा । " प्रेम " में ब्रज संस्कृति, धर्म तथा शिक्षा पर विविध प्रकार की सामग्री का प्रकाशन होता था । इस वर्ष संयुक्त प्रांत में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं की संख्या 271 थी । 18 पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन बन्द हो गया ।[2]

1913 में कानपुर से गणेशशंकर विद्यार्थी के संपादन में " प्रताप " साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ । 23नवम्बर,1920 को यह पत्र साप्ताहिक से दैनिक हो गया ।[3] "प्रताप" का प्रकाशन संयुक्त प्रान्त में पत्रकारिता की एक महत्वपूर्ण घटना थी । अत्याचारों के प्रति रोष, वीरत्व और देशभक्ति के प्रति श्रद्धा तथा कर्तव्य के प्रति अविचलित निष्ठा "प्रताप" में परिलक्षित होती थी । सरकार की आलोचना व जनसामान्य का पक्ष लेने के कारण "प्रताप" पर अनेक बार संकट आये जिससे उसकी आर्थिक स्थिति कमजोर हो गयी । 1931 में कानपुर में हुये हिन्दू-मुस्लिम दंगे में गणेशशंकर विद्यार्थी के शहीद हो जाने के बाद बालकृष्ण शर्मा"नवीन"

1- एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ यूनाइटेड प्राविन्सेज़ आफ आगरा एण्ड अवध, {1911-12}, पृ0 91

2- वही, {1912-13}, पृ0 48

3- डॉ0लल्लन मिश्र, कानपुर में हिन्दी पत्रकारिता का विकास और गणेशशंकर विद्यार्थी{लेख} "आज" भारत 1975 विशेषांक,पृ0233

ने " प्रताप " का सम्पादन किया । 1965 में आर्थिक कारणों से "प्रताप" दैनिक का प्रकाशन बन्द हो गया ।[1]

1913 में ही इलाहाबाद से गिरजाकुमार घोष के सम्पादन में " सम्मेलन-पत्रिका" का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसमें हिन्दी साहित्य सम्मेलन से सम्बन्धित आवश्यक जानकारी तथा हिन्दी, इतिहास, संस्कृति तथा दर्शन पर खोजपूर्ण लेख प्रकाशित होते थे । मिर्जापुर से 1913 में ही वाराणसी की ग्रन्थ प्रकाशन समिति की ओर से लक्ष्मीनारायण के सम्पादन में "नवनीत" नामक मासिक पत्र प्रारम्भ हुआ । प्रतापगढ़ से "किसानोपकारक" मासिक पत्र अस्तित्व में आया । 1913 में संयुक्त प्रान्त में कुल 317 पत्र प्रकाशित हो रहे थे । इनमें सर्वाधिक इलाहाबाद से 56 पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती थीं ।[2]

1914 में वाराणसी से हिन्दी साहित्य विद्यालय की ओर से वीरेन्द्र बहादुर तथा लाला भगवानदीन के संयुक्त सम्पादन में "राजभक्त" मासिक पत्र अस्तित्व में आया । यह पत्र सरकार की नीतियों का पूर्ण समर्थक था । इसलिए जनता में लोकप्रिय न हो सका । इलाहाबाद से प्रयाग हिन्दी प्रेस से रामजी लाल शर्मा ने "विद्यार्थी" नामक मासिक पत्रिका प्रकाशित की । इसमें छात्र कल्याण सम्बन्धी बातों पर प्रकाश डाला जाता था ।

1914 में ही बुलन्दशहर से सैय्यद अशफाक हुसेन के सम्पादन में "डिस्ट्रिक्ट गजट" नामक द्विभाषी §हिन्दी, उर्दू§ साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ । वृन्दावन से श्री गोणेश्वर सम्प्रदाय की मासिक —

1- डॉ0 लल्लन मिश्र, कानपुर में हिन्दी पत्रकारिता का विकास और गणेशशंकर विद्यार्थी § लेख § "आज" भारत 1975 विशेषांक पृ0235

2- एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ यूनाइटेड प्राविन्सेज आफ आगरा एण्ड अवध, § 1913-14§, पृ0 21

पत्रिका " श्री कृष्ण चन्द्रिका " का प्रकाशन राधाचरण गोस्वामी के सम्पादन में प्रारम्भ हुआ । 1920 में यह पत्रिका पटना से छपने लगी । मैनपुरी से पंडित जीवालाल दुबे ने कृषि सम्बन्धी मासिक पत्र "कृषि सुधार" निकाला । अयोध्या §फैजाबाद§ से तुलसी सत्संग महासभा का मुख्य पत्र " श्री तुलसीपत्र " नामक मासिक पत्र श्री छेदीराम द्विवेदी ने प्रारम्भ किया । इसके सम्पादक बलराम विनायक थे । कानपुर से हरिहर प्रसाद के सम्पादन में "सत्यसिंधु" मासिक पत्रिका अस्तित्व में आई ।[1]

1915 में इलाहाबाद से विज्ञान परिषद के तत्वाधान में लाला सीताराम तथा श्रीधर पाठक के संयुक्त संपादन में "विज्ञान" नामक मासिक पत्रिका का संपादन आरम्भ हुआ ।[2] 1913 में वर्नाक्युलर सांइटफिक लिटरेचर सोसायटी के सदस्य गंगानाथ झा, सालिगराम भार्गव, रामदास गौड़ तथा हमीदुद्दीन ने भारतीय भाषा में " विज्ञान " का पत्र प्रकाशित करने का निर्णय किया था । विज्ञान का प्रकाशन उसी के अन्तर्गत हुआ । 1915 से 1947 के मध्य लाला सीताराम व श्रीधर पाठक के अतिरिक्त गोपाल स्वरूप भार्गव, प्रो0 व्रजराज, डा0 सत्यप्रकाश, रामदास गौड़, डॉ0 गोरख प्रसाद, संतप्रसाद टण्डन तथा राम चरण मेहरोत्रा, "विज्ञान" के संपादक रहे । "विज्ञान"संयुक्त प्रान्त में ही नहीं अपितु सारे देश में हिन्दी में विज्ञान की पहली पत्रिका थी । अनूठी, रोचक तथा उपयोगी सामग्री के प्रकाशन के कारण वह बहुत लोकप्रिय हुई । इसका प्रकाशन अभी भी हो रहा है ।

1- अम्बिका प्रसाद बाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, पृ0 275-280,
2- सं0 वेद प्रताप वैदिक, हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम,पृ0337,

इसी वर्ष इलाहाबाद से श्रीमती गोपाला देवी के संपादन में बच्चों का मासिक पत्र "शिशु" प्रकाशित हुई ।[1] कानपुर से जुही से भगवान दास गुप्ता ने "व्यापारी" नामक मासिक पत्र प्रकाशित किया । वाराणसी से ललिता देवी ने "बाल-बोध" मासिक पत्र को प्रकाशित करना शुरू किया । वाराणसी के बसंत राम व्यास ने "तरंगिणी" नामक साहित्यिक मासिक पत्रिका निकाली । "पालीवाल ब्रह्मोदय" का प्रकाशन आगरा से राधाकृष्ण चतुर्वेदी तथा आनंदी प्रसाद मिश्र के संयुक्त संपादन में आरम्भ हुआ । कानपुर से रघुवर दयाल भट्ट के संपादन में "ब्रह्म भट्ट हितैषी" तथा वाराणसी से अम्बिका प्रसाद गुप्त के संपादन में "हलवाई वैश्य संरक्षक" इस वर्ष पहली बार प्रकाशित होने वाले प्रमुख जातीय पत्र थे ।[2]

1916 में इलाहाबाद से जगन्नाथ शुक्ल के सम्पादन में " सुधावर्षण " मासिक पत्र छपना शुरू हुआ । यहीं से "सर्वशिक्षक" मासिक पत्र प्रारम्भ हुआ । आगरा से "शिक्षा पत्रिका, देहरादून से "भारत हितैषी" लखनऊ से "विद्या", बहराइच से "प्रभाकर" 1916 में प्रकाशित होने वाली अन्य नई मासिक पत्रिकाएँ थीं । इस वर्ष संयुक्त प्रान्त में प्रकाशित होने वाले पत्र-पत्रिकाओं की संख्या 356 थी । इनमें अंग्रेजी में 65 तथा हिन्दी में 133 थी । इलाहाबाद से 53, लखनऊ से 51, वाराणसी से 43, कानपुर से 28, मेरठ से 26, आगरा से 25, अलीगढ़ से 15, मुरादाबाद से 13, देहरादून से 12 तथा मथुरा से 10 पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही थीं ।[3]

1- शालिग्राम श्रीवास्तव, प्रयाग प्रदीप, पृ0 16।

2- अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, पृ0 282

3- एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट आफ यूनाइटेड प्राविन्स आफ आगरा एण्ड अवध, §1916-17§, पृ0 55

1917 में इलाहाबाद के इन्डियन प्रेस से बच्चों का मासिक पत्र " बालसखा " प्रकाशित हुआ ।[1] इसे बच्चों के सामान्य ज्ञान के विकास तथा राष्ट्रीयता उत्पन्न करने की दृष्टि से प्रकाशित किया गया । इलाहाबाद से ही चन्द्रशेखर शास्त्री ने "समाज" नामक मासिक पत्र निकाला तथा यहीं से ही अंग्रेजी मासिक "कैथलिक्स" का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसमें कैथलिक धर्म तथा दर्शन सम्बन्धी लेख प्रकाशित होते थे । इसी वर्ष "प्रभा" नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन कानपुर से होने लगा । इसके पूर्व "प्रभा खंडवा से माखन लाल चतुर्वेदी के संपादन में प्रकाशित होती थी । माखन लाल चतुर्वेदी के प्रायः अस्वस्थ रहने के कारण गणेशशंकर विद्यार्थी "प्रभा" को प्रताप प्रेस कानपुर से प्रकाशित करने लगे । "प्रभा" प्रमुख रूप से राजनीतिक पत्रिका थी । आर्थिक कठिनाइयों के कारण 1923 में इसका प्रकाशन बन्द हो गया ।

1918 में वाराणसी से हेरम्ब मिश्र के सम्पादन में "सूर्य" नामक द्विदैनिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । साधनों के अभाव में यह पत्र अल्प जीवीकसिद्ध हुआ । हरिदत्त शास्त्री के सम्पादन में शाहजहाँपुर से "सत्यकेतु" पाक्षिक पत्र अस्तित्व में आया । वाराणसी से महेशदत्त शर्मा ने " कालिन्दी' मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया । विशुद्ध साहित्यिक मासिक पत्रिका "ललिता" मुरारी शरण मांगलिक के सम्पादन में प्रारम्भ हुई । सनातन धर्म के प्रचार के लिए वाराणसी से नारायणी देवी तथा काली प्रसाद शास्त्री ने "आर्य महिला" मासिक का प्रकाशन शुरू किया । इसका प्रकाशन भारत धर्म महामण्डल की ओर से होता था ।

1- एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट आफ यूनाइटेड प्राविन्स आफ आगरा एण्ड अवध, § 1917 - 18 §, पृ0 53

5 फरवरी, 1919 को इलाहाबाद से "इंडिपेन्डेन्ट" नामक अंग्रेजी पत्र का प्रकाशन मोतीलाल नेहरू के सहयोग से प्रारम्भ हुआ । मोती लाल नेहरू ने "लीडर" से असन्तुष्ट होकर ही "इंडिपेन्डेन्ट" निकाला था ।[1] सर्वप्रथम इसके सम्पादक सैयद हुसैन थे । मोतीलाल नेहरू ने इसका उद्देश्य पत्र को भेजे सन्देश में ही स्पष्ट कर दिया था ।[2] व्यवसायिकता की ओर रंचमात्र भी ध्यान न देकर पत्र की नीति के बारे में ही सबको चिन्ता थी इसलिए पत्र धीरे-धीरे आर्थिक संकट के शिकंजे में फंसता गया । अन्त में इसका प्रकाशन 20 दिसम्बर, 1921 को बन्द हो गया ।

उदय नारायण बाजपेयी तथा नारायण प्रसाद अरोड़ा के सम्पादन में "संसार" मासिक पत्र अस्तित्व में आया । संसार के प्रकाशक गोवर्द्धन दास खन्ना थे । इस राजनीतिक मासिक पत्र में उच्चस्तरीय साहित्यिक सामग्री भी छपती थी । भगवती प्रसाद बाजपेयी तथा सद्गुण शरण अवस्थी जैसे उद्भट विद्वान इस पत्र से सम्बद्ध थे । प्रारम्भ में यह काफी लोकप्रिय हुआ पर आर्थिक कठिनाइयों के कारण इस पत्र का प्रकाशन केवल ढाई वर्ष के बाद 1921 में बन्द हो गया ।

1- जे नटराजन, हिस्ट्री आफ इन्डियन जर्नलिज्म, भाग 2, पृ० 142

2- " इन्डिपेन्डेन्ट " की जरूरत इसलिये पड़ी कि वह एक कौम के आजादी की तरफ बढ़ते हुये देश के अलग-अलग जातियों से मिलकर बनते हुये एक राष्ट्र की ओर अलग-अलग व्यक्तियों के बनते हुये एक समाज के दिल की आवाज बन सके ।

{ बी० आर० नन्दा, मोतीलाल नेहरू, पृ० 128 }

1919 में ही वाराणसी से सुप्रसिद्ध समाज सेवी व कांग्रेस नेता बाबू शिव प्रसाद गुप्त ने जीवनशंकर याज्ञिक के सम्पादन में "स्वार्थ" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया । याज्ञिक के बाद मुकुन्दी लाल श्रीवास्तव इसके सम्पादक हुए । पत्रकारिता के विधिवत सिद्धान्त तथा समकालीन परिस्थितियों के अनुकूल निर्धारित नीति का "स्वार्थ" में पूरी तरह पालन किया जाता था । राजनीति, साहित्य, इतिहास, धर्म, दर्शन, पर इसमें विचारोत्तेजक लेख प्रकाशित होते थे । इन सबके बाद भी "स्वार्थ" लोकप्रिय न हो सका और जुलाई 1921 में उसका प्रकाशन बन्द हो गया । गोरखपुर से दशरथ प्रसाद द्विवेदी ने "स्वदेश" नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया । दशरथ प्रसाद द्विवेदी राष्ट्रीय विचारधारा के व्यक्ति थे । पूर्वी उत्तर प्रदेश में आर्थिक पिछड़ेपन, अंग्रेजों के अत्याचार तथा अन्य समस्याओं पर सरकार की आलोचना के कारण इस पत्र की गणना पूर्वी उत्तर प्रदेश के सर्वाधिक लोकप्रिय पत्रों में की जाने लगी ।

1919 में ही इलाहाबाद से पंडित सुन्दरलाल के सम्पादन में साप्ताहिक "भविष्य" छपना प्रारम्भ हुआ । सरकार को सुन्दरलाल की लेखनी के पैनेपन तथा उनके पहले पत्र के रवैये का कटु अनुभव था । छः महीने बाद सरकार द्वारा जमानत जब्त कर लेने के बाद "भविष्य" का प्रकाशन बन्द हो गया । मई 1920 में सुन्दरलाल ने इसी नाम से दैनिक पत्र प्रकाशित किया । "भविष्य" दैनिक बहुत ही लोकप्रिय हो गया । 1921 में सुन्दरलाल के गिरफ्तार हो जाने के कारण "भविष्य" का प्रकाशन बन्द हो गया । इलाहाबाद से गंगा प्रसाद उपाध्याय के सम्पादन में "वेदोदय" मासिक पत्र अस्तित्व में आया । यह पत्र आर्य समाज के अनुयायियों में बहुत लोकप्रिय हुआ और इसका प्रकाशन 1934 तक जारी रहा । आगरा से ईश्वरीप्रसाद शर्मा के सम्पादन में " धर्माभ्युदय" साप्ताहिक अस्तित्व में आया । हरि भाऊ उपाध्याय ने वाराणसी से " औदुम्बर" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन शुरू किया ।

इलाहाबाद से शिव नारायण वर्मा तथा उदय नारायण बाजपेयी के संपादन में "बिजली" तथा सेवा समिति की ओर से श्री राम बाजपेयी के संपादन में "सेवा" नामक मासिक पत्र अस्तित्व में आए । इलाहाबाद से ही सन्यस्त परिषद की ओर से चन्द्रशेखर शास्त्री ने "सन्यासी" नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया ।[1]

आगरा से अग्रवाल सभा की ओर से परमेश्वरी सहाय के सम्पादन में "अग्रवाल बन्धु" मुरादाबाद से कुन्जबिहारी लाल के सम्पादन में -"बरनवाल चन्द्रिका" कोंच §जालौन§ से बाबूराम वैश्य के सम्पादन में "वैश्य शुभचिन्तक" तथा मेरठ से हरस्वरूप त्यागी के सम्पादन में "त्यागी ब्राह्मण" जातीय मासिक पत्र इस वर्ष पहली बार प्रकाशित हुए ।

फर्रुखाबाद से "तैली जाति सुधार" लखनऊ से "अंधकाल के लक्षण" मुजफ्फरनगर से "सभ्यता" झांसी से "योगी" वाराणसी से "प्रहलाद" अल्मोड़ा से "हिमालय" तथा शाहजहांपुर से "व्यापार" व कारीगर इस वर्ष पहलीबार प्रकाशित होने वाले अन्य मासिक पत्र थे ।

संयुक्त प्रान्त में 1900-1919 के मध्य हिन्दी व अंग्रेजी पत्रकारिता का विकास ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था । 1900 के पूर्व की पत्रकारिता में विविधता का अभाव था । जाति, साहित्य, धर्म दर्शन तथा संस्कृति ही पत्र-पत्रिकाओं के विषय थे ।" हिन्दी प्रदीप" "हिन्दुस्तान" "ब्राह्मण" "इण्डियन हेराल्ड" "अल्मोड़ा अखबार" तथा "इण्डियन यूनियन सामयिक राजनीतिक घटनाओं पर टिप्पणी करने लगे थे किन्तु सरकार की अतिशय कोपदृष्टि तथा आर्थिक संकट ॥ के कारण उनका प्रकाशन नियमित ढंग से नहीं हो पा रहा था ।

1- शालिग्राम श्रीवास्तव, प्रयाग प्रदीप, पृष्ठ 163

बीसवीं सदी के प्रारम्भ में हिन्दी की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पत्रिका " सरस्वती " का प्रकाशन हुआ । उच्चकोटि के बौद्धिक लेखों के प्रकाशन, नए साहित्यकारों को प्रोत्साहन, भाषा को समृद्ध बनाने तथा राष्ट्रीय जागरण में योगदान की दृष्टि से "सरस्वती" ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

"अभ्युदय", "कर्मयोगी", "भविष्य", "प्रताप","लीडर", "इण्डिपेन्डेन्ट","प्रभा" तथा स्वदेश ने संयुक्त प्रान्त की पत्रकारिता को नई दिशा दी तथा प्रदेश में राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए अनुकूल वातावरण बनाने में सहायता की । स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान ये पत्र आन्दोलन के अविभाज्य अंग बन गए और सरकार के दमन चक्र की चिन्ता किए बिना संकट--काल में राष्ट्रीय नेताओं के सन्देश तथा उनके कार्यक्रमों को जन-जन तक पहुंचाया । हिन्दी पत्रकारिता में विज्ञान के क्षेत्र में विशिष्ट पत्रिका "विज्ञान" का प्रकाशन भी देश में पहली बार संयुक्त प्रान्त में हुआ । विज्ञान" ने सामान्य पाठकों को विज्ञान की उपयोगी जानकारी दी । विज्ञान के क्षेत्र में विज्ञान के प्रकाशन से प्रेरणा लेकर विज्ञान सम्बन्धी अनेक पत्रिकाएँ अस्तित्व में आईं । बीसवीं सदी के प्रारम्भ में संयुक्त प्रान्त में आर्य समाज के प्रचार में भी हिन्दी पत्रकारिता ने महत्वपूर्ण योगदान दिया । धार्मिक व्यवसायिक तथा जातीय संगठनों ने पत्रकारिता के महत्व को समझकर उसे अपने उद्देश्य की पूर्ति का माध्यम बनाया । 1900-1919 के मध्य प्रथम विश्वयुद्ध एक महत्वपूर्ण घटना थी । ताजे युद्ध समाचारों को जानने की जिज्ञासा तथा समसामयिक राजनीतिक परिस्थितियों के कारण कई दैनिक पत्रों का प्रकाशन आरम्भ हुआ और कई साप्ताहिक पत्र दैनिक में परिवर्तित हो गए । इसी समय अनेक अच्छे पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन राजनीतिक व आर्थिक कारणों से बन्द हो गया । सरकारी दमन चक्र, साधनों के अभाव तथा प्रकाशित सामग्री में विविधता की कमी के कारण अधिकांश समाचार पत्र पत्रिकाएं जनमानस में अमिट छाप नहीं छोड़ सकीं ।

1920 – 1947 भारतीय पत्रकारिता-विशेषकर हिन्दी पत्रकारिता के लिए संकट और परीक्षा का समय था । देश की राजनीतिक स्थिति में तेजी से परिवर्तन हो रहा था । 1918 की मूल्यवृद्धि से जनता में सरकार विरोधी भावनाएँ और अधिक विकसित हो गई थीं । समाचार पत्र-पत्रिकाओं के लिए इन राजनीतिक परिस्थितियों से अछूता रह पाना सम्भव नहीं रह गया था । जनता की राष्ट्रीय चेतना को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय विचारधारा के पत्रों की संख्या में वृद्धि हुई । अन्य पत्र-पत्रिकाएं सरकार समर्थक, तटस्थ तथा उदारवादी की श्रेणियों में विभक्त हो गईं । देश की बहुसंख्यक हिन्दी भाषी जनता को राजनीतिक समस्याओं की समझ तथा शिक्षा देने के लिए हिन्दी पत्रकारिता के राजनीतिक पक्ष का आशातीत विकास हुआ । इसमें संयुक्त प्रान्त के पत्र-पत्रिकाओं ने बड़ी कुशलता पूर्वक अपनी भूमिका निभाई ।

1920 में पाँच सितम्बर को वाराणसी से शिव प्रसाद गुप्त ने "आज" दैनिक का प्रकाशन प्रारम्भ किया । इसके प्रथमसम्पादक बाबू राव विष्णु पराड़कर थे । प्रारम्भ में श्री प्रकाश ने भी कुछ माह तक "आज" का सम्पादन किया था । "आज" के प्रकाशन के पूर्व शिव प्रसाद गुप्त ने बाबूराव विष्णु पराड़कर को लोकमान्य गंगाधर तिलक तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओं से सम्पर्क के लिए भेजा ।[1] "आज" की नीति उसके सम्पादक ने पत्र के प्रथम अंक के सम्पादकीय में ही स्पष्ट कर दी थी ।[2] 1920-47 के मध्य"आज" के सम्पादक बाबूराव विष्णु पराड़कर तथा कमलापति त्रिपाठी रहे ।

1- लक्ष्मीशंकर व्यास, भारत की स्वतंत्रता में आज का योगदान {लेख} " आज" भारत, 1975 विशेषांक, पृ0 21

2- " ———— भारत के गौरव की वृद्धि और उसकी राजनीतिक उन्नति "आज" का विशेष लक्ष्य होगा । हमें पूर्ण घटनाओं से सबक लेना है । हम लोग प्राचीन गौरव की बात करते हैं किन्तु आज का विचार नहीं करते । भारत को सदैव आज का स्मरण रहे । इसलिए हम 'आज' नाम से ही आप लोगों के समक्ष उपस्थित हो रहे हैं । क्रमशः ————

" आज " का प्रकाशन गांधी युग के प्रारम्भ की महत्वपूर्ण घटना थी । उसने देश की राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक क्रान्ति तथा नवजागरण में प्रमुख भूमिका निभाई । महात्मा गांधी द्वारा शुरू किए गए आन्दोलनों के प्रसार तथा उनके रचनात्मक कार्यक्रम का प्रचार "आज" ने पूर्वी उत्तर प्रदेश में व्यापक रूप से किया । "आज" के प्रकाशक शिवप्रसाद गुप्त ने सरकारी दमन चक्र के कारण "आज" से लगातार घाटा उठाकर भी उसका प्रकाशन जारी रखा । सरकार के दमन चक्र के कारण 1931 तथा 1942 में "आज" का प्रकाशन कुछ दिनों के लिए स्थगित कर दिया गया था ।"आज" कार्यालय पर अनेक बार पुलिस के छापे पड़े और कई बार सम्पादक को कारावास की सजा भुगतनी पड़ी किन्तु "आज" अपनी नीति पर अटल रहा । उसकी लोकप्रियता इस सीमा तक पहुँच गई थी कि हजारों लोगों ने उसे अपने दैनिक जीवन का अंग बना लिया था । वे उसके लिए अपना सर्वस्व त्याग करने के लिए भी तत्पर रहते थे । सम्प्रति "आज" का प्रकाशन अभी भी जारी है ।

1920 में ही मिस्टर जोसफ मोहन जोशी ने इलाहाबाद से राष्ट्रीय विचारों की अंग्रेजी की साप्ताहिक पत्रिका "क्रिश्चियन नेशनलिस्ट" का प्रकाशन शुरू किया । यह अल्प संख्यकों की पत्रिका थी । इसने राष्ट्रीय स्वतंत्रता जैसे विषयों को ऐसे वर्ग तक पहुंचाया जो अंग्रेज न होकर भी ईसाई धर्म मानने के कारण ईसाइयों का समर्थक था । इस अल्पजीवी पत्रिका के दीर्घजीवी परिणाम सामने आए । महात्मा गांधी जैसे विचारवान राष्ट्रीय नेता ने मोहन जोशी को भारतीय ईसाई समुदाय का उत्कृष्टतम पुरुष कहा ।

——— आशय यह है कि "आज" का जन्म किसी पत्र से प्रतिद्वन्द्विता के लिए नहीं अपितु मातृभूमि की सेवा में हाथ बंटाने के उद्देश्य से हुआ है देश की उन्नति में सबके साथ सहयोग कर देश की आजादी की लड़ाई में सफलता 'आज' का मुख्य ध्येय है ।"

§ "आज", 5 सितम्बर, 1920, पृ0 2 §

झांसी निवासी तथा कांग्रेस के प्रख्यात नेता रघुनाथ विनायक धुलेकर ने कानपुर से "मातृभूमि" §हिन्दी§ तथा "फ्री इण्डिया" §अंग्रेजी§ नामक दो मासिक पत्रों का प्रकाशन शुरू किया ।[1]

इसी वर्ष कानपुर से विजयादशमी के दिन रमाशंकर अवस्थी ने "वर्तमान" दैनिक का प्रकाशन शुरू किया । रमाशंकर अवस्थी ने "प्रताप" से अलग होकर "वर्तमान" निकाला था ।[2] उनके लेख चुटीले व्यंग्य, अर्थपूर्ण विचार तथा तथ्यगत आलोचना से पूर्ण होते थे । राजनीतिक घटनाओं पर मनोरंजक टिप्पणी करने में "वर्तमान" का निराला ढंग था । निष्पक्षता व निर्भीकता के मामले में "वर्तमान" "प्रताप" की तरह था । बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक तक वर्तमान प्रकाशित होता रहा । 1920 में ही वाराणसी से चुन्नीलाल के सम्पादन में "गोरक्षण" नामक धार्मिक पत्र अस्तित्व में आया । गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार से साप्ताहिक पत्रिका "श्रद्धा"का प्रकाशन शुरू हुआ । इस प्रकार 1920 में संयुक्त प्रान्त में कुल 427 पत्रों का प्रकाशन हुआ । 13 नए पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ तथा पांच समाचार पत्रों का प्रकाशन बन्द हो गया ।[3]

1921 में सराय आकिल §इलाहाबाद§ से प्रान्तीय किसान सभा की ओर से इन्द्र नारायण द्विवेदी के सम्पादन में "किसान" मासिक पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ । यह पत्र किसानों के अधिकारों का समर्थन करता था । नौगवां फतेहगढ़ से सरस्वती देवी के सम्पादन में "महिला संसार" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसमें महिलाओं के घरेलू उपयोग, तीज त्योहार की सूचना तथा सामाजिक सम्बन्धों पर विचारपूर्ण लेख छपते थे ।

1- वी०एस०ठाकुर, हिन्दी सम्पादकों के सम्पादक, पृ० 35

2- सद्गुरुशरण अवस्थी, मार्ग के गहरे चिन्ह, पृ० 82

3- एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ यूनाइटेड प्राविन्सेज आफ आगरा एण्ड अवध, § 1920-21 §, पृ० 56

इसके अतिरिक्त झांसी §मोठ§ से गया प्रसाद महोनिया के सम्पादन में " नाई मित्र " अलीगढ़ से प्यारे लाल के सम्पादन में "बारहसेनी", कानपुर से "ओमर वैश्य" "शुभचिन्तक" तथा कानपुर से ही हृदय नारायण के संपादन में "ब्राह्मण समाचार" इस वर्ष नए जातीय मासिक पत्र प्रारम्भ हुए । कानपुर से "राष्ट्रीय अध्यापक" इलाहाबाद से रघुवीर शास्त्री के सम्पादन में "विश्व" आगरा से बृजनाथ शर्मा के सम्पादन में तिलक तथा कन्नौज से "शिल्प समाचार" इस वर्ष प्रकाशित होने वाले नए मासिक पत्र थे ।[1]

इलाहाबाद से 1922 में रामरिख सिंह सहगल के सम्पादन में विविध विषयों वाली मासिक पत्रिका "चांद" का प्रकाशन शुरू हुआ । सभी विषयों पर रोचक, उत्कृष्ट तथा अनूठी सामग्री प्रकाशित करने में "चांद" बेजोड़ थी । कुछ वर्षों बाद सुप्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा ने भी "चांद" का सम्पादन किया किन्तु उनके सम्पादनकाल में इसमें अधिकांश लेख महिला उपयोगी ही प्रकाशित होते थे । सरकार ने इसके बहुचर्चित "फांसी" तथा "मारवाड़ी" अंकों को जब्त कर लिया था । इन दोनों अंकों का संपादन आचार्य चतुरसेन ने किया था ।

अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद की ओर से मेरठ से राजेन्द्र कुमार के सम्पादन में "वीर" नामक मासिक पत्र निकलना प्रारम्भ हुआ । 1922 में लखनऊ में अजित प्रसाद जैन ने "देवेन्द्र" नामक मासिक पत्र निकाला । यहीं से ही विष्णु नारायण के संपादन में "स्वामी" मासिक पत्रिका तथा अमेरिका से रसायन शास्त्र में उच्च शिक्षा प्राप्त करके आए महेशचरण सिंह ने "हिन्दी आउट लुक" साप्ताहिक का प्रकाशन शुरू किया ।[2] 1922 में ही

1- अम्बिका प्रसाद बाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, पृ० 298
2- वही, पृ० 304

कानपुर से "मातृभूमि" नामक दैनिक पत्र प्रारम्भ हुआ । झांसी से अमनसभा ने "स्वाधीन" नामक पत्र निकाला । मैनपुरी जिला परिषद ने "जिला गजट" तथा वाराणसी से धर्मदत्त के सम्पादन में "भारत धर्म नेता " 1922 में पहली बार प्रकाशित होने वाले पाक्षिक पत्र थे । सहारनपुर से द्विदैनिक पत्र " हिन्दू सहायक " कानपुर से मासिक "छात्र हितैषी", झांसी से साप्ताहिक "झांसी समाचार", इलाहाबाद से साप्ताहिक "देवदर्शन", कन्नौज से इन्द्र नारायण मिश्र के सम्पादन में "हिन्दी पत्रिका " अमरोहा से मासिक पत्र "नवयुग" देहरादून से चन्द्र सिंह के सम्पादन में मासिक "नवभारत" तथा हरिद्वार §सहारनपुर§ से "हिन्दू गजट" इस वर्ष केष्ठ अन्य नए प्रकाशन थे ।

इलाहाबाद से 1923 में राम नारायण मिश्र ने "भूगोल" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया । इसमें छात्रों तथा सामान्य पाठकों के लिए भूगोल सम्बन्धी रोचक तथा ज्ञानवर्द्धक सामग्री प्रकाशित होती थी । यह पत्र काफी लोकप्रिय हुआ । राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन तो राम नारायण मिश्र को ही भूगोल कहने लगे थे ।[1] यहीं से डा० लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव के सम्पादन में "इलाज" नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसमें चिकित्सा सम्बन्धी आवश्यक सूचनाएँ तथा सामान्य बीमारियों के घरेलू उपचार सम्बन्धी जानकारी प्रकाशित होती थी ।

लखनऊ से नवल किशोर प्रेस से दुलारे लाल भार्गव के सम्पादन में साहित्यिक पत्रिका "माधुरी" का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसके सम्पादक मण्डल में रूपनारायण पाण्डेय ,कृष्णबिहारी मिश्र तथा रामसेवक त्रिपाठी थे । 1928 में इसके सम्पादक मुंशी प्रेमचन्द हो गए । कुछ ही वर्षों में

1- गायत्री गहलौत, भारतीय पत्रकारिता के क्षेत्र में इलाहाबाद का योगदान §लेख§ " राष्ट्रभाषा सन्देश ", 30 सितम्बर, 1979,

इसने पर्याप्त ख्याति अर्जित की तथा इसकी गणना "सरस्वती" और "प्रभा" की श्रेणीमेंकी जाने लगी ।[1] इस वर्ष इलाहाबाद से "नवयुग" नामक दैनिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ किन्तु यह पत्र अल्पजीवी सिद्ध हुआ । मथुरा से गणेशदत्त शर्मा के सम्पादन में "जीवन" तथा उरई §जालौन§ से मंतालाल के सम्पादन में "भारतीय लोकमत" दो नए साप्ताहिक पत्र अस्तित्व में आए ।

शिवगुलाम गुप्त के सम्पादन में कानपुर से जातीय पत्र " गुलहरे वैश्य हितकारी ", वाराणसी से शिवदयाल कुशवाहा के संपादकत्व में " कुशवाहा क्षत्रिय मित्र " झांसी से नाथूलाल शर्मा के सम्पादकत्व में "गृहस्थ जीवन" मुरादाबाद से ज्वालादत्त शर्मा के सम्पादन में "कैलाश" तथा बरेली से राम नारायण पाठक के सम्पादन में "भ्रमर" 1923 में पहली बार प्रकाशित होने वाले मासिक पत्र थे । "स्त्रीदर्पण" कानपुर से 1923 में छपना प्रारम्भ हुआ । इसकी सम्पादिका राधिका किशोरीदेवी थीं । इस वर्ष संयुक्त प्रान्त से प्रकाशित होने वाले कुल पत्र-पत्रिकाओं की संख्या 473 थी जिनमें अधिकांश हिन्दी के थे ।[2]

1924 में इलाहाबाद से महावीर प्रसाद मालवीय के संपादन में "मनोरमा" तथा गोपालादेवी के सम्पादन में "राजवैद्या" प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिकाएँ थीं । वाराणसी से अभयानन्द सरस्वती के सम्पादन में "योग प्रचारक" मासिक पत्र अस्तित्व में आया । इसमें योग तथा धर्म सम्बन्धी लेख छपते थे । यह पूर्णतया धार्मिक पत्र था । लखनऊ से "प्रेस"

1- गायत्री गहलौत, लखनऊ की पत्रकारिता एक विहंगम दृष्टि §लेख§ " राष्ट्रभाषा सन्देश ", 15 नवम्बर, 1979.

2- एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ यूनाइटेड प्राविन्सेज़ आफ आगरा एण्ड अवध, 1923-24, पृ0 73

नामक दैनिक पत्र प्रकाशित होना शुरू हुआ । 1924 में संयुक्त प्रान्त में कुल 513 पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा था । इनमें हिन्दी के 218 तथा अंग्रेजी की 103 पत्र-पत्रिकाएँ थीं । प्रकाशन की दृष्टि से लखनऊ में सर्वाधिक 72 इलाहाबाद से 67 कानपुर व वाराणसी से 40-40, आगरा से 37 मेरठ से 29, अलीगढ़ से 22, मुरादाबाद से 12, बिजनौर से 11 पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा था ।[1]

1925 में वाराणसी से रामचन्द्र बलवंत डोंगरे के सम्पादन में "योग रहस्य" मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसमें "योग सिद्धि" योगासन तथा योग महत्ता आदि पर सचित्र लेख प्रकाशित होते थे । कानपुर से "वीर भारत " दैनिक का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । यह राष्ट्रीय विचारों का पत्र था । इसके सम्पादक को आपत्तिजनक लेख प्रकाशित करने के आरोप में कई बार चेतावनी दी गई और दण्डित किया गया । दारानगर, वाराणसी से "यादव" नामक जातीय मासिक पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ । गोरखपुर से चौधरी रणजीतसिंह यादव के सम्पादन में "यादव हितकारी" पाक्षिक आगरा से अखिल भारतीय क्षत्रिय जाट महासभा की ओर से हुकुम सिंह के संपादन में "जाटवीर" आगरा से ही मूलचन्द जजोरिया के सम्पादन में "माथुर" पत्रिका कानपुर से केदारनाथ सिंह के सम्पादन में "विश्वकर्मा", वाराणसी से "कुर्मी क्षत्रिय दिवाकर" तथा मेरठ से वैश्य महासभा की ओर से रामदयाल के सम्पादन में " वैश्य हितकारी" इस वर्ष पहलीबार प्रकाशित होने वाले प्रमुख जातीय पत्र थे ।[2]

1- एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ यूनाइटेड प्राविन्सेज आफ आगरा एण्ड अवध, 1924-25, पृ0 113

2- अम्बिका प्रसाद बाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, पृ0316-320.

श्रीमचन्द्र दीक्षित ने कानपुर से कला सम्बन्धी मासिक पत्र "कला कौशल" निकाला । इसमें सौन्दर्यशास्त्र तथा ललित कलाओं पर विचारपूर्ण लेख छपते थे । हाथरस से भूदेव शर्मा ने "व्यापारिक संसार" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन शुरू किया । इसमें व्यावसायिक वर्ग की समस्याओं पर लेख तथा व्यापार सम्बन्धी सूचनाएँ प्रकाशित होती थीं ।

1925 में ही आगरा से सैनिक प्रेस से श्रीकृष्ण दत्त पालीवाल के सम्पादन में "सैनिक" पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ । राष्ट्रीय विचारों का यह पत्र 1931 में दैनिक हो गया ।[1] 1931 में आपत्तिजनक लेख प्रकाशित करने पर "सैनिक" से जमानत माँगी गई । जमानत न दे सकने पर प्रकाशन बन्द हो गया । 1946 में संयुक्त प्रान्त में कांग्रेस सरकार बनने पर ही "सैनिक" का प्रकाशन पूर्णतया प्रारम्भ हो सका ।

1926 में गोरखपुर से "कल्याण" नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन हनुमान प्रसाद पोद्दार के सम्पादन में प्रारम्भ हुआ ।[2] श्री पोद्दार के कुशल सम्पादन में "कल्याण" ने काफी लोकप्रियता अर्जित की । 1940 तक "कल्याण" सम्पूर्ण देश की सर्वोत्तम धार्मिक पत्रिका हो गई । इसके लाखों पाठकों में भारत के ही नहीं बल्कि विदेशों में प्रवासी भारतीय भी हैं । धार्मिक वाद-विवाद में न पड़कर श्रद्धालु जनता के लिए रुचिकर सामग्री तथा समय-समय पर धार्मिक विशेषांकों के प्रकाशन ने "कल्याण" को लोकप्रियता प्रदान की । "कल्याण" के कम मूल्य ने उसे साधारण पाठकों के लिए

1- सं0 वेद प्रताप वैदिक, हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम, पृ0137
2- वही, पृ0326

सुलभ बनाया । हनुमान प्रसाद पोद्दार ने 1927 तक "कल्याण" का संपादन किया । कल्याण का संपादन अभी भी सफलतापूर्वक हो रहा है । इसी वर्ष हापुड़ से "व्यापार समाचार" नामक दैनिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । हापुड़ पश्चिमी उत्तर प्रदेश का प्रमुख व्यापारिक केन्द्र होने के कारण " व्यापार समाचार" को काफी सफलता मिली । इसमें व्यापार सम्बन्धी आवश्यक सूचनाएँ बाजार भाव तथा व्यापारिक संगठनों के निर्देश प्रकाशित होते थे । इसका प्रकाशन अभी हो रहा है । 1926 में संयुक्त प्रान्त से कुल 592 समाचार पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होते थे । इनमें सर्वाधिक 84 पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन लखनऊ से होता था ।[1]

1927 में लखनऊ से दुलारे लाल भार्गव के सम्पादन में "सुधा" नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इससे प्रतिष्ठित तथा विद्वान साहित्यकार सम्बद्ध थे । "सुधा" का प्रकाशन कई वर्षों तक सफलता पूर्वक हुआ । अलीगढ़ से"सुधाकर", एटा से "सेवक", जौनपुर से "समय" आगरा से "प्रेम प्रचारक" इस वर्ष प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक नये पत्र थे । इलाहाबाद के हिन्दी प्रेस से "बच्चों का खिलौना" तथा बस्ती से "प्रकाश" नामक मासिक पत्र भी इसी वर्ष प्रकाशित हुए । इस वर्ष कुल 197 साप्ताहिक थे । लखनऊ से सर्वाधिक 93, इलाहाबाद से 80, आगरा से 51, वाराणसी से 49, मेरठ से 39, तथा अलीगढ़ से 25 पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ ।

1- एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ यूनाइटेड प्राविन्सेज आफ आगरा एण्ड अवध, 1926-27, पृष्ठ 76

1928 में "भारत" साप्ताहिक का प्रकाशन इलाहाबाद से व्यंकटेश नारायण तिवारी के सम्पादन में प्रारम्भ हुआ । इसके प्रकाशन में महामना मदनमोहन मालवीय ने सहयोग किया था । सात सितम्बर 1930 को यह अर्द्ध साप्ताहिक तथा अक्टूबर 1933 में दैनिक हो गया । व्यंकटेश नारायण तिवारी के पश्चात् राधेश्याम शर्मा इसके संपादक हुये । इसके पश्चात् केशवदेव शर्मा "भारत" के सम्पादक हुए । "भारत" पहले उदारवादी विचार धारा का पत्र था किन्तु बाद में वह पूर्ण रूप से राष्ट्रीय विचारधारा का पत्र हो गया । कृपाराम मिश्र ने गढ़वाल से "देश" साप्ताहिक का प्रकाशन शुरू किया । कानपुर से गया प्रसाद शुक्ल "सनेही" ने "सुकवि" मासिक पत्र का प्रकाशन शुरू किया । इसका प्रकाशन 1950 तक होता रहा । संयुक्त प्रांत में 1928 में कुल 643 पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा था । इनमें 260 हिन्दी के तथा 94 अंग्रेजी के थे ।[1]

1929 में "साहित्य सन्देश" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन आगरा से प्रारम्भ हुआ । इसमें साहित्य पर आलोचनात्मक लेख प्रकाशित होते थे । इलाहाबाद से क्षितीन्द्र मोहन मित्र ने मित्र प्रकाशन की स्थापना की और "माया" नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया । इसमें विविध प्रकार की सामग्री का प्रकाशन होता था । "माया" का प्रकाशन अभी भी हो रहा है किन्तु अब वह पूर्णरूपेण राजनीतिक पत्रिका हो गई है । वाराणसी से "लहरी"नामक पाक्षिक पत्रिका का प्रकाशन भारत जीवन प्रेस से प्रारम्भ हुआ । इसमें साहित्यिक लेखों के अतिरिक्त नवप्रकाशित पुस्तकों का मूल्यांकन आलोचनात्मक शैली में प्रस्तुत किया जाता था । मेरठ से"वीरगुलजार" नामक मासिक पत्र अस्तित्व में आया । इस वर्ष संयुक्त प्रान्त में 626 पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा था । इसमें 36 दैनिक, 9अर्द्धसाप्ताहिक, 203 साप्ताहिक तथा 263 मासिक थे । इलाहाबाद से सर्वाधिक 91, लखनऊ से 84,कानपुर से 54,बनारस से 52,आगरा से 48,मेरठ से 26,अलीगढ़ से 26 तथा इटावा से 24 पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन जारी था ।[2]

1- एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ यूनाइटेड प्राविन्सेज आफ आगरा एण्ड अवध, 1928-29, पृ0 109

2- वही, 1929-30, पृ0 67

1930 में श्रवण प्रसाद मिश्र ने झांसी से "प्रजा मित्र " नामक पाक्षिक का प्रकाशन प्रारम्भ किया । झांसी से ही बेनी प्रसाद श्रीवास्तव ने "हिन्द राजस्थान" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया । यह पत्र कुछ वर्षों के पश्चात पाक्षिक हो गया । हरिद्वार स्थित गुरुकुल कांगड़ी से आर्य समाज विचारधारा से प्रेरित साप्ताहिक पत्रिका "श्रद्धा" अस्तित्व में आई ।[1] 1930 में इलाहाबाद से यशोदा देवी के संपादन में "कथा सर्वस्व" और "सहेली" नामक मासिक पत्रिकाएँ प्रकाशित होना प्रारम्भ हुईं । गोरखपुर से "गोरखपुर गजट" का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसी वर्ष आगरा से केदारनाथ भट्ट के सम्पादन में "नोंक झोंक" नामक मासिक पत्र अस्तित्व में आया । इसमें हास्य व्यंग्य के लेख छपते थे ।

26 मार्च, 1930 को मुंशी प्रेमचन्द्र ने राष्ट्रीय परिवेश तथा लक्ष्य सिद्धि के निमित्त "हंस" मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया । हिन्दी पत्रकारिता को साहित्य, कला और सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक बनाना ही "हंस" का उद्देश्य था ।[2] "हंस" यद्यपि विशुद्ध राजनीतिक पत्रिका नहीं थी किन्तु देश में वैचारिक क्रान्ति तथा जन-जन में सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना तथा सर्जनशील संचेतना के संचार के लिए उसमें विविध प्रकार की सामग्री का प्रकाशन होता था । संयुक्त प्रान्त में "हंस" ने स्वतंत्रता आन्दोलन को नया स्वर व शक्ति प्रदान की ।1936 में "हंस"भारतीय साहित्य परिषद का मुख पत्र बन गया । उग्र राष्ट्रीय विचारों के कारण उसे सरकार का कोपभाजन बनना पड़ा । "हंस"लिमिटेड के संचालकों ने "हंस" का प्रकाशन बंद कर दिया ।मुंशी प्रेमचन्द ने जमानत देकर हंस का प्रकाशन पुनः प्रारम्भ किया । इसके कई वर्ष बाद तक "हंस" का प्रकाशन सफलतापूर्वक होता रह

1- गायत्री गहलौत, आर्य समाज और उत्तर प्रदेश की हिन्दी पत्रकारिता [लेख] "राष्ट्रभाषा संदेश" 30 अप्रैल, 1981

2- लक्ष्मीशंकर व्यास, प्रेमचन्द की पत्रकारिता [लेख] "आज"वाराणसी 30 मई, 1980, पृ0 4

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान 1930 में सरकार ने "आज" तथा उसके मुद्रणालय ज्ञानमण्डल प्रेस से दो-दो हजार रुपये की जमानत माँगी । "आज" के संस्थापक संचालक शिवप्रसाद गुप्त ने जमानत देने से इंकार किया । सरकार के अध्यादेश के अनुसार प्रेस पर प्रतिबन्ध लगाया गया था किन्तु साइक्लोस्टाइल मशीन के प्रकाशन पर प्रतिबन्ध नहीं था । इस छूट का लाभ उठाकर "आज के समाचार " नाम से छोटा सा पत्र फुलस्केप आकार में प्रकाशित किया गया । इस पर सरकारी - अधिकारियों ने साइक्लोस्टाइल पत्रों पर भी रोक लगा दी । इसके परिणाम स्वरूप "आज" का प्रकाशन बन्द हो गया । इसके ठीक अगले दिन से " "रणभेरी" का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ ।[1] गुप्त रूप से इसका प्रकाशन साइक्लोस्टाइल कापी पर होता था । कई अंकों में "आज" के सम्पादक बाबूराव विष्णु पराड़कर के भाई माधव विष्णु पराड़कर प्रेस मैनेजर थे । यह सिलसिला दो माह तक जारी रहा । इसके पश्चात स्थान बदल दिए जाते रहे । "रणभेरी" का दैनिक संस्करण दो पेज का तथा ~~xx~~ रविवार को चार पेज का होता था । उसका मूल्य एक पैसा था । सम्पादन के नाम के स्थान पर "सीताराम" तथा प्रकाशक की जगह पुलिस सुपरिटेन्डेंट कोतवाली वाराणसी लिखा रहता था ।[2] "रणभेरी" का प्रकाशन एक वर्ष तक जारी रहा । 1932 में "रणभेरी" का प्रकाशन पुनः प्रारम्भ हो गया । वाराणसी से ही "रणचण्डी", "चन्द्रिका", "रैडफ्लेम" तथा "ज्वालामुखी" आदि अन्य पत्रों का भी प्रकाशन साइक्लोस्टाइल पर होता था ।[3] गोरखपुर से "बवंडर"

1- अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी, समाचार पत्र कला, पृ0 213

2- वही, पृ0 214

3- स्वतंत्रता संग्राम, " आज कार्यालय, वाराणसी " पृष्ठ 109

नामक साइक्लोस्टाइल पत्र का प्रकाशन होता था । साइक्लोस्टाइल पर छपने वाले इन पत्रों की भाषा काफी उग्र होती थी । इन पत्रों का उद्देश्य आन्दोलन का प्रचार तथा सरकार द्वारा दमनकारी प्रेस कानूनों को लागू करने का विरोध करना था । ये पत्र जनता में काफी लोकप्रिय हुए । संयुक्त प्रान्त के अन्य प्रमुख नगरों में भ ी इस तरह के अखबार प्रकाशित हुए ।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान 1930 में ही बैजनाथ कपूर ने आन्दोलन समाचार छापने के लिए "सत्याग्रह समाचार" दैनिक का प्रकाशन किया । इसका प्रकाशन केवल आन्दोलन के समय हुआ ।

1931 में हिन्दुस्तानी एकेडमी की ओर से इलाहाबाद से "हिन्दुस्तानी" नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन रामचन्द्र टण्डन के संपादन में प्रारम्भ हुआ ।[1] इसके सम्पादक मण्डल में डा0 ताराचन्द्र, डा0बेनी प्रसाद डा0 राम प्रसाद त्रिपाठी, डा0 धीरेन्द्र वर्मा जैसे प्रतिष्ठित विद्वान थे । "हिन्दुस्तानी" में विविध विषयों पर विद्वतापूर्ण व खोजपरक लेख छपते थे । इन्हीं दिनों इलाहाबाद से हास्य व व्यंग्य पूर्ण साप्ताहिक पत्र "मदारी" का प्रकाशन एम0पी0 श्रीवास्तव के सम्पादन में प्रारम्भ हुआ । राजनीतिक मामलों पर व्यंग्य लेख व कविताओं के माध्यम से टिप्पणी की जाती थी । 1932 में "मदारी" में प्रकाशित एक कविता पर सरकार ने घोर आपत्ति प्रकट करते हुए सम्पादक को चेतावनी दी थी ।[2]

1- गायत्री गहलोत, भारतीय पत्रकारिता के क्षेत्र में इलाहाबाद का योगदान §लेख§ "राष्ट्रभाषा सन्देश " 30 सितम्बर, 1979

2- वही, 30 सितम्बर, 1979

" चमचम " नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन 1931 में इलाहाबाद के कला प्रेस से शुरू हुआ । 1932 में वाराणसी से आचार्य शिवपूजन सहाय तथा विनोदशंकर व्यास के सम्पादन में "जागरण" पाक्षिक का प्रकाशन शुरू हुआ । 13 मार्च, 1933 को मुंशी प्रेमचन्द्र ने"जागरण " का सम्पादन संभाला । मुंशी प्रेमचन्द के समय "जागरण" ने काफी ख्याति अर्जित की और वह साप्ताहिक हो गया । "जागरण" के विविध स्तम्भ तथा विचारपूर्ण लेख जनरुचि के होते थे । आर्थिक संकट के कारण बाद में "जागरण" का प्रकाशन बन्द हो गया । प्रकाशन मण्डल में कुछ मतभेद भी उत्पन्न हो गए थे । अन्ततः बाबूराव विष्णु पराड़कर ने मध्यस्तथा की ।[1] मेरठ से स्वामी शिवानन्द तथा दुर्गाप्रसाद के सम्पादन में "संकीर्तन" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हो गया । इसका प्रकाशन 1957 तक होता रहा । वाराणसी से वर्णाश्रम स्वराज्य संघ की ओर से मदन गोपाल मिश्र के संपादन में "आदेश" नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । "आदेश" का उद्देश्य सनातन धर्म का प्रचार व प्रसार करना था । इसी वर्ष प्रतापगढ़ से "अवध" साप्ताहिक पत्र अस्तित्व में आया । लाल सुरेश सिंह ने कालाकांकर से "कुमार" मासिक शुरू किया । इसका उद्देश्य बच्चों में जागृति लाना था ।

1932 में संयुक्त प्रान्त में कुल 605 पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा था । इसमें सर्वाधिक इलाहाबाद से 66 तथा सबसे कम रायबरेली से 10 पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा था ।[2]

1- लक्ष्मीशंकर व्यास, प्रेमचन्द्र की पत्रकारिता §लेख§ "आज" §वाराणसी§ 30 मई, 1980

2- एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट आफ यूनाइटेड प्राविन्सेज आफ आगरा एण्ड अवध, 1932-33, पृष्ठ 82

विचारों का पत्र छपना प्रारम्भ हुआ । 1934 में एटा से "आवाज" साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसमें स्थानीय समाचारों के अतिरिक्त क्षेत्रीय समस्याओं व सामाजिक महत्व के लेख छपते थे । सहारनपुर के हिन्दू इलेक्ट्रिक प्रेस से "हिन्दू" साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसमें धार्मिक तथा जातीय प्रधान लेख छपते थे । अल्मोड़ा के समता प्रेस से "समता" आजमगढ़ से "सन्देश" तथा सहारनपुर से "विकास" साप्ताहिक पत्र तथा गीताप्रेस से 'कल्याण कल्पातुर' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ ।[1]

1935 में मुजफ्फर नगर से "जरूरत" नामक साप्ताहिक पत्र छपना प्रारम्भ हुआ । विविध विषयों के इस पत्र का प्रकाशन बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक तक होता रहा । मुजफ्फरनगर से ही "देहात" नामक साप्ताहिक पत्र अस्तित्व में आया । यह पत्र ग्रामीण समस्याओं, कृषि जन्य जानकारी तथा सामाजिक परिवर्तन सम्बन्धी जानकारी पर विशेष ध्यान देता था । प्यारी कला, वाराणसी से "दया" नामक मासिक पत्रिका छपना शुरू हुई । धर्म, दर्शन की इस पत्रिका में परोपकार, समाजसेवा, मानवता, विश्वबन्धुत्व तथा शिक्षा पर भी विचारपूर्ण लेख प्रकाशित होते थे । संगीत कार्यालय हाथरस से "संगीत" नामक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ । इसमें भारतीय संगीत की विभिन्न विधाओं पर सामग्री प्रकाशित होती थी । अलीगढ़ से "शिक्षक बन्धु" मासिक पत्रिका अस्तित्व में आई । इसमें साहित्यिक तथा शैक्षिक लेख छपते थे । शिक्षक समुदाय के लिए आवश्यक सूचनाएँ भी प्रकाशित होती थी । इटावा से अरुणोदय" साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ ।

1- सं0 वेद प्रताप वैदिक , हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम, पृ032

1936 में वाराणसी से "खत्री हितैषी" जातीय मासिक पत्रिका अस्तित्व में आई । लखनऊ के कृष्ण प्रिन्टिंग प्रेस से "वीरेन्द्र" साप्ताहिक पत्र छपना प्रारम्भ हुआ । बिसौली {बदायूँ} से नरसिंह उपाध्याय के सम्पादन में "वैष्णव तेज" मासिक पत्र छपना शुरू हुआ । इस पूर्ण धार्मिक पत्र में वैष्णव धर्म के समर्थन में धार्मिक सन्तों व विचारकों के लेख छपते थे । आगरा से "आगरा पंच" तथा "जैन सन्देश" 1936 में पहलीबार प्रकाशित होने वाले प्रमुख साप्ताहिक पत्र थे । इस वर्ष संयुक्त प्रान्त से कुल 902 पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा था । इसमें इलाहाबाद से सर्वाधिक 125 पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही थीं ।[1]

1937 में आगरा से आर्य समाजीय विचारधार से प्रभावित " आर्य सन्देश" साप्ताहिक का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसके सम्पादक स्वामी परमानन्द थे । सहारनपुर से "आर्य" साप्ताहिक पत्र अस्तित्व में आया । इसका उद्देश्य भी आर्य समाज के सिद्धान्तों का प्रचार करना था । इलाहाबाद में "सतयुग" क्रान्तिकारी धार्मिक विचारधारा का पत्र था । इसने धर्म के क्षेत्र में कलयुगी अवतारों, भ्रष्टाचार तथा अनैतिकता का भण्डाफोड़ किया । कानपुर से कालूराम शर्मा ने मासिक पत्र "हिन्दू" निकाला । यह पत्र सनातन धर्म का समर्थक था । बिजनौर के लोकमत प्रेस से हिन्दी साप्ताहिक "लोकमत" छपना शुरू हुआ । कासगंज {एटा} से "नवीन भारत" तथा हाथरस से "कांग्रेस - समाचार" का भी प्रकाशन इस वर्ष पहली बार हुआ ।

1938 में लखनऊ से सुरेश सिंह व सोहन लाल द्विवेदी के सम्पादन में "अधिकार" साप्ताहिक पत्र प्रारम्भ हुआ । कुछ समय पश्चात यह दैनिक हो गया । लखनऊ से ही आचार्य नरेन्द्रदेव तथा मोहनलाल गौतम के संपादन में "संघर्ष साप्ताहिक का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इस पत्र को -

---

1- एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट आफ यूनाइटेड प्राविन्सेज आफ आगरा एण्ड अवध", 1936-37, पृ0 79

सम्पूर्णानन्द तथा बी०पी० सिन्हा आदि अन्य प्रमुख राजनेताओं का सहयोग था ।[1] "संघर्ष" में समाजवाद के प्रचार व पूंजीवाद तथा साम्राज्यवाद के विरोध में विचारपूर्ण लेख छपते थे । वाराणसी से सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी सचीन्द्र नाथ सान्याल ने "अग्रगामी" दैनिक पत्र निकाला । कुछ समय पश्चात आर्थिक संकट ग्रस्त होने के कारण इस दैनिक पत्र का प्रकाशन बन्द हो गया । सहारनपुर से "अनेकान्त" नामक साप्ताहिक पत्र भी इसी वर्ष अस्तित्व में आया । इस धार्मिक पत्र में जैन धर्म से सम्बन्धित लेख छपते थे । जैन तीर्थ स्थानों तथा जैनियों से सम्बन्धित सामाजिक व शैक्षिक संस्थाओं से बहुत लोकप्रियता "अनेकान्त" को मिली ।

इसी वर्ष पौड़ी से नरेन्द्र सिंह भण्डारी ने "पौड़ी टाइम्स" साप्ताहिक निकाला । गढ़वाल से भक्तदर्शन ने "कर्मभूमि" साप्ताहिक का प्रकाशन शुरू किया । "कर्मभूमि" राष्ट्रीय विचारों का पत्र था । 1938-42 के मध्य स्वतंत्रता आन्दोलन में इसने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । स्त्री शिक्षा के विकास को ध्यान में रखकर हरिद्वार से "कला" व "ऊषा" नामक दो पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ । दोनों पत्रिकाएं आर्य समाज की विचारधारा की पोषक थीं ।[2] इलाहाबाद से "देशदूत","राष्ट्रमत" लखनऊ से "चकल्लस" गोण्डा से "हलचल" तथा लखनऊ से "प्रकाश" साप्ताहिक पत्र 1938 में पहली बार प्रकाशित हुये ।[3]

अगस्त 1938 में लखनऊ से "नेशनल हेराल्ड" अंग्रेजी दैनिक पत्र का प्रकाशन संयुक्त प्रान्त में अंग्रेजी पत्रकारिता को महत्वपूर्ण घटना थी । पंडित जवाहरलाल नेहरू इसके निदेशक मण्डल के अध्यक्ष थे । यह पत्र कांग्रेस का

1- गायत्री गहलौत, लखनऊ की पत्रकारिता : एक विहंगम दृष्टि §लेख§, राष्ट्रभाषा सन्देश, 15 नवम्बर, 1979

2- गायत्री गहलौत, आर्य समाज और उत्तर प्रदेश की हिन्दी पत्रकारिता§लेख राष्ट्रभाषा सन्देश, 30 अप्रैल,1981, पृ० 7

3- राम रतन भटनागर, राइज एण्ड ग्रोथ आफ हिन्दी जर्नलिज्म, पृ०458

अधिकृत समाचार पत्र न होकर कांग्रेस की नीतियों का समर्थक था । राष्ट्रीय विचारों का पत्र होने के कारण उसे कई बार सरकार का कोप भाजन बनना पड़ा । 1940 में "नेशनल हैराल्ड" को गम्भीर आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा तो प्रबन्धकों ने उसे कर्मचारियों के सुपुर्द कर दिया । कुछ समय बाद ही उसकी स्थिति सुधर गई । देश के शीर्षस्थ राष्ट्रीय नेताओं का समर्थन इस पत्र को प्राप्त था । 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान लगभग दो वर्षों तक इसका प्रकाशन बन्द रहा । इसके प्रथम सम्पादक के0 रामाराव थे । उसके बाद एम0 चलपति राव इसके सम्पादक हुए ।[1] पंडित जवाहरलाल नेहरू इसके प्रकाशन में काफी रुचि लेते थे । स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान 1938-46 के मध्य अपने व्यस्त कार्यक्रम के बाद भी वे इसके लिए लेख लिखते थे । सम्प्रति इसका प्रकाशन हो रहा है ।

1938 में कमला नेहरू की स्मृति में वाराणसी से "कमला" मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । बाबूराम विष्णु पराड़कर "कमला" के सम्पादक थे । इसके माध्यम से महिला जागरण, परिवार कल्याण तथा समाजोपयोगी आन्दोलन को नई दिशा मिली । इस पत्र में साहित्यिक अभिरुचि के उच्चस्तरीय लेख छपते थे । लक्ष्मण नारायण गर्दे, बनारसी दास चतुर्वेदी, सुमित्रानन्दन पंत तथा महादेवी वर्मा जैसे प्रतिष्ठित कवि तथा विद्वान इसमें प्रायः लेख लिखते थे ।[2]

इसी वर्ष आचार्य श्रीराम शर्मा की प्रेरणा से मथुरा से "अखण्ड ज्योति" मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । सरल व बोधगम्य भाषा में विचारपूर्ण धार्मिक लेखों के प्रकाशन से यह पत्रिका बहुत लोकप्रिय हुई ।

1- एम0 चलपति राव, समाचार पत्र, पृ0 158

2- लक्ष्मीशंकर व्यास, संपादक पराड़कर, पृ0 12

इसका प्रकाशन अभी भी जारी है । वाराणसी से स्वामी करपात्री जी ने धार्मिक मासिक पत्र "सन्मार्ग" का प्रकाशन शुरू किया । इसके सम्पादक गंगाशंकर मिश्र थे । वृन्दावन में भगवान भजनाश्रम नामक धार्मिक संस्था ने गौर गोपाल के सम्पादन में "नाम महात्म्य" मासिक पत्र निकाला ।[1] इलाहाबाद में प्रान्तीय सरकार के ग्राम सुधार की ओर से "हल" नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन ठाकुर श्रीनाथ सिंह के संपादन में शुरू हुआ । इसके सम्पादन मण्डल में व्यंकटेश नारायण त्रिपाठी, सुमित्रानन्दन पन्त तथा महावीर त्यागी भी थे । आगरा से "ताजा तार" रामनगर (वाराणसी) से "सत्यप्रकाश" कालपी से "गुरुघण्टाल" तथा कानपुर से "युगान्तर" 1939 में पहली बार प्रकाशित होने वाले प्रमुख साप्ताहिक पत्र थे ।

1940 में वैष्णवदास त्रिवेदी के सम्पादन में वृन्दावन से "आनन्द" मासिक पत्रिका अस्तित्व में आई । झाँसी से लखपत राय शर्मा के सम्पादन में " देशी राज्य" नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसी वर्ष आगरा से डोरीलाल अग्रवाल के सम्पादन में "अमर उजाला" दैनिक समाचार पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ ।[2] सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक विषयों पर विचार पूर्ण लेख तथा निष्पक्ष समाचारों के प्रकाशन के कारण "अमर उजाला" काफी लोकप्रिय हुआ । इसका प्रकाशन अभी भी जारी है । इलाहाबाद के मित्र प्रकाशन की ओर से "मनोहर कहानियाँ" का प्रकाशन किया गया । विविध प्रकार की रोचक कहानियों के कारण यह पत्रिका बहुत लोकप्रिय हुई किन्तु प्रेम, रहस्य, रोमांच तथा घटना प्रधान कहानियों के कारण इसे बौद्धिक वर्ग ने नहीं अपनाया । सम्प्रति इसका प्रकाशन हो रहा है ।

1- सं0 वेद प्रताप वैदिक, हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम, पृ0 456

2- जे0 नटराजन, हिस्ट्री आफ इण्डियन जर्नलिज्म, पृ0 234

वाराणसी से "सिद्धान्त", अलीगढ़ से "स्वदेश", सीतापुर से "अग्रगामी", सहारनपुर से "जीवन" तथा प्रतापगढ़ से "चातक" 1940 में पहली बार प्रकाशित होने वाले प्रमुख साप्ताहिक पत्र थे । 1941 में लखनऊ से " भविष्य " दैनिक का प्रकाशन शुरू हुआ । इलाहाबाद से विशम्भरनाथ पाण्डेय ने "विश्ववाणी" नामक मासिक पत्रिका शुरू की । 1942 में विजयदशमी के दिन कानपुर से "रामराज्य" साप्ताहिक का प्रकाशन रामनाथ गुप्त के सम्पादन में प्रारम्भ हुआ । अनेक बाधाओं के बाद भी "रामराज्य" के स्वस्थ दृष्टिकोण, निष्पक्ष विचार तथा समाज सेवा के सिद्धान्त में कोई परिवर्तन नहीं आया ।[1]

1942 में राजेन्द्र गुप्त ने "जागरण" दैनिक का प्रकाशन प्रारम्भ किया । इसका प्रकाशन अभी भी हो रहा है । 1943 में इलाहाबाद से तुषारकान्ति घोष के सम्पादन में "अमृत बाजार पत्रिका" दैनिक का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसके पूर्व यह पत्र कलकत्ता से भी प्रकाशित होता था । वाराणसी से बाबूराव विष्णु पराड़कर के सम्पादन में दैनिक "संसार" निकला ।[2] संसार कार्यालय से ही अर्द्धसाप्ताहिक पत्र "ग्राम-सुधार" तथा "आंधी","युगधारा" तथा "आप बीती" मासिक पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ किन्तु लोकप्रियता के बाद भी आर्थिक संकट तथा अव्यवस्था के कारण ये अल्पजीवी सिद्ध हुई ।[3]

1- डा0लल्लन मिश्र, कानपुर में हिन्दी पत्रकारिता का विकास और गणेश शंकर विद्यार्थी § लेख§ "आज" भारत 1975 विशेषांक,पृ0234
2- जे0 नटराजन, हिस्ट्री आफ इन्डियन जर्नलिज्म, पृ0235
3- संकठा प्रसाद, काशी की हिन्दी पत्रकारिता §लेख§ उत्तर प्रदेश मासिक, लखनऊ, जून, 1976, पृ0 25

इसी वर्ष इलाहाबाद से शचीरानी व शम्भू प्रसाद बहुगुणा के सम्पादन में "जननी" तथा अयोध्या §फैजाबाद§ से "मानस मणि" नामक दो साप्ताहिक पत्रिकाएँ प्रकाशित होना शुरू हुई । वाराणसी के सन्मार्ग प्रेस से "सिद्धान्त" तथा मथुरा के साधन प्रेस से "साधन" 1943 में पहली बार छपने वाली दो प्रमुख धार्मिक पत्रिकाएँ थी । इनमें धर्म दर्शन तथा संस्कृति पर लेख प्रकाशित होते थे ।

1944 में लखनऊ से प्रेमनारायण टण्डन ने "हुंकार" पाक्षिक पत्र निकाला । मेरठ से वि0स0विनोद के सम्पादन में "प्रभात" साप्ताहिक छपना शुरू हुआ । 1947 में यह दैनिक पत्र हो गया । झांसी से कृष्णगोपाल शर्मा ने राष्ट्रीय विचारों के साप्ताहिक पत्र "उत्साह" का पुनर्प्रकाशन शुरू किया । 1947 में आर्थिक संकट के कारण इसका प्रकाशन बन्द हो गया ।

1945 में इलाहाबाद से अखिल भारतीय योगी महामण्डल द्वारा "योगेन्द्र" मासिक पत्र का प्रकाशन गोपीनाथ के सम्पादन में शुरू हुआ । एटा से युगवाणी तथा कानपुर से "स्पंदन" इस वर्ष प्रकाशित होने वाले अन्य साप्ताहिक पत्र थे ।

1946 में ऋषिकेश से श्रीदत्त शर्मा के सम्पादन में "साधु" मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । काली कमली वाले साधु द्वारा प्रकाशित इस पत्रिका में धर्म, दर्शन तथा संस्कृति सम्बन्धी लेख छपते थे । इसका प्रकाशन 1960 तक जारी रहा । आगरा से हरिशंकर शर्मा के संपादन में "कर्मयोग" मासिक पत्र छपना शुरू हुआ । इसमें उच्चस्तरीय धार्मिक लेख छपते थे । वाराणसी से "सन्मार्ग" दैनिक प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ । मथुरा से "संसार संघ" मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ ।

1947 में गोरखपुर से "आरोग्य" मासिक पत्रिका प्रारम्भ हुई । इसमें रोगों की सरल एवं आदर्श चिकित्सा, संतुलित आहार तथा प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी उपयोगी लेख प्रकाशित होते थे । मेरठ से -

"पंचायती राज" साप्ताहिक पत्र अस्तित्व में आया ।

इसी वर्ष देश के स्वतंत्र होने पर जनता में अपूर्व उत्साह था । आजादी के वर्ष में लखनऊ से "पायनियर" प्रेस से अशोक जी के सम्पादन में स्वतंत्र भारत "दैनिक का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसके पश्चात योगीन्द्र पति त्रिपाठी तथा चन्द्रोदय दीक्षित इसके सम्पादक हुए । लखनऊ से इसी समय "नवजीवन" दैनिक समाचार पत्र निकला । कानपुर से पूर्णचन्द्र गुप्त के संपादन में "दैनिक जागरण" अस्तित्व में आया । लखनऊ के राष्ट्रधर्म प्रकाश लिमिटेड से " पान्चजन्य" साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसमें भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन, राष्ट्रप्रेम चरित्र निर्माण तथा भारतीय संस्कृति पर विचारपूर्ण लेख छपते थे ।

** संस्कृत समाचार पत्र-पत्रिकाएँ ** :—

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के विकास के कारण सामान्य पत्रकारिता से भिन्न थे । धार्मिक ग्रन्थों के महत्वपूर्ण अंशों का प्रकाशन करने के लिए तथा जनसाधारण को धर्म की व्यापकता का ज्ञान कराने के लिए प्रारम्भ में संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । संस्कृत पत्रकारिता का प्रमुख उद्देश्य व्यावसायिक था । राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन में योगदान देना न होकर वैदिक धर्म की विवेचना, धर्म के लक्षण तथा धार्मिक तत्वों का मूल्यांकन करना था । प्रारम्भ में हिन्दू तीर्थ स्थानों तथा धार्मिक स्थलों से संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । "शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्" की भावना से ओत-प्रोत पत्र-पत्रिकाओं ने संस्कृत भाषा को लोकप्रिय बनाने का भी कार्य किया । संस्कृत की प्रारम्भिक पत्र-पत्रिकाओं में प्राचीन चिकित्सा ग्रन्थों को भी चर्चा का विषय बनाया गया । प्रायःसभी विधाओं से युक्त विविध प्रकार का साहित्य उन्नीसवीं शताब्दी के पत्र-पत्रिकाओं की सामग्री रहा ।[1]

1- राम गोपाल मिश्र, संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास, पृ0 13

संयुक्त प्रान्त में संस्कृत भाषा का पहला पत्र "काशी विद्या सुधा निधि" था । इसका प्रकाशन 1866 में वाराणसी से प्रारम्भ हुआ । राजकीय संस्कृत विद्यालय से प्रकाशित होने वाले इस मासिक पत्र के प्रकाशक ई0जे0 लाजरस थे ।[1] "काशी विद्या सुधा निधि" का प्रकाशन 1917 तक होता रहा । उत्तर भारत में संस्कृत पत्रकारिता काशी से प्रारम्भ हुई । द्वैमासिक पत्रिका का चलन भी यहीं से शुरू हुआ ।

1901 में काशी से "श्री काशी पत्रिका" नामक द्वैमासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसके सम्पादक व प्रकाशक आचार्य नीलाम्बर थे । 1903 में काशी से "सूक्तिसुधा" नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । पासी टोला से प्रकाशित होने वाली इस पत्रिका के संपादक भवानी प्रसाद शर्मा थे । यह मासिक पुस्तक के रूप में थी । इसमेंप्रमुखतः आधुनिक काव्य, नाटक, दार्शनिक निबन्ध तथा समस्या पूर्ति लेख होते थे । इसके संरक्षक गंगाधर शास्त्री थे । 1904 में काशी से ही मित्र गोष्ठी समिति मदनपुरा की ओर से "मित्रगोष्ठी" नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसके सम्पादक द्वयविधु शेखर भट्टाचार्य व रामावतार शर्मा थे । "मित्र - गोष्ठी" में अत्यधिक सरल तथा गम्भीर विषयों पर ललित निबन्धों का प्रकाशन होता था । इसके सम्पादकीय गम्भीर तथा विवेचनात्मक होते थे । विभिन्न कारणों से "मित्र गोष्ठी" का प्रकाशन 1909 में बन्द हो गया । इसी वर्ष काशी से "विद्वत् गोष्ठी" का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसके सम्पादक नीहार रंजन भट्टाचार्य थे ।[2]

1- पद्म लाल पुन्ना लाल बक्शी, समाचार पत्र §लेख§ "विशाल भारत" सितम्बर, 1945, पृ0 9

2- रामगोपाल मिश्र, संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास, पृ046

1906 में मथुरा स्थिति वेणी माधव मन्दिर से "संदर्भ" नामक पत्रिका का प्रकाशन वामनाचार्य के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ। अच्छी पत्रिका के सभी गुणों से परिपूर्ण होने के बावजूद भी 1908 में इसका प्रकाशन बन्द हो गया। 1913 में गुरुकुल महाविद्यालय हरिद्वार से "उषा" नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। 1916 तक इसका सम्पादन हरिश्चन्द्र विद्यालंकार ने किया। यह पत्रिका 1920 तक प्रकाशित हुई। इसमें विचार चर्चा व ऐतिहासिक लेख प्रकाशित होते थे। पत्रिका की भाषा सरल व बोधगम्य थी। 1916 में ही प्रयाग दारागंज मुहल्ले से "शारदा" मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। चन्द्रशेखर शास्त्री के सम्पादन में प्रकाशित इस पत्रिका को पाठकों का पर्याप्त सहयोग नहीं मिल सका।[1] चन्द्रशेखर शास्त्री ने निरन्तर आर्थिक घाटा सहकर भी इसका प्रकाशन जारी रक्खा। अन्ततः 1917 में इसका प्रकाशन बन्द हो गया। अपने अनूठे स्तम्भों तथा रोचक लेखों के कारण "शारदा" का प्रकाशन संस्कृत पत्रिकाओं में महत्वपूर्ण था।

1918 में "संस्कृत भारती" नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन काशी में शुरू हुआ। "संस्कृत भारती" में साहित्य, विज्ञान, दर्शन तथा राजनीति विषयक लेख प्रकाशित होते थे। इसमें संस्कृत ग्रन्थों की टीका भी छपती थी।[2] इसमें प्रकाशित सामग्री के विषय चयन को लेकर बाद में सम्पादक मण्डल के सदस्यों में मतभेद हो गया जिससे इसका प्रकाशन पहले अनियमित होने लगा और फिर 1923 में बन्द हो गया।

1920 में "सरस्वती भुवनागरीयम्" नामक पत्रिका का प्रकाशन वाराणसी से शुरू हुआ। इसी वर्ष काशी से "सुप्रभातम" नामक पत्र छपना प्रारम्भ हुआ। यह अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन का मुखपत्र था।

1- शालिग्राम श्रीवास्तव, प्रयाग प्रदीप, पृ0 163

2- रामगोपाल मिश्र, संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास, पृ0 104

इसके सम्पादक देवी प्रसाद शुक्ल तथा प्रकाशक विन्ध्येश्वरी प्रसाद थे । इसमें सम्पादकीय पत्रों पर विशेष ध्यान दिया जाता था । 1924 में अधिक लोकप्रिय होने पर विन्ध्येश्वरी प्रसाद ने इसे पाक्षिक पत्र का रूप दे दिया । 1930 में "सुप्रभातम्" का प्रकाशन बन्द हो गया । 1920 में ही अखिल भारतीय विद्वत् समिति की स्थापना अयोध्या में हुई । इसी वर्ष अंग्रेजी शासन के विरोध में अयोध्या के विद्वानों ने "साकेत" नामक पत्र का प्रकाशन शुरू किया ।[1] इसके प्रथम संपादक रूप नारायण मिश्र बने । "साकेत" समाचार प्रधान पत्र था किन्तु समाचार मुख्यतः धार्मिक होते थे । इसमें हास्य कथाएँ, रोचक संस्मरण, विद्वानों का जीवन चरित्र तथा संस्कृत भाषा की शिक्षा के सम्बन्ध में उच्चकोटि के लेख प्रकाशित होते थे । 1940 में ब्रह्मदेव शास्त्री इसके सम्पादक हुए ।"साकेत" बीसवीं शताब्दी में संस्कृत का प्रथम पत्र था जिसका प्रकाशन तीन दशकों तक सफलता पूर्वक होता रहा । इसकी सफलता का प्रमुख श्रेय प्रबन्ध मण्डल की योग्यता, मोहक मुद्रण तथा जनरुचि की सामग्री को था ।[2]

1926 में काशी से भारत धर्म महामण्डल की ओर से "सूर्योदय" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसके सम्पादक गोविन्द नरहरि वैजापुरकर थे । इसमें विविध विषयों के लेख प्रकाशित होते थे । इसके विशिष्ट अंकों में उद्बोधन सदुपदेश तथा सूक्तियाँ भी प्रकाशित होती थी । "सूर्योदय" का काफी विकास हुआ और वह जल्दी ही पाक्षिक हो गया । 1926 में ही वाराणसी की राजस्थान संस्कृत पाठशाला से "सुरभारती" नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ किन्तु सम्पादक गुरुप्रसाद शास्त्री के असामयिक निधन के कारण "सुरभारती का एक ही अंक

1- राम रतन भटनागर, राइज एण्ड ग्रोथ आफ हिन्दी जर्नलिज्म, पृ0735

2- कमलाकान्त मिश्र, संस्कृत पत्रकारिता, पृ041

प्रकाशित हो सका । 1928 में वाराणसी से "ब्राह्मण महासम्मेलनम्" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । यह मुख रूप से धार्मिक पत्र था और ब्राह्मण महासम्मेलन सभा का मुख पत्र था । सभा का प्रतिवर्ष अधिवेशन होता था । अधिवेशन में धर्म विषयक प्रमुख प्रश्नों के उत्तर सम्मेलन के मुख पत्र में प्रकाशित होते थे । इस पत्र के अनेक धर्म प्रधान विशेषांक प्रकाशित हुए जिनकी भाषा सरल तथा प्रभावोत्पादक होती थी । "ब्राह्मण महासम्मेलनम्" के पाठक यद्यपि सीमित थे किन्तु धार्मिक विचारों के प्रचार में इसने महत्वपूर्ण योगदान दिया ।[1]

1930 में अयोध्या {फैजाबाद} से काली कुमार त्रिपाठी के सम्पादन में "संस्कृतम्" नामक पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ । इस साप्ताहिक पत्र में विभिन्न प्रकार के लेख तथा धार्मिक उत्सव की सूचनाएँ होती थी ।

1934 में काशी के महामहोपाध्याय काशी प्रसाद शास्त्री के सम्पादन में "अमर भारती" पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इस मासिक पत्रिका के प्रबन्ध मण्डल में अनेक प्रतिष्ठित विद्वान होने के कारण इसमें उच्च-स्तरीय लेख प्रकाशित होते थे । इसी वर्ष काशी से "सनृतवादिनी" नामक साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ । विविधता के अभाव तथा लगातार आर्थिक घाटा होने के कारण इस पत्रिका का प्रकाशन चार वर्ष बाद बन्द हो गया । इन्हीं दिनों काशी से "सहस्रांशुः" नामक पाक्षिक पत्र प्रकाशित हुआ । शारदाभवन से प्रकाशित होने वाले इस पत्रके सम्पादक व प्रकाशक गोपीनाथ पाठक थे । इसमें विज्ञान, साहित्य तथा धर्म से सम्बन्धित सामग्री तथा सामाजिक निबन्धों का प्रकाशन होता था ।

1- राम गोपाल मिश्र, संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास, पृ0 68

1934 में ही वाराणसी के राजकीय संस्कृत कालेज से "अमर भारती" नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसके सम्पादक व प्रकाशक नारायण शास्त्री रिवस्ते थे । प्रकाशन की दृष्टि से इसमें कोई नवीनता नहीं थी । 1935 में काशी से "बल्लरी" नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । यह पत्रिका केशवदत्त पाण्डेय तथा तारादत्त पाण्डेय के संयुक्त सम्पादन में सम्पादित होती थी । इसमें विविध विषयों पर गवेषणात्मक निबन्ध, समस्याएँ, व्यंग्य समाचार तथा विज्ञान सम्बन्धी ~~सम~~ सामान्य जानकारी को स्थान दिया जाता था । एक वर्ष बाद सम्पादक बदल जाने तथा धनाभाव के कारण इस पत्रिका का प्रकाशन आगे न हो सका ।[1]

1936 में आगरा से "कालिन्दी" नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन हरिदत्त शास्त्री के सम्पादन में प्रारम्भ हुआ । सामाजिक कुरीतियों तथा धार्मिक कर्मकाण्ड का विरोध करने वाले विज्ञान तथा धार्मिक समस्या मूलक निबन्ध भी इसमें प्रकाशित होते थे । 1938 में "शारदा" नामक हस्तलिखित पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ किन्तु कुछ अंको के बाद इसका प्रकाशन बन्द हो गया ।

1939 में वाराणसी से ही "ज्योतिष्मती" नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसके प्रबन्ध सम्पादक महादेव शास्त्री तथा बल्देव प्रसाद मिश्र थे । यह हास्य रस प्रधान सचित्र पत्रिका थी जिसमें सामाजिक तथा राजनीतिक व्यंग्य लेखों के अतिरिक्त कथा तथा संस्मरण भी होते थे । संस्कृत भाषा की यह पहली पत्रिका थी जिसमें प्रकाशित होने वाले राजनीतिक लेखों पर ब्रिटिश सरकार की कड़ी निगाह रहती थी ।

1- राम गोपाल मिश्र, संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास, पृ0 7।

1940 में रामपुरा §वाराणसी§ से "संस्कृत सन्देश" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । यह मुख्यतः विद्यार्थियों के लिए था । इसकी भाषा सरल व बोधगम्य थी । इसके सम्पादक रामबालक शास्त्री थे । इसी वर्ष अस्सी §वाराणसी§ से महादेव शास्त्री के सम्पादन में "भारत श्री" नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसका स्तर काफी ऊँचा था किन्तु प्रकाशन में अनियमितता तथा लगातार घाटा होने के कारण यह पत्रिका अल्पजीवी सिद्ध हुई ।[1] इसी वर्ष "वाङ्मय" पाक्षिक पत्र का प्रकाशन काशी से प्रारम्भ हुआ । इसके सम्पादक चन्द्र किशोर शर्मा थे । आर्थिक कारणों से यह पत्र अल्पजीवी सिद्ध हुआ ।

1942 में वाराणसी संस्कृत महाविद्यालय से "सरस्वती सुषमा" नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसका प्रकाशन मौलिक अनुसन्धान की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने के लिए किया गया था । 1945 तक इसके सम्पादक मंगलदेव शास्त्री थे । "सरस्वती सुषमा" में शास्त्र विज्ञान, शब्द विज्ञान तथा राजनीति से सम्बन्धित लेख छपते थे । आचार्य नरेन्द्र देव, क्षमादेवी राव, महादेव शास्त्री तथा नारायण शास्त्री खिस्ते इसके विशिष्ट लेखक थे ।

1944 में बांस फाटक §वाराणसी§ से "अमर भारती" मासिक का प्रकाशन पुनः प्रारम्भ हुआ । इसका उद्देश्य संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए प्रयास करना था । इसमें प्रतिष्ठित विद्वानों तथा धर्माचार्यों के लेख छपते थे । काली प्रसाद के प्रायः अस्वस्थ होने के कारण इसका प्रकाशन एक वर्ष तक ही जारी रहा ।[2]

1- राम गोपाल मिश्र, संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास, पृ0 85

2- वही, पृ0 94

बीसवीं शताब्दी में कुछ ऐसी संस्कृत पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं जिनका प्रकाशन एक ही नाम से विभिन्न स्थानों से होता था। " संस्कृत रत्नाकर" जयपुर, वाराणसी, कानपुर, दिल्ली आदि से प्रकाशित होती थी। "अमर भारती" नामक पत्रिका वाराणसी से दो बार अलग-अलग सम्पादकों के सम्पादन में प्रकाशित हुई। "प्रज्ञा" तथा "विद्या" नामक पत्रिका का प्रकाशन भारत के अन्य स्थानों की तरह काशी से भी हुआ किन्तु एक ही नाम की इन पत्रिकाओं के सम्पादक अलग-अलग थे और प्रकाशन सामग्री विभिन्न थी। "संस्कृत प्रतिभा" का प्रकाशन भी इसी तरह होता था। 1918 में "संस्कृत-भारती" तथा 1928 में "साहित्य सुषमा" का प्रकाशन राजापुर §बांदा§ से होता था। इसी नाम की पत्रिकाएँ बिहार तथा मध्य भारत के नगरों से भी प्रकाशित होती थीं।[1]

"शारदा ग्रन्थमाला" नामक मासिक पुस्तकों का प्रकाशन वाराणसी तथा "प्रयाग" से होता था। "शारदा" नामक पत्रिका के संपादक चन्द्रशेखर शास्त्री ने प्रयाग से "संस्कृत ग्रन्थमाला" का प्रकाशन प्रारम्भ किया। एक अन्य "शारदा ग्रन्थमाला" का प्रकाशन 1926 के पहले काशी से गौरी नाथ पाठक के सम्पादन में प्रारम्भ हुआ था। वाराणसी संस्कृत विद्यालय से 1920 में अप्रकाशित प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों को प्रकाशित करने के लिए " सरस्वती भवन ग्रन्थमाला" का प्रकाशन शुरु हुआ था। इसके लिए महा-महोपाध्याय गंगानाथ झा ने काफी प्रयास किया।[2]

1- राम गोपाल मिश्र, संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास, पृ0 78
2- वही, पृ0 79

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में संस्कृतज्ञों ने संस्कृत के बहुमुखी विकास के लिए काफी उद्यम किया । इस शताब्दी में धार्मिक भावना तथा साहित्यिक अभिरुचि पत्र-पत्रिकाओं के लिए प्रधान प्रेरणा थी । बीसवीं शताब्दी में धार्मिक राजनीतिक तथा सामाजिक स्थितियों में बहुत परिवर्तन हुआ । इसका प्रभाव संस्कृत पत्रकारिता में आई विविधता से प्रकट होता है । पत्र-पत्रिकाओं ने संस्कृत को उसका खोया गौरव पुनः मिले इसके लिए प्रयास किया ।[1] संस्कृत भाषा के प्रति श्रद्धा व आस्था उत्पन्न करना ही कुछ संस्कृत पत्रिकाओं का उद्देश्य था । प्रयाग से चन्द्रशेखर शास्त्री ने "शारदा" का प्रकाशन इसी उद्देश्य से किया था । कुछ पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन सामाजिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर किया गया । कुछ पत्रिकाओं का उद्देश्य मात्र छात्र कल्याण था । इसमें सरल भाषा में पहेलियाँ, निबन्ध, व्याकरण, दर्शन, धर्म तथा बालोपयोगी नीतिजन्य कहानियाँ प्रकाशित होती थी ।[2] धार्मिक विषयों का ज्ञान कराने तथा ऐहिक और पारलौकिक उन्नति तथा अभ्युदय के लिये अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । ब्राह्मण धर्म की प्रतिष्ठा के लिए महामहोपाध्याय लक्ष्मण शास्त्री तथा अनन्तकृष्ण शास्त्री ने "ब्राह्मण महासम्मेलन" के माध्यम से अथक प्रयास किए ।

** उर्दू पत्र-पत्रिकाएँ ** :—

उर्दू पत्रकारिता का प्रारम्भ हिन्दी पत्रकारिता से पहले तथा फारसी पत्रकारिता के बाद हुआ । फारसी पत्रकारिता विभिन्न रूपों में भारत में 17वीं शताब्दी से विकसित हो रही थी किन्तु 19वीं शताब्दी के प्रथम दशक में उर्दू का प्रभाव बढ़ने लगा । उर्दू का प्रथम पत्र "हिन्दुस्तानी"

1- राम गोपाल मिश्र, संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास, पृ0 79

2- वही, पृ0 107

1910 में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ । इसके प्रकाशक इकरामुद्दीन थे । फारसी तथा उर्दू पत्रकारिता का विकास भारत में छापाखानों §प्रेस§ के प्रसार के साथ तीव्र गति से हुआ । भारत में लीथो प्रेस का चलन उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में गवर्नर माउंट स्टुअर्ट एलीफेस्टन के समय में कलकत्ता में हुआ । कुछ वर्षों बाद ही लीथो प्रेस पर छपाई होने लगी ।[1] लखनऊ में सबसे पहले लीथो प्रेस पर छपाई प्रारम्भ हुयी । 1819-20 में गाजी अलाउद्दीन हैदर ने लखनऊ में लीथो प्रेस पर छपाई होते देखा था और उसके बाद लीथो प्रेस वाराणसी §1824§, आगरा §1826§, तथा कानपुर §1831§ में भी स्थापित हो गए । इससे उर्दू पत्रकारिता का तेजी से विकास हुआ । संयुक्त प्रान्त में प्रथम मुद्रणालय§प्रिन्टिंग प्रेस§ 1845 में इलाहाबाद तथा मिर्जापुर में स्थापित हुआ । 1847 में सिकन्दरा §आगरा§ में भी मुद्रणालय स्थापित हो गया । मुद्रणालय की अपेक्षा लीथो प्रेस में छपाई काफी सस्ती होती थी इसलिए प्रारम्भिक उर्दू पत्रकारिता लीथो प्रेस के माध्यम से विकसित हुई ।[2] यह पुरानी परम्परा का ही प्रभाव है कि आज भी अधिकांश उर्दू समाचार पत्र-पत्रिकाएँ लीथो प्रेस से ही प्रकाशित हो रही हैं ।

1903 में मुरादाबाद से मजहर रिजवी के सम्पादन में "मुखतिरे आलम" नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसमें राजनीतिक समाचारों से धार्मिक विचारों को अधिक प्रमुखता दी जाती थी । इसका प्रकाशन अभी भी जारी है । इसी वर्ष बदायूँ से जमालुद्दीन मुनीस के सम्पादन में "जुल्फकार नेन" नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इस पत्र का प्रकाशन अभी भी जारी है । इसी वर्ष अलीगढ़ से "उर्दू"

1- सी0एस0 स्टोने, दि बिगनिंग आफ पर्शियन प्रिंटिंग इन इण्डिया, पृ0460

2- राम रतन भटनागर, राइज ऐण्ड ग्रोथ आफ हिन्दी जर्नलिज्म, पृ0683

ए मौला " नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ । इसमें राजनीतिक लेख प्रकाशित होते थे ।

1907 में इलाहाबाद से "स्वराज्य" नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । भारतीय उर्दू पत्रकारिता तथा स्वतंत्रता आन्दोलन में समाचार पत्रों के योगदान की दृष्टि से इस पत्र का महत्वपूर्ण स्थान है । शाहगंज कोतवाली क्षेत्र में स्थित देशसेवक प्रेस से इसका सम्पादन होता था । ढाई वर्षों में स्वराज्य के कुल 75 अंक निकले ।[1] सरकार की दृष्टि से आपत्तिजनक सामग्री के प्रकाशन के अपराध में होतीलाल वर्मा, बाबूराम, हरी खत्री, मुंशीराम सेवक, नन्द लाल चोपड़ा, लड्ढाराम कपूर तथा अमीरचन्द बम्बवाल को एक के बाद एक को न्यायालय से दण्डित किया गया । सरकार ने इस पत्र के प्रकाशन को इतना खतरनाक माना कि रौलेट कमीशन के सर रौलेट, सरवासिल स्काट, सी0वी0 कुमारस्वामी, वर्नेलोवेट तथा पी0सी0 मित्तर ने इसका उल्लेख कमीशन की रिपोर्ट में किया ।[2]

संयुक्त प्रान्त से 1907 में 153 नए पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ जिसमें 89 पत्र-पत्रिकाएँ उर्दू की थी ।[3] इसी वर्ष कानपुर से मुंशी दयानारायण निगम के सम्पादन में "जमाना" मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । 1908 में "अवध अखबार" "उर्दू-ए-मौला" "स्वराज्य" तथा "अवध पंच " में आपत्तिजनक लेखों के प्रकाशन के आरोप में उनके संपादकों को चेतावनी दी गई । इसी वर्ष आपत्तिजनक लेखों के प्रकाशन के आरोप में "स्वराज्य" के सम्पादक शांति नारायण भटनागर को साढ़े तीन वर्ष के लिए कठोर करावास का दण्ड दिया गया ।

1- मोतीलाल भार्गव, चार देश भक्त पत्रकार जो विचार स्वातन्त्र्य के लिये कालापानी गये " §लेख§ धर्मयुग, 27 जनवरी, 1980, पृ0 45

2- एडीसन कमेटी रिपोर्ट, 1918, पृ0 13

3- रिपोर्ट आफ दि एडमिनिस्ट्रेशन आफ एन0डब्लू0पी0§1907-8§पृ0 76

1911 में इलाहाबाद के इण्डियन प्रेस से "अदीब" नामक बच्चों की मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । 1922 में मुदीना प्रेस बिजनौर से " गुन्चा" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन सैय्यद अख्तर के सम्पादन में प्रारम्भ हुआ । इसमें मुख्य रूप से राजनीतिक लेखों के साथ साहित्यिक अभिरुचि के लेख प्रकाशित होते थे । सरकार से इसका कोई विरोध नहीं था । 1924 में आगरा के दयालबाग प्रेस से बालकृष्ण सक्सेना के सम्पादन में "प्रेम प्रचारक" नामक उर्दू साप्ताहिक पत्र छपना प्रारम्भ हुआ । 1925 में अखिल भारतीय शिया सम्मेलन ने लखनऊ से "सरफराज" और "जमीयत-उल-उल्माए हिन्द" ने "अल जमीयत" पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया । "सरफराज" नन्द महल रोड स्थित "सरफराज कौमी प्रेस" से छपता था । इसके सम्पादक मुस्तफा हुसैन रिजवी तथा प्रकाशक सैय्यद असिर हुसैन थे । इसी वर्ष सहारनपुर स्थित लीथो बारीकी प्रेस से रूस0 ख्वाजा के सम्पादन में "सदाकत" नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । 1926 में अलीगढ़ से "सुहेल" नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ ।[1] "सुलहकुल" §गोरखपुर§ "मशारिक"§गोरखपुर§ "निजाम"§बिजनौर§;डेली सहीफा" §कानपुर§ , "आइना" §मेरठ§,"आलमगीर" §मेरठ§, "आजाद" §कानपुर§ "रोजाना अखबार" इस काल के प्रमुख उर्दू पत्र थे ।[2]

1930 में इलाहाबाद से मुंशी कन्हैया लाल के सम्पादन में "चाँद" नामक उर्दू मासिक पत्रिका का प्रकाशन हुआ । यह पत्रिका बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुई किन्तु विभिन्न कारणों से एक वर्ष बाद इसका प्रकाशन बन्द हो गया । इसी वर्ष इलाहाबाद स्थित हिन्दुस्तानी एकेडमी ने"हिन्दुस्तानी नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन असगर अली के संपादन में प्रारम्भ किया ।

1- राम रतन भटनागर, राइज ऐण्ड ग्रोथ आफ हिन्दी जर्नलिज्म, पृ0679

2- वही, पृ0 680

1931 में कानपुर में कर्नलगंज स्थित इंतजामी प्रेस से "गरीब" नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन हुआ । इसके सम्पादक व प्रकाशक शौकत अली भोपाली थे । यह पत्र प्रारम्भ में साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित था । इसी वर्ष लखनऊ से सरफराज कौमी प्रेस से "हरीम" नामक पाक्षिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । यह महिलाओं की पत्रिका थी । इसमें घरेलू कामकाज की सामग्री के अतिरिक्त नारी स्वतंत्रता तथा स्त्री शिक्षा पर उच्च कोटि के लेख प्रकाशित होते थे । इसके सम्पादक व प्रकाशक एस0एम0 नसीम थे ।[1]

1932 में सरायनाहा §बदायूँ§ के आला प्रेस से "मोमिन" नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसी वर्ष सहारनपुर के बकी प्रेस से "मोहकीक" नामक पाक्षिक पत्रिका का प्रकाशन वजीर हसन शमीम के सम्पादन में प्रारम्भ हुआ । "मोहकीक" में चिकित्सा तथा स्वास्थ्य सम्बंधी लेख प्रकाशित होते थे । यूनानी चिकित्सा पद्धति सम्बन्धी लेखों को इसमें प्रमुखता दी जाती थी ।

1933 में बिजनौर में सिविल लाइन्स स्थित ऋषि प्रेस से "ऋषि" नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन ईश्वर शरण वैद के सम्पादन में प्रारम्भ हुआ ।[2] इसी वर्ष मुरादाबाद में स्थित जिद्दत प्रेस से "जिद्दत" नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन मिर्जा सियाब बेग के सम्पादन में प्रारम्भ हुआ । इसमें राजनीतिक समाचारों के अतिरिक्त साहित्य, धर्म, दर्शन तथा कला पर विविध प्रकार की सामग्री प्रकाशित होती थी । 1933 में ही गोरखपुर स्थित मुराद प्रेस से अब्दुल मजीद के सम्पादन में "मुराद" नामक साप्ताहिक

1– इमदाद सबारी, तारीखे सहाफते §उर्दू§ पृ0 78

2– वही, पृ0 81

पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ ।[1] इसका प्रकाशन अभी भी जारी है । 1936 में हरदोई में संडीला स्थित कृष्ण प्रेस से नानक प्रसाद अस्थाना के सम्पादन में "सबन" नामक साहित्यिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ ।

1939 में रामपुर स्थित नसरुल्ला बाजार के नाज़िम प्रेस से एम0अली0खाँ के सम्पादन में "नाज़िम" नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसी वर्ष अलीगढ़ के रियाज हिन्द प्रेस से "शबाब" नामक साहित्यिक पत्र का प्रकाशन जमाल साबरी के सम्पादन में प्रारम्भ हुआ । इसमें राजनीतिक विचारों के लेखों को प्रमुखता नहीं दी जाती थी ।

1940 में बरेली के दर्जी चौक स्थित रलाइट प्रेस से "रोहिल खण्ड अखबार" का प्रकाशन तेग बहादुर सिन्हा के सम्पादन में प्रारम्भ हुआ । क्षेत्रीय समाचारों तथा समस्याओं को प्रमुखता दिए जाने के कारण यह बहुत लोकप्रिय रहा । इसमें राजनीतिक दलों सरकार तथा राष्ट्रीय घटनाओं पर निर्भीकतापूर्वक टिप्पणी की जाती थी । अलीगढ़ से 1941 में "हमारी जुबान" नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसके सम्पादक अहमद सरूर तथा प्रकाशक सैय्यद तफज्जुल हुसेन थे । इस पत्र का मुख्य उद्देश्य उर्दू भाषा का प्रसार करना था ।

1945 में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लखनऊ के हेराल्ड प्रेस से "कौमी आवाज" नामक दैनिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया । इसके सम्पादक हयातुल्ला अंसारी थे । इसी वर्ष लखनऊ से चौधरी खालिकुज्जमा ने "तनवीर" नामक पत्र का प्रकाशन शुरू किया । 1945 में ही कानपुर में हुमायूँबाग स्थित पैगाम प्रेस से "पैगाम" नामक दैनिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसके सम्पादक व प्रकाशक वजीउद्दीन थे । 1946 में कानपुर के ही

1- इमदाद सबारी, तारीखे सहाफते उर्दू, पृ0 93

चमनगंज स्थित "आवाजे वतन" प्रेस से अशरफ हुसैन के सम्पादन में "हमारी आवाज" नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसी वर्ष रामपुर में कहाना स्थित जमाल प्रेस से अब्दुल हई के सम्पादन में "अलहसनात" नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इसमें प्रमुख रूप से धर्म एवं दर्शन सम्बन्धी लेखों का प्रकाशन होता था ।

1837-50 के मध्य प्रकाशित होने वाले उर्दू पत्र-पत्रिकाओं का कोई निश्चित स्वरूप नहीं था । पत्रों का स्वरूप बहुत कुछ सम्पादकों पर निर्भर करता था । समाचारों की प्रस्तुति घटनापरक व तथ्यपरक न होकर साहित्यिक अधिक होती थी । उन्नीसवीं शताब्दी के पाँचवें दशक तक डाक रेलवे तथा संचार व्यवस्था न होने से घटनाओं की वास्तविकता जानने में काफी कठिनाई होती थी । 1835-50 तक उर्दू की पत्र-पत्रिकाएँ राजनीतिक घटनाओं पर टीका टिप्पणी या जनभावनाओं का प्रतिनिधित्व कर सकने की स्थिति में नहीं थे । इस काल में अनेक उर्दू पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक हिन्दू थे । इस कारण अनेक उर्दू पत्र-पत्रिकाओं की भाषा हिन्दी उर्दू मिश्रित थी ।

उर्दू पत्रकारिता के विकास का दूसरा चरण 1850 से 1879 का है । इस बीच लखनऊ, मुरादाबाद, अलीगढ़, बरेली, वाराणसी, कानपुर, आगरा, मेरठ तथा रामपुर उर्दू पत्र-पत्रिकाओं के प्रमुख प्रकाशन केन्द्र हो गए । यहाँ से अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हो गया । 1857 के विद्रोह में अनेक पत्रिकाओं द्वारा विरोधी नेताओं का पक्ष लेने के कारण विद्रोह समाप्ति पर सरकार ने उन्हें बन्द करने के लिए उनके सम्पादकों को विवश कर दिया था । विद्रोह के पश्चात प्रकाशित होने वाले अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं ने पहले की स्थिति से नसीहत लेकर राजनीतिक समाचारों व सरकार की आलोचना प्रकाशित करना लगभग छोड़ दिया था । इस बीच प्रकाशित होने वाले पत्रों में "अवध अखबार" सरकार का कट्टर समर्थक था ।

1877 में मुंशी सज्जाद हुसेन के सम्पादन में प्रकाशित "अवध पंच" जनभावनाओं को महत्व देने तथा सरकार की आलोचना करने के कारण जनता में अधिक लोकप्रिय हुआ ।

उर्दू पत्रकारिता की उन्नति का तीसरा चरण 1879-1900 का है । इस बीच हिन्दी की पत्रकारिता प्रारम्भ हो जाने से उर्दू पत्रकारिता को प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा । गंगा प्रसाद वर्मा के सम्पादन में 1883 में लखनऊ से प्रकाशित " हिन्दुस्तानी " पत्र ने उर्दू पत्रकारिता को नई दिशा दी । संयुक्त प्रान्त में यह पहला उर्दू पत्र था जो पत्रकारिता के निर्धारित सिद्धान्त पर चलकर निर्भीक व निष्पक्ष समाचार प्रकाशित करता था । यह सरकार, राजनीतिक दलों, धर्म सम्प्रदाय या किसी व्यक्ति विशेष के प्रति पूर्वाग्रह से प्रेरित नहीं था । इस बीच अलीगढ़ से प्रकाशित सर सैय्यद खाँ के अखबार ने मुस्लिम समाज में व्याप्त अंध विश्वास रूढ़िवादिता तथा प्रतिक्रियावादी विचारों के विरुद्ध अभियान छेड़ रखा था । इस काल के पत्र-पत्रिकाओं में विविध प्रकार की सामग्री दी जाने लगी तथा भाषा काफी सुधर गई । उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक तक अधिकांश उर्दू पत्र धर्म निरपेक्ष नहीं रह गए थे ।

उर्दू पत्रकारिता के विकास का चौथा तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण चरण 1900-1947 का है । इस दौरान कई महत्वपूर्ण दैनिक समाचार पत्रों व पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । हाली, इकबाल, प्रेमचन्द तथा मुंशी दयाशरण निगम जैसे प्रख्यात शायरों व साहित्यकारों की रचनाओं से पत्र-पत्रिकाओं का सम्मान बढ़ा । इतिहास, धर्म, दर्शन, साहित्य आदि से सम्बन्धित उच्चस्तरीय लेखों से उर्दू पत्रकारिता का कायाकल्प हुआ ।

1900–47 के मध्य के पत्र-पत्रिकाओं ने राजनीति तथा समाज सुधार पर अपना ध्यान केन्द्रित कर लिया था । कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के कार्यकलाप मुख्य चर्चा के विषय थे । राष्ट्रीय आन्दोलन की चरम सीमा होने के कारण इस काल के वे पत्र भी सरकार के कटु आलोचक हो गए जो पिछले कई दशकों से सरकार का समर्थन कर रहे थे । सरकार ने स्थिति से निपटने के लिए कई कठोर प्रेस कानून बनाए और उन्हें सख्ती से लागू किया । राजनीति में कांग्रेस व मुस्लिम लीग के प्रश्न पर उर्दू के अधिकांश पत्र साम्प्र--दायिकता की सीमा तक बिलगाव की स्थिति में आ गए थे । वे राष्ट्रीय समस्याओं को साम्प्रदायिकता का रंग देने में सिद्धहस्त हो गए थे ।[1] इस कारण कुछ उर्दू पत्रों को छोड़कर अधिकतर पत्र-पत्रिकाएँ प्रगतिशील राष्ट्रीय विचारधारा के प्रति प्रतिक्रियावादी रवैया अपनाए हुए थे ।[2]

1– हिन्दुस्तानी ऐकेडमी में 12 जनवरी, 1936 को मौलवी अब्दुल हक द्वारा दिया गया अध्यक्षीय भाषण ।

2– राम रतन भटनागर, राइज एण्ड ग्रोथ आफ हिन्दी जर्नलिज्म, पृ0 680

::x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x::

:x:x:x:x:x:x:x:x:

:x:x:x:x:

" अध्याय : तृतीय "

" उन्नीसवीं शताब्दी में उत्तर प्रदेश की - सामाजिक - सांस्कृतिक परिस्थितियाँ "

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत एक संक्रमण काल से गुजर रहा था । अठ्ठारहवीं शताब्दी में प्लासी और बक्सर के युद्धों के पश्चात भारत का भविष्य अंग्रेजों के हाथ में चला गया था । उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में लार्ड वेलेजली ने सहायक सन्धि की कूटनीति में जकड़कर अनेक भारतीय राज्यों को ईस्ट इन्डिया कम्पनी के नियन्त्रण में कर लिया था । लार्ड मिन्टो से लेकर लार्ड डलहौजी तक के शासन काल में हुये साम्राज्य विस्तार से समस्त भारत पर अंग्रेजों का एक छत्र अधिकार हो गया । सारे भारत पर अधिकार हो जाने के बाद अंग्रेजों को अपने अनुकूल व्यवस्था लागू करने के लिये अनेक परिवर्तन करने पड़े । रेल, टेलीग्राफ, आवागमन की व्यवस्था, डाक सुविधा, आधुनिक शिक्षा, भूमि प्रबन्ध तथा छापेखाने ने भारतीय समाज को मध्ययुगीन व्यवस्थाओं को सदैव के लिये छोड़ने को विवश कर दिया । ब्रिटिश उद्योगों के विकास के लिये अंग्रेजों ने भारतीय साम्राज्य का पूरा लाभ उठाया । शोषणकारी नीतियों के कारण भारत में ब्र निर्धनता बढ़ते जाने, भारत के देशी उद्योगों को नष्ट कर दिये जाने तथा भारत के कच्चे माल को इंग्लैंड के कारखानों में प्रयोग में लाने के बाद भी बदली हुई परिस्थितियों में परोक्ष रूप से भारत को लाभ मिला ।

बंगाल के बाद भारत के जिन भागों पर अंग्रेजों का अधिकार हुआ उनमें संयुक्त प्रान्त प्रमुख था । नवीन सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों ने गांवों के सीमित, संकुचित तथा निम्न कोटि के जीवन के विपरीत शहरों में समृद्ध, सांस्कृतिक तथा आर्थिक जीवन विकसित किया । आधुनिक उद्योगों तथा आवागमन के साधनों के कारण नये वर्गों का जन्म हुआ । उन्नीसवीं शताब्दी में आत्म निर्भर स्वाधीन ग्रामीण अर्थतंत्र पर आधारित भारत के आर्थिक अनैक्य की समाप्ति और पूँजीवादी रूपों के आगमन से आर्थिक इकाई के तौर पर भारत का रूपांतरण अंग्रेजी शासन के ऐतिहासिक रूप के

प्रगतिशील परिणाम थे । यह रूपांतरण ब्रिटिश व्यापार, उद्योग तथा बैंकिंग की आवश्यकताओं द्वारा संचालित हुआ और ब्रिटिश स्वार्थों की सिद्धि करता रहा इसलिये भारतीय समाज का स्वतन्त्र और अविच्छिन्न आर्थिक विकास सम्भव नहीं हो सका । इस तरह ब्रिटिश प्रभाव ने भारतीय समाज की ऐतिहासिक प्रगति में सहायता भी दी और उसे अवरुद्ध भी किया । उन्नीसवीं शताब्दी में नये सामाजिक वर्ग अपनी अपरिहार्य प्रकृति के कारण ब्रिटिश साम्राज्यवाद से टकराये । उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद की आधार शिला ही नहीं रक्खी अपितु उसके लिये प्रेरणास्रोत भी सिद्ध हुये । उन्नीसवीं शताब्दी में इन परिवर्तनों, सुधारों तथा प्रगति से संयुक्त प्रान्त भी अछूता नहीं रहा ।

संयुक्त प्रान्त के कुमायूँ तथा गढ़वाल मंडलों में अनेक अमानवीय तथा अनैतिक प्रथायें प्रचलित थीं । इनमें कुली बेगार, कुली उतार तथा कुली बर्दायश प्रमुख थे । इसका तात्पर्य बिना पारिश्रमिक के जबरन श्रम से था । ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के दौरान इसका स्वरूप और विस्तृत हो गया । 1900 ई0 के लगभग जब इसके विरुद्ध जनमत तैयार होने लगा था तो इसका विस्तार कम होता गया । सुदूर ग्रामीण अंचलों में प्रधान और पटवारी ने इसे बनाये रक्खा । वरिष्ठ अधिकारियों, शिकारियों, पर्यटकों, सैनिकों तथा सर्वेक्षण दलों की यात्राओं के समय बेगार तथा उतार का मिला जुला स्वरूप दृष्टिगोचर होता था किन्तु पटवारी, तहसीलदार, रैंजर, वन रक्षक, चपरासी तथा मध्यम और छोटी श्रेणी के अधिकारी निजी अथवा पारिवारिक सुविधा के लिये बेगार का प्रयोग करते थे । कई बार वरिष्ठ अधिकारियों के छोटे छोटे काम जैसे लकड़ी फाड़ना, पानी भरना तथा बरतन साफ करना आदि भी बेगार के अन्तर्गत करा लिये जाते थे ।[1]

1- किताब याददास्त मालगुजारी बाबत : 1884-93

बेगार विरोधी आन्दोलन जब तेज रुख अपनाने लगा तो बेगार को उतार की प्रथा का गैर कानूनी दुरुपयोग कहा जाने लगा किन्तु उसका अस्तित्व पूर्ववत रहा । बेगार विरोधी आन्दोलन तेज होने पर बेगार की अपेक्षा उतार का प्रयोग अधिक होने लगा किन्तु छोटे कर्मचारी 1921 तक बेगार का प्रयोग करते रहे ।[1]

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक बेगार के अन्तर्गत मार्ग, पुलों, स्कूलों, डाकबँगलों आदि का निर्माण कराया जाता रहा । लम्बे समय तक जिला बोर्ड के पुलों के लिये लकड़ी बेगार द्वारा ही मँगायी जाती रही । पुलिस घायल तथा मृतकों को ढोने और उन पर पहरा देने का कार्य भी बेगार के ही अन्तर्गत कराती थी । 1904 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने बेगार के विरोध में अपना निर्णय दिया किन्तु बेगार के नियमों में संशोधन के बाद भी इनका व्यापक कार्यान्वयन नहीं हो सका ।[2] 1891 से पूर्व उत्तराखण्ड में "हलक" बेगार के अन्तर्गत एक स्थान से दूसरे स्थान तक डाक पहुँचायी जाती थी । इसके लिये क्रमवार कुलियों को लगाया जाता था किन्तु मजदूरी नहीं दी जाती थी ।

एक अन्य प्रथा कुली उतार थी जिसका शाब्दिक अर्थ उतर कर नीचे आना है । बोझ ढोने के लिये ग्रामीण किसान पड़ावों में एकत्र होते थे इसीलिये इसे उतार कहा जाने लगा ।[3] बेगार से उतार केवल एक ही अर्थ में भिन्न थी कि इसमें न्यूनतम मजदूरी दी जाती थी । कुली उतार

1- जी०ए०डी० फाइल : 739/1920, उत्तर प्रदेश राजकीय अभिलेखागार, लखनऊ ।

2- इलाहाबाद ला जर्नल, 1904, पृ० 263-64

3- सुधा जोशी, कूर्मान्चल केसरी, पृ० 14

सरकारी अथवा गैर सरकारी बोझों के ढुलाई के लिये अपने मन मुताबिक मजदूरी पर किसानों को बुलाने की प्रथा थी । यह पर्वतीय क्षेत्रों के किसानों को बन्दोबस्ती इकरारनामों की कथित धाराओं के अनुसार वरिष्ठ अधिकारियों पर्यटकों तथा सैनिकों के बोझ ढुलाई अथवा अन्य सरकारी कार्यों के लिये देनी होती थी । इस ढुलान के लिये मजदूरी दिये जाने से इनकार नहीं किया जा सकता था ।[1]

उतार अथवा बेगार के दौरान कृषि मौसम, किसानों की व्यस्तता, वर्षा, गर्मी अथवा शीत का विचार नहीं किया जाता था । यह तथ्य भी भुला दिया जाता था कि कुली वृद्ध, बालक या स्त्री है । इसी के साथ बोझ, पड़ाव तथा मजदूरी भी निश्चित न थी । यह काम लेने वाले की उदारता, स्वभाव तथा कुलियों की संख्या पर निर्भर थी । इस प्रथा के विरुद्ध अभियान चलाये जाने पर पड़ाव की दूरी तथा मजदूरी निश्चित की जाने लगी थी । कुलियों के सिर पर अथवा पीठ पर भंगी का झाडू, पाट, कमोड, गोमांस कुत्ते, मुर्गी के अंडे, शराब, पियानो, डाक, बन्दूक तथा टेन्ट जैसी चीजें भी लाद दी जाती थीं । मेम, बच्चों, दाइयों तथा आयाओं को भी ढोना होता था । टोकरी में रखी मुर्गी के मर जाने अथवा अंडो के फूट जाने पर द दण्ड दिया जाता था । 1910 के पश्चात कुली उतार के दुरुपयोग पर रोक लगाने के लिए रजिस्टर रखने की व्यवस्था की गई ।[2] इन्हें पटवारी और प्रधान संचालित करते थे । 1916 के पश्चात यह प्रथा थोड़ी बदल गयी । अब उतार के लिये कुलियों की माँग करने से पूर्व वरिष्ठ अधिकारियों, पर्यटकों तथा सैनिकों को प्रति कुली एक आना कमीशन सरकारी कोष में जमा करना पड़ता था और फिर अपनी सुविधा के अनुसार निकटवर्ती गाँवों से आवश्यक संख्या में कुली मँगाये जा सकते थे । स्कूली भवनों के लिये लकड़ी जमा करना, निर्माण कार्य

1- जी०ए०डी०, फाइल : 739/1920, उत्तर प्रदेश राजकीय अभिलेखागार, लखनऊ

2- वही, 398/1913, ,,

करना, पुलों के लिये लोहा, लकड़ी ढोना तथा सैनिक तथाअसैनिक सामानों को छावनी तक अथवा अन्यत्र ले जाना इसके अपवाद रूप थे ।[1] उतार अथवा बेगार के अन्तर्गत बर्दायश द्वारा प्राप्त रसद को भी ढोना पड़ता था । कुली उतार के अन्तर्गत बैलगाड़ी का बलात प्रयोग करने का भी रिवाज था ।

कुली उतार के अन्तर्गत कुछ ऐसे विभागों एवं संस्थाओं को कुली उपलब्ध कराये जाते थे जो दौरे नहीं करते थे लेकिन जिनके यहाँ कुलियों की आवश्यकता पड़ती है थी । इनमें मुक्तेश्वर की प्रयोगशाला प्रमुख थी । इसके मुख्य अधिकारी को यह अधिकार दिया गया था कि वह कुटोली और महरूड़ी पट्टी के गाँवों से काश्तकारों को उतार के अन्तर्गत बिना जिलाधि--कारियों या तहसीलदार को लिखे सीधे मालगुजारों से ही मँगवा सकता था ।[2] वन विभाग को स्वयं उतार लेने की व्यवस्था करने का अधिकार दे दिया गया था ।

तीसरी प्रथा कुली बर्दायश थी । यह शब्द फारसी के बरदाश्त से बना है । इस शब्द का अभिप्राय बोझ उठाने से है किन्तु यह सही अर्थों में प्रयुक्त नहीं होता था । चलन में इसका अभिप्राय विभिन्न पड़ावों पर वरिष्ठ अधिकारियों, सैनिकों अथवा पर्यटकों को दी जाने वाली सामग्री से था ।[3] इसके अन्तर्गत अनाज, सब्जी, घी, दूध, दही, मुर्गा, अंडे, बकरे, पानी, लकड़ी, घास, बर्तन, नमक, मसाला, चीनी, तेल, चटाई,चारपाई तथा पुआल की व्यवस्था करनी पड़ती थी । टेण्ट लगाने, बर्तन धोने तथा लकड़ी फाड़ने का काम भी इसके अन्तर्गत कराया जाता था । इसके अतिरिक्त

1- माडर्न रिव्यू, फरवरी, 1909

2- यू0पी0 लेजिस्लेटिव काउन्सिल प्रोसिडिंग्स, 1918, पृ0 937-38

3- बैटन, गढ़वाल सेटिलमेन्ट रिपोर्ट, पृ0 29।

अनेक दूसरे काम भी लिये जाते थे । कभी-कभी कुलियों को मँगाने की तरह टेन्ट लगाने की जगह निर्धारित करने में भी मनमानी की जाती थी । कुली बर्दायश में प्राप्त सामग्रियों का मूल्य चुकाने का प्रावधान औपनिवेशिक शासन के आरम्भ से ही किया गया था किन्तु अधिकतर बर्दायश निःशुल्क तथा आवश्यकता से अधिक प्राप्त की जाती थी । कहीं-कहीं जो मूल्य दिया जाता था वह वास्तविक मूल्य से बहुत कम होता था ।[1] बर्दायश के अन्तर्गत उस सामग्री की माँग की जाती थी जो सामान्यतया उस क्षेत्र में और विशेष रूप से किसानों के पास उपलब्ध नहीं होती थी वाँछित वस्तु के न मिलने पर जुर्माना किया जाता था । जौ तथा सामान्य किस्म के अन्न की रोटी खाने वाले किसानों से गेहूँ का आटा, अच्छा चावल, दाल, मुर्गे आदि माँगना साधारण बात थी ।[2] यदा कदा पर्यटक, वरिष्ठ अधिकारियों के सहायक तथा सैनिक तमाम सामग्रियाँ बलात् भी उठा ले जाते थे ।

बर्दायश को भी उतार बेगार के साथ सभी किसानों को देना होता था । बर्दायश का एक रूप उतार से मिलता था और दूसरा बेगार से । उतार और बेगार की तरह बर्दायश देने के लिये स्थानीय काश्त--कार बंदोबस्ती इकरारनामों के अनुसार बाध्य थे ।[3] जब बर्दायश की वैधता पर प्रश्न किये जाने लगे तो इसके पक्षधरों ने इसे प्राचीन प्रथा का अवशेष और बन्दोबस्ती इकरारनामों में उल्लिखित स्थिति से जोड़ दिया । बर्दायश के साथ एक विचित्र बात भी जुड़ी हुई थी । सवर्ण किसानों से खाद्य सामग्री तथा दूध आदि लिया जाता था । शिल्पकारों से छप्पर बनाने और घास, लकड़ी एकत्र करने का काम लिया जाता था । इससे सिद्ध होता है कि

1- मार्डन रिव्यू, फरवरी, 1909

2- शक्ति, 22 फरवरी, 1921

3- जी0ए0डी0 प्रोसिडिंग्स-18, जनवरी-जून 1916, पृ0 11-12

इस प्रथा को विकसित करने में स्थानीय सवर्ण कर्मचारियों और अधिकारियों की दृष्टि और सक्रियता भी रही होगी । 1917 में किसी भी प्रकार की बर्दायश का मूल्य दिया जाना अनिवार्य करने के लिये विधेय बना । बड़े अधिकारियों से कहा गया कि अपने आधीन कर्मचारियों से नियमों का पालन सख्ती से करने को कहें ।[1] इसके बाद भी एजेन्सी लाइनों को छोड़कर बर्दायश का मूल्य नहीं दिया जाता था । सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में 1917 में भी बर्दायश का मूल्य नहीं दिया जाता था । दूध के लिये पहले से आवेदन किया जाना अनिवार्य कर दिया गया । लैंसडाउन में छावनी के सैनिक भी निकटवर्ती गाँवों में बर्दायश लेते थे । थोड़ी सी बात पर हजारों लोगों को उपस्थित होने को कहा जाता था । बर्दायश में आवश्यकता से अधिक बकरे माँग लिये जाते थे । किसानों को उनका मूल्य भी नहीं दिया जाता था । रानीगंज छावनी के पास बर्दायश की वसूली सख्ती से की जाती थी । सैनिक कभी-कभी स्थानीय लोगों, स्त्रियों तथा व्यवसायियों के अतिरिक्त तहसीलदार तक से दुर्व्यवहार कर देते थे ।[2]

टेहरी में बेगार का स्वरूप नाम और प्रकार का अन्तर छोड़कर शेष उत्तराखण्ड की तरह था । टेहरी में बेगार का बंदोबस्ती इकरारनामों से कोई सम्बन्ध नहीं था । टेहरी में बेगार और बर्दायश के लिये प्रारम्भ में क्रमशः "खेण" और "देण" नामक शब्दों का प्रयोग किया जाता था । टेहरी में 1925 में बेगार तथा उतार विरोधी कानून बने । इससे पूर्व बेगार का स्वरूप अधिक शोषक था । टेहरी में आरम्भ में "खेण" अथवा बेगार के लिये मजदूरी नहीं दी जाती थी । सामन्ती परिभाषा में

1- जी०स०डी० प्रोसिडिंग्स-26, 1917, पृ० 15

2- जी०स०डी० फाइल : 156/1907, उत्तरप्रदेश राजकीय अभिलेखागार, लखनऊ

यह प्रथा उस जमाने से प्रचलित थी जब प्रजा उत्पादन सामग्रियाँ तथा श्रम के रूप में राजा को उसका हिस्सा देती थी । राजा के पारिवारिक विवाह, यज्ञोपवीत, राजतिलक, इमारतों, सड़कों तथा पुलों के निर्माण के समय बेगार ली जाती थी ।[1] बेगार न देने पर जुर्माना लिया जाता था । छोटे कर्मचारी, लिपिक, मुहर्रिर, पटवारी, वन रक्षक, सिपाही तथा तबादले के समय प्राइमरी स्कूल के अध्यापक भी बेगार लेने के अधिकारी थे । बेगार न करने पर जुर्माना देना होता था ।

टेहरी में मालगुजारों तथा चौकीदारों के माध्यम से गाँवों में बेगार करने वाले श्रमिकों को एकत्र किया जाता था । ग्रामीणों से मुफ्त में अधिकारियों तथा कर्मचारियों का सामान ढुलवाया जाता था । इसे "गाँव बेगार" कहा जाता था । एक पड़ाव से दूसरे पड़ाव तक रियासत के बड़े अधिकारियों, अतिथियों और मित्रों की यात्रा में तथा मसूरी से टट्टुओं और खच्चरों में न आ सकने वाली इमारतों, पुलों आदि की निर्माण-सामग्री लाने में लगने वाली बेगार "मंजिल बेगार" कहलाती थी । यह व्यवस्था पटवारी तथा मालगुजार देखते थे । औपनिवेशिक प्रतिनिधि इसी के अन्तर्गत बेगार की सुविधा पाते थे । टेहरी में बड़ी बर्दायश को "प्रभु सेवा" कहा जाता था । राजा, राज परिवार के सदस्य तथा अंग्रेज अधिकारी इसके लिये अधिकृत थे ।[2] "प्रभु सेवा" के अन्तर्गत बेगार और बर्दायश अर्थात "लेण" और "देण" दोनों सम्मिलित थी । बर्दायश के अन्तर्गत रसद न लेकर लकड़ी, घास, बिछाली, दूध, छप्पर आदि लिया जाता था । प्रत्येक परिवार को वर्ष में 4बार "प्रभु सेवा" करनी होती थी । जिस क्षेत्र में अधिक दौरे नहीं होते थे वहाँ इसका प्रयोग निर्माण तथा अन्य श्रम कार्यों में किया जाता था ।

1- गढ़वाली, नवम्बर, 1913

2- मारखम, शूटिंग इन द हिमालयाज, पृ0 110

टेहरी में उतार छोटी बर्दायश के नाम से प्रचलित थी । तीव्र विरोध होने पर 1930 में नयी व्यवस्था लागू की गई जिसके अनुसार प्रभु सेवा के अतिरिक्त हर मौरूसीदार §काश्तकार§ को 5 रुपये राजस्व पर वर्ष में दो बार, 5 रुपये से 15 रुपये राजस्व पर साल में चार बार और 15 रुपये से अधिक राजस्व पर साल में 6 बार उतार देना अनिवार्य था ।[1] 15 मील तक प्रति मील तीन ॥ पैसा मजदूरी निश्चित की गई थी, 6 मील से कम यात्रा होने पर 6 मील की मजदूरी देना अनिवार्य थी । 15 मील से अधिक दूरी पर प्रति मील एक आना अधिक देना होता था और यदि रियासत के कर्मचारी या अतिथियों के अतिरिक्त किसी को कुली उपलब्ध कराये जायें तो मजदूरी डेढ़ आना प्रति मील रखी जाती थी ।[2] बोझ का सामान्य भार 30 सेर घोषित किया गया । ये नियम वहीं लागू थे जहाँ यातायात विभाग की अपनी कोई व्यवस्था नहीं थी ।[3]

" देण " के अन्तर्गत टेहरी में राज परिवार के सदस्यों, अधिकारियों, कर्मचारियों तथा उनके घोड़ों के लिये भोजन, अन्न, चारा तथा अन्य पूरक सामग्री ली जाती थी । प्रजा को क्रम से दही, दूध, घी, मक्खन, मावा आदि सुबह-शाम दरबार में देना पड़ता था । इसे "पाला" कहा जाता था । बेगार की तरह "देण" §बर्दायश§ भी दोहरी थी । पहली राजा उसके परिवार के सदस्यों तथा अंग्रेज अधिकारियों के लिये तथा दूसरी रियासत के विभिन्न कर्मचारियों के लिये ।[4]

1- नियम प्रभुसेवा व कुली उतार, टिहरी गढ़वाल स्टेट : 1930, पृ03-4
2- वही, पृ04-5
3- वही, पृ0 5
4- यात्रा-व्यय नियम, टिहरी गढ़वाल स्टेट : 1930, पृ017

बेगार कुछ वर्गों पर कम और कुछ पर अधिक केन्द्रित थी परन्तु समान्यतया उत्तराखण्ड की कृषि से जुड़ी 90 प्रतिशत जनसंख्या बेगार देने को बाध्य थी । ब्राह्मणों के गाँव बेगार से मुक्त थे[1]। इस प्रकार से कुछ भूमिहीनों तथा नौकरी पेशा वर्ग को छोड़कर शेष सभी या तो बेगार देते थे अथवा बेगार की वैकल्पिक व्यवस्था करते थे ।

उन्नीसवीं शताब्दी में उत्तर प्रदेश शिक्षा की दृष्टि से काफी पिछड़ा था । एक ओर धार्मिक संस्थायें पुरातन शैली में शिक्षा का काम संभाले हुये थीं और दूसरी ओर ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपने हितों को ध्यान में रखते हुये पुरानी व्यवस्था में आंशिक परिवर्तन करने का प्रयास कर रही थी किन्तु कुल मिलाकर उसने परम्परागत शिक्षण पद्धति में अवरोध न डालने की नीति अपनायी । 1837 में अंग्रेजी शिक्षा के लिये संयुक्त प्रान्त में पहला स्कूल बरेली में खोला गया । इसी वर्ष न्यायालय की भाषा फारसी नहीं रही तो देवनागरी तथा अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों की आवश्यकता अनुभव हुई ।[2] भारतीय भाषाओं की अवहेलना करके अंग्रेजी को महत्व देने के कारण जन सामान्य में यह भावना उत्पन्न हुई कि अंग्रेजी शिक्षा का प्रधान लक्ष्य उन्हें ईसाई बनाना है । लेफ्टिनेन्ट गवर्नर जेम्स थामसनने 1846 में दो सौ घरों के प्रत्येक ग्राम में प्राथमिक पाठशालायें खोलने का प्रस्ताव रखा । अभी तक हिन्दुओं में प्रतिष्ठित, कुलीन तथा धनवान लोगों की मदद से पाठशालायें चलती थीं तथा मुसलमानों में मकतबों तथा मदरसों के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी । हिन्दुओं में शिक्षा का माध्यम संस्कृत तथा देवनागरी तथा मुसलमानों में अरबी तथा फारसी भाषा थी । पाठशालाओं

1- स्टोवैल, मैनुअल आफ लैन्ड टेन्योर इन कुमाऊँ, पृ० 140

2- माधवी मिश्रा, उत्तरप्रदेश में शिक्षा §1858-1900§पृ014

अथवा मकतबों में कोई निर्धारित पाठ्यक्रम तथा उसका निश्चित वर्गीकरण नहीं था । मुसलमान बच्चों को इतिहास तो पढ़ाया जाता था किन्तु भूगोल तथा गणित जैसे विषयो की उपेक्षा की जाती थी । पाठशालाओं में शिक्षा लौकिक तथा धर्म निरपेक्ष होती थी किन्तु मकतब में शिक्षा प्रमुख रूप से धार्मिक होती थी । धर्म नें हिन्दुओं के जीवन में भी विशेष जगह बना ली थी । पाठशालाओं में शिक्षकों को पुरोहितों के बच्चो को धर्म पुस्तक पढ़ाने की अनुमति दी । व्यापारी वर्ग के बच्चे अपने व्यवसाय के अनुरूप शिक्षा ग्रहण करते थे । ये संस्थायें किसी स्थान विशेष पर नहीं अपितु आवश्यक सुविधाओं की उपलब्धता की दृष्टि से खोली जाती थीं । अधिकांश पाठशालाओं में शिक्षा निःशुल्क थी ।[1] कुछ संस्थायें विशुद्ध धार्मिक संस्थाओं तथा मन्दिरों से सम्बद्ध थीं जहाँ धार्मिक उपाख्यान भी होते थे । मस्जिदों से सम्बद्ध मकतबों में बच्चों को बहुधा कुरान का बिना समझे हुये अथवा बिना अरबी वर्णमाला के ज्ञान के ही सस्वर पाठ करना सिखाया जाता था ।

संयुक्त प्रान्त में मुसलमानों के प्रमुख विद्या केन्द्र दारूल उलूम देवबंद, दारूल उलूम फिरंगी महल लखनऊ, जामिया मजहरूल उलूम वाराणसी, जामिया अरमिया अमरोहा, जामिया मन्सबिया मेरठ, मदरसा अलिया रामपुर, मजाहिरूल उलूम सहारनपुर, मदरसातुल इस्लाह सरायमीर, जामिया कासिम्या मदरसा शाही मुरादाबाद, जामिया नबीमिया लखनऊ, सुल्तानुल मदारिस लखनऊ, नदवतुल औलेमा लखनऊ, मदरसा मंजरूल इस्लाम बरेली तथा मऊनाथ भंजन थे ।[2] ग्राम्य पाठशालाओं से भिन्न भी कुछ शिक्षण संस्थायें थी ।

1- बी०डी० बसु, हिस्ट्री आफ एजूकेशन अंडर ईस्ट इंडिया कम्पनी, पृ05।

2- जियाउद्दीन, भारत में इस्लामी शिक्षा के केन्द्र, पृ01।

ये मुख्यतः व्यवसाय सम्बन्धी बाजार, सर्राफी तथा महाजनी संस्थायें थी। इनमें व्यवसाय से सम्बन्धित शिक्षा व्यापारियों के बच्चों को दी जाती थी। इनमें मुड़िया एवं कैथी लिपि में मौखिक तथा व्यावहारिक गणित की शिक्षा दी जाती थी। 1823 में गंगाधर शास्त्री की आर्थिक सहायता से आगरा में एक महाविद्यालय खोला गया। जेम्स थामसन के प्रयास से 1850 में बरेली, आगरा, शाहजहाँपुर, मथुरा, मैनपुरी, फर्रुखाबाद, अलीगढ़ तथा इटावा में प्राथमिक स्कूल खोले गये। 1854 में रुड़की में थामसन इंजी--नियरिंग कालेज की स्थापना की गई। 1851 के पश्चात तहसीली तथा हल्काबंदी स्कूल स्थापित हुये। 1872 में म्यूनिसिपिल स्कूल खोले गये। ये स्कूल जनसामान्य के लिये अधिक लाभप्रद न सिद्ध होने पर 1874 में भारतीय भाषा विद्यालय § वर्नाक्यूलर स्कूल§ खोले गये। इनका उद्देश्य हिन्दी तथा उर्दू के माध्यम से उच्चस्तरीय शिक्षा प्रदान करना था। जनभाषाओं में पुस्तकों के अभाव के कारण ये स्कूल शिक्षा के प्रसार में सहायक नहीं हो पा रहे थे। 1872 में इलाहाबाद में म्योर सेन्ट्रल कालेज की स्थापना की गई। 1882 में शिक्षा आयोग का गठन किया गया किन्तु उसकी संस्तुतियाँ भी जनसामान्य को लाभान्वित नहीं कर पायीं। 23 सितम्बर, 1887 को संयुक्त प्रान्त के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर अल्फ्रेड केमिन्स लायल ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थापना की। 1892 में कानपुर में कृषि महाविद्यालय की स्थापना हुई जो कि " पत्थर कालेज " के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[1]

स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में संयुक्त प्रान्त काफी पिछड़ा था। छोटी छोटी बालिकायें पाठशालाओं में अत्यन्त निम्न कक्षाओं तक ही शिक्षा ग्रहण कर पाती थी। 1854 के बाद एच०एस०रीड, एम० कैम्पसन नामक अंग्रेज अधिकारियों तथा चिन्तामणि और कल्याण सिंह सरीखे कुछ भारतीयों ने नारी शिक्षा के लिये संयुक्त रूप से प्रयास किये। बालिकाओं के लिये

1- आर० इवान्स, गवर्नमेन्ट एजूकेशन इन इण्डिया, पृ० 26

उन्नीसवीं शताब्दी में शिक्षा प्रणाली व्यावहारिक तथा विद्यार्थियों के लिये लाभदायक नहीं थी । छात्रों को केवल पुस्तकीय ज्ञान दिया जाता था ।[1] किसी भी प्रकार का शैक्षिक प्रमाण-पत्र पाने पर वे अपनी परम्पराओं से घृणा करने लगते थे और कुछ समय तक बेकार रहने पर वे अपना आत्मविश्वास खोकर पूर्णतः दासता की मनोवृत्ति से घिर जाते थे । आर्य समाज ने भारतीय परम्पराओं पर आधारित शिक्षा पर ध्यान देकर शिक्षा का विकास करने का प्रयास किया किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में ये प्रयास आवश्यकता को पूरा करने में समर्थ नहीं थे ।

उन्नीसवीं शताब्दी में संयुक्त प्रान्त में ईसाई मिशनरियों ने अपनी जड़ें कायम कर ली थी । मिशनरी अपनी धार्मिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों के माध्यम से संयुक्त प्रान्त के जन जीवन के बहुत निकट सम्पर्क में आये । उन्होंने धर्म प्रचार तथा अन्य कार्य प्रणाली से भारतीय समाज के एकाकीपन को तोड़ा । संयुक्त प्रान्त में आगरा, मिर्जापुर, लखीमपुर खीरी, वाराणसी, पीलीभीत, शाहजहाँपुर, मुरादाबाद, गोरखपुर, गाजीपुर, सीतापुर, बदायूँ, बरेली तथा इटावा जिलों में सबसे पहले ईसाई मिशनरियों ने अपनी गतिविधियाँ आरम्भ की । उनकी गतिविधियों के कारण ईसाई, हिन्दू तथा इस्लाम धर्मावलम्बियों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई ।[2] उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ईसाई मिशनरियों ने हिन्दुओं के धार्मिक आडम्बर तथा सामाजिक कुरीतियों की निन्दा करते हुये लोगों को ईसाई धर्म स्वीकार करने के लिये प्रेरित किया । हिन्दुओं के शोषित वर्ग के कुछ

1- माधवी मिश्रा, उत्तर प्रदेश में शिक्षा § 1858-1900 §, पृ0 208

2- के0के0 दत्ता, रेनेंसा, नेशनलिज्म एण्ड चेंजेज इन माडर्न इण्डिया, पृ0 47

लोगों ने ईसाई धर्म स्वीकार करके सामाजिक तथा धार्मिक ढाँचे में नया वर्ग तैयार कर लिया जिससे हिन्दूओं की स्थिति में वाह्य तथा अन्तरिक परिवर्तन भी आया। संयुक्त प्रान्त में उच्चवर्ग के लोग मिशनरियों के प्रभाव से प्रायः अछूते रहे। जाति पाँति, कड़े सामाजिक बन्धन, सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारों के कानून, संयुक्त परिवार का बन्धन, अपना धर्म त्याग देने के प्रति सामाजिक विरुचि जैसी बातें ईसाई मिशनरियों की सफलता में बाधक बनीं। शिक्षा में सुधार, रेल-व्यवस्था, डाक-व्यवस्था तथा अस्पताल आदि खोले जाने जैसे कार्यों को जनता ईसाई धर्म के प्रसार के लिये प्रयोग में लाये जाने वाले साधनों के रूप में देखने लगी। भय, आंशका, विवशता तथा अफवाहों के वातावरण ने जनता में असन्तोष भर दिया जिसकी प्रतिक्रिया 1857 के विद्रोह के दौरान देखने को मिली।

ईसाई मिशनरियों के विचारों के प्रसार ने परम्परागत हिन्दू समाज को अपने मूल्यों का पुनरावलोकन करने के लिये प्रेरित किया। हिन्दू समाज के विचारशील लोगों में व्याप्त अशान्ति की लहर से सांस्कृतिक नव जागरण आरम्भ हुआ। अशान्ति, अनिश्चय तथा असन्तोष के बाद ज्ञान बोध, जागृति, सुधार प्रगति तथा तर्कसंगत विचारों को बढ़ावा मिला और उसकी चरम परिणति स्वतन्त्रता तथा एकता की आवश्यकता के प्रति बढ़ती हुई चेतना में हुई।[1]

उन्नीसवीं शताब्दी में संयुक्त प्रान्त सामाजिक धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था। इस समय जड़ता, निष्क्रियता, अवनति, प्रगति, सुधार तथा पुनरुत्थान का मिश्रित प्रभाव था। समाज -

---

1- एस0 नटराजन, ए सेंचुरी आफ सोशल रिफार्म इन इण्डिया, पृ0 23।

राजनीतिक घटनाओं के प्रति उदासीन था । ग्रामीण समाज हमेशा की तरह अपने आप में सिमटकर भाग्यवादी बनकर सामाजिक तथा राजनीतिक परिवर्तनों को देख रहा था । सामाजिक व्यवस्थाओं, परम्पराओं तथा प्रभावों ने कठोर तथा ठोस रूप धारण करना शुरू कर दिया था । सामाजिक कठोरता तथा असंगत सामाजिक प्रथायें उन्नीसवीं शताब्दी के संयुक्त प्रान्त की विशेषता बन गयी थी । धार्मिक कट्टरता के कारण सामाजिक कठोरता और विसंगति में वृद्धि हुई । ब्राह्मणों पर लोगों की अत्यधिक निर्भरता तथा असंगत शास्त्रविधियों पर ब्राह्मणों की निर्भरता ने धर्म को केवल मूर्तिपूजा तथा रूढ़िवादिता का प्रतिरूप बना दिया था। एकेश्वरवाद तथा सर्व खल्विन्द ब्रह्मा के सिद्धान्त वाले सर्वेश्वरवाद में विश्वास तथा आस्था रखने वाले लोग भी थे किन्तु अधिकांश लोग बलि, झाड़फूंक, जादू टोने तथा विभिन्न पूजाओं में विश्वास रखने वाले थे ।[1]

उन्नीसवीं शताब्दी में 1857 के आस पास के कुछ समय को छोड़कर संयुक्त प्रान्त में हिन्दुओं तथा मुसलमानों के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में पहले जैसा पारस्परिक सद्भाव नहीं रह गया था । मुस्लिम समाज रूढ़ियों के दायरे में सिमट गया था । अब उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक धार्मिक अंधविश्वास सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं पर छा गये थे । अज्ञानता और अंधविश्वास के मध्य ऐसी सामाजिक प्रथायें भी धार्मिक दृष्टि से मान्य प्रतीत होने लगी जो वस्तुतः हानिकारक थी । शिशु हत्या, बाल विवाह, बहु विवाह, विधवाओं को जीवित जला देना, जात पाँत, अस्पृश्यता, पर्दा प्रथा जैसी सामाजिक बुराइयों को शास्त्रोचित तथा धार्मिक क्रियाये माना जाता था ।[2] ऐसे लोगों की कमी नहीं थी तो जाति प्रथा को आर्थिक रूप से -

---

1- एस0 नटराजन, ए सेंचुरी आफ सोशल रिफार्म इन इण्डिया, पृ0248

2- आर0 चटर्जी, सोशल चेंज इन नाइनटीन्थ सेंचुरी, पृ0109

लाभकारी तथा हिन्दुओं की कला, कारीगरी, धर्म तथा नैतिकता को बनाये रखने के साधन के रूप में मानते थे । जात पाँत तथा छुआ छूत ने हिन्दू समाज को स्पष्ट रूप से स्पृश्य तथा अस्पृश्य दो वर्गों में विभाजित कर दिया था । इस कुरीति के कारण मानव जीवन के मूल अधिकारों से वंचित लोगों में क्षोभ, हीनभावना तथा निराशा भर दी थी तथा सामाजिक असमानता को चरम सीमा पर पहुँचा दिया था । पर्दा प्रथा समाज में स्त्रियों की दयनीय दशा का द्योतक थी । बाल वध अमानुषिक सामाजिक कुरीति थी जिसमें बालिका को जन्म होते ही मार डाला जाता था । मिर्जापुर, वाराणसी, जौनपुर=, गाजीपुर, बुलन्दशहर, आगरा, इटावा, इलाहाबाद, बाँदा, गोरखपुर, मैनपुरी के राजपूत तथा अहीर बहुल क्षेत्रों में यह अमानवीय प्रथा प्रचलित थी । अज्ञानपूर्ण अभिमान, निर्धनता, अंधविश्वास तथा आर्थिक कारणों से उपजी इस अपराध प्रथा में बच्चियों को मार डालने के लिये मुँह में गाय का गोबर ठूँसने, नाभि के नारे को मुँह पर लपेटकर कसने, गाय के दूध में सिर डुबो देने तथा मुँह में नमक डाल देने जैसे घृणित और बर्बर तरीके प्रयोग में लाये जाते थे ।[1]

उन्नीसवीं शताब्दी में संयुक्त प्रान्त में बाल विवाह का भी अत्यधिक चलन था । कम उम्र में माँ बन जाने के कारण अधिकांश युवतियों का स्वास्थ खराब हो जाता था । वे तमाम बीमारियों से ग्रस्त होकर प्रायः अकाल मृत्यु को भी प्राप्त हो जाती थी । बाल विवाह से बाल विधवाओं की बढ़ती संख्या से समाज में स्त्रियों की स्थिति और भी दयनीय हो गई थी ।[2] स्वार्थी तत्वों ने जिम्मेदारियों से बचने तथा सामाजिक

1- मार्गरेट कोरमैक, द हिन्दू वूमैन, पृ० 39

2- एस०एन०अग्रवाल, एज एट मैरिज इन इण्डिया, पृ० 72

दुखों से छुटकारा दिलाने के लिये सती प्रथा को भी बढ़ावा दिया ।
उन्नीसवीं शताब्दी का समाज बहु विवाह की कुरीति से भी ग्रस्त था ।
यह ax हिन्दुओं तथा मुसलमानों में समान रूप से प्रचलित थी । मुख्यतः
धनी तथा उच्च वर्ग में इसका चलन काफी था । यह कुरीति धनाभिमान,
व्यभिचार, विलासिता तथा कल्पित सामाजिक प्रतिष्ठा की द्योतक थी ।
इस कुरीति ने सामाजिक अंधविश्वास को जन्म दिया । इससे अगणित
स्त्रियों का जीवन नष्ट हो गया तथा समाज का पतन भी हुआ । इससे
अनेक सामाजिक तथा पारिवारिक समस्यायें भी विकसित हुईं । यह प्रथा
यद्यपि आम लोगों में प्रचलित नहीं थी फिर भी इससे पारिवारिक अशांति
आर्थिक कठिनाइयाँ तथा सामाजिक कुरीतियाँ बढ़ी ।

उन्नीसवीं शताब्दी में संयुक्त प्रान्त में देश के अन्य
भागों की तरह विधवाओं की स्थिति दयनीय थी । सम्पूर्ण प्रान्त में
विधवाओं के साथ व्यवहार उनकी आयु तथा अलग अलग स्थानों के अनुसार
होता था । विधवाओं को सर्वत्र अशुभ तथा अमंगलकारी समझा जाता था ।
उपेक्षा, तिरस्कार, अपमान तथा प्रतिबन्धों के कारण विधवाओं का जीवन
अत्यन्त नारकीय था । वाराणसी में धार्मिक कारणों से समूचे प्रान्त से ही
नहीं अपितु देश के अनेक भागों से विधवायें आकर रहती थीं । वहाँ वे
तमाम दुख सहकर केवल मृत्यु की प्रतीक्षा में जीती थीं । संयुक्त प्रान्त के कतिपय
पर्वतीय क्षेत्रों, आदिवासी इलाकों तथा अत्यन्त पिछड़े क्षेत्रों में अंधविश्वास
के कारण नरबलि प्रचलित थी । नरबलि की छिटपुट घटनायें होती रहती थी ।
मानसिक जड़ता तथा निष्क्रियता के कारण यह बुराई अत्यन्त सीमित दायरे
में बनी रही ।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विशेषकर 1857
के विद्रोह के पश्चात अनेक परिवर्तन हुये । राजा राम मोहन राय जैसे अग्रणी
समाज सुधारक के प्रयास से सती प्रथा जैसी अमानुषिक कुरीति के विरुद्ध

वातावरण बना ।[1] तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैन्टिंक ने अनेक सामाजिक पहलुओं पर विचार करने के बाद 4 दिसम्बर, 1829 को सती प्रथा को गैर कानूनी तथा अपराध अदालतों द्वारा सजा योग्य करार दिया । संयुक्त प्रान्त में प्रतिक्रियावादी धार्मिक लोगों ने इसका विरोध किया किन्तु 1832 में जब प्रिवी काउन्सिल ने सती प्रथा की समाप्ति के विरुद्ध अपील अस्वीकार कर दी तो रूढ़िवादियों का उत्साह ठंडा पड़ गया । अनेक समाज सुधारकों ने विधवा विवाह के पक्ष में वातावरण बनाने का प्रयास किया किन्तु संयुक्त प्रान्त की जनता ने इसमें व्यापक रुचि नहीं प्रदर्शित की । युवा विधवाओं को मौत से बचाने के बाद उनके भाग्य और भविष्य में यथासम्भव सुधार लाना आसान कार्य नहीं था । बंगाल में उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में विधवा विवाह के लिये ईश्वरचन्द्र विद्यासागर द्वारा चलाये गये अभियान का प्रभाव संयुक्त प्रान्त पर भी पड़ा । 26 जुलाई, 1856 को सरकार ने विधवा विवाह को विधि सम्मत घोषित किया तथा विवाहित विधवाओं के भविष्य में होने वाले बच्चों को वैध माना ।[2] संयुक्त प्रान्त में ईश्वर चन्द्र विद्यासागर जैसा जनमानस को उद्वेलित करने वाला समाज सुधारक नहीं था इसलिये विधवा विवाह को विशेष प्रोत्साहन नहीं मिल पाया और कानून बनने के बाद भी विधवाओं की उपेक्षा निरन्तर होती रही ।

संयुक्त प्रान्त में कतिपय समाज सुधारकों तथा अंग्रेजी शिक्षा से प्रभावित लोगों ने बाल विवाह तथा बहुविवाह के विरुद्ध जनमत तैयार करने का प्रयास किया किन्तु 1857 के विद्रोह के पश्चात उत्पन्न - परिस्थितियों में सरकार ने भारतीयों की सामाजिक धार्मिक परम्पराओं में

1- मार्गरेट कोरमैक, द हिन्दू वूमेन, पृ0 43
2- वही, पृ0 45

हस्तक्षेप न करने का जो निर्णय किया इससे इन प्रयासों को प्रोत्साहन नहीं मिल सका । इसके बाद भी सामान्य प्रयास जारी रहे । 1860 में भारतीय दण्ड विधान द्वारा 10 वर्ष की सहवास की अवस्था को बढ़ाने के लिये प्रयास किये गये । 1890 में फूलमणि की मृत्यु के पश्चात सरकार बाल विवाह निषेध पर गम्भीरता से विचार करने के लिये विवश हो गयी और 1891 में भारतीय दण्ड विधान में संशोधन करते हुये दाम्पत्य सम्बन्ध की न्यूनतम अवस्था 10वर्ष से बढ़ाकर 12 वर्ष कर दी गयी । बहु विवाह को नियन्त्रित करने की दृष्टि से संयुक्त प्रान्त में स्थिति का अवलोकन करने के लिये सरकार ने एक समिति बनायी जिसमें 2 अंग्रेज तथा 4 हिन्दू थे । समिति ने अपरिहार्य कारणों से बहु विवाह के खिलाफ जनमत तैयार करने में सरकार द्वारा सहयोग करने की आवश्यकता पर तो बल दिया परन्तु किसी भी प्रकार का कानून बनाने की आवश्यकता अनुभव नहीं की ।[1]

संयुक्त प्रान्त के देहरादून जिले के जौनसार बावर में कांगड़ा, तिब्बत तथा सिक्किम की तरह बहुपतित्व की प्रथा प्रचलित थी । उन्नीसवीं शताब्दी में इसके विरुद्ध आवाज उठाई गई । समाज सुधारकों ने इसे स्त्री जाति का अपमान तथा अन्यायकारक बताया किन्तु इसके समर्थकों ने उनका सदैव विरोध किया । प्रान्त के एक छोटे से क्षेत्र में प्रचलित इस प्रथा को सरकार ने गम्भीरता से नहीं लिया । यह अपेक्षा की जाती रही कि शिक्षा तथा सभ्यता के विकास के साथ ही बहुपतित्व जैसी कुरीति स्वतः समाप्त हो जायेगी ।[2]

1- पी० एम० मालाबारी, इनफैन्ट मैरिज एण्ड एन्फोर्स्ड विडोहुड इन इण्डिया, पृ० 63

2- आर० चटर्जी, सोशल चेंज इन नाइनटीन्थ सेंचुरी, पृ० 113

असम, मद्रास, उड़ीसा, बिहार तथा देश के कुछ अन्य भागों की तरह संयुक्त प्रान्त के पर्वतीय तथा आदिवासी बहुल क्षेत्रों में प्रचलित नरबलि को समाप्त करने के लिये सरकार तथा समाज सुधारकों द्वारा xx सम्मिलित प्रयास किये गये। जिन स्थानों पर नर बलि का चलन था वहाँ के लोगों को मानव की जगह पशु बलि देने को कहा गया। लार्ड डलहौजी ने अपने शासन काल में इस अमानुषिक तथा बर्बर कुरीति को समाप्त करने के लिये विशेष प्रयास किये। संयुक्त प्रान्त में मैनपुरी के मैजिस्ट्रेट चार्ल्स रेक ने इस कार्य में अग्रणी भूमिका निभाई। उसने चौहान राजपूतों तथा अहीरों की एक प्रजाति पर कड़ी नजर रखने के आदेश दिये। नर बलि को समाप्त करने के इसी क्रम में बालिका वध को रोकने के उद्देश्य से बालिका के जन्म की सूचना पुलिस को देनी अनिवार्य कर दी गयी। एक माह बाद उसके स्वास्थ्य की सूचना भी देनी होती थी। बालिका की मृत्यु की स्थिति में उसका शव जाँच के लिये सिविल सर्जन को सौंपना होता था। इंग्लैण्ड में कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने रेक के कार्यों की प्रशंसा की और इस दिशा में सरकार को आवश्यक निर्देश दिये किन्तु उत्तर प्र पश्चिम प्रान्त के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर जेम्स थामसन पुलिस अथवा नजर रखने वाले व्यक्तियों की प्रणाली के पक्ष में नहीं थे। उनका विचार था कि इस अपराधवृत्ति को दबाने अथवा समाप्त करने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि सामाजिक संस्थाओं तथा प्रथाओं को सुधारा जाये।[1]

संयुक्त प्रान्त में राजपूतों में बाल-वध का एक प्रमुख कारण विवाहों पर आने वाला भारी खर्च था। प्रान्तीय सरकार ने इस प्रथा के उन्मूलन के लिये अनेक कदम उठाये। इसी के अन्तर्गत आगरा के मण्डलायुक्त डब्लू० एच० टाइलर ने दिसम्बर 1851 में इटावा, फर्रुखाबाद, बदायूँ तथा

1- पी०एन०चोपड़ा, बी०एन०पुरी व एम०एन०दास,
भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक इतिहास, पृ० 136

मैनपुरी के राजपूत सरदारों की बैठक बुलाई । विवाह खर्च कम करने के लिये इस बैठक में समझौता हुआ जिस पर 360 राजपूत सरदारों तथा ग्राम प्रमुखों ने हस्ताक्षर किये । प्रत्येक ने वचन दिया कि वे इस अच्छे काम में सरकार की मदद करेंगे ।[1] मिर्जापुर, बुलन्दशहर, लखीमपुर खीरी, मेरठ, जौनपुर, गोरखपुर, हरदोई, हमीरपुर, जालौन, मुरादाबाद तथा बरेली आदि जिलों के राजपूत बहुल क्षेत्रों में सरकारी प्रतिनिधियों ने प्रतिष्ठित क्षत्रिय परिवारों से सम्पर्क करके उनसे इसमें सहयोग करने का अनुरोध किया ।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सम्पूर्ण भारत में आरम्भ सामाजिक सुधार आन्दोलनों के प्रभाव से संयुक्त प्रान्त भी अछूता नहीं रहा । ब्रह्म समाज के प्रणेता राजा राम मोहन राय ने धार्मिक क्षेत्र में उस विश्व व्यापी आन्तरिक, आध्यात्मिक संश्लेषण की ओर आकृष्ट किया जो बेकार की रीतियों के वाह्य रूपों से सर्वथा भिन्न था । उन्होंने बहुदेववाद, मूर्तिपूजा, धार्मिक क्रियाओं तथा अन्ध विश्वास पर आधारित रीतियों के विरुद्ध संघर्ष किया । उन्होंने अनेक सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध आवाज बुलन्द की और पाश्चात्य शिक्षा पद्धति पर भी बल दिया ।[2] संयुक्त प्रान्त के अनेक प्रमुख नगरों में बंगालियों की संख्या काफी थी इसलिये ब्रह्म समाज का प्रभाव पड़ते देर नहीं लगी ।

संयुक्त प्रान्त में रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानंद के अनुयायियों की कमी नहीं थी । विवेकानन्द ने बौद्धिक जड़ता के दौर में आध्यात्मिक चेतना का सन्देश दिया । उनका यह सन्देश भारतीय जन मानस को उद्वेलित करने में सहायक सिद्ध हुआ । विवेकानन्द ने जन सामान्य के मन से

1- पी0एन0चोपड़ा, बी0एन0पुरी व एम0एन0दास,
" भारत का सामाजिक,सांस्कृतिक व आर्थिक इतिहास, पृ0 137

2- एम0सी0 पारिख, ब्रह्म समाज, पृ0 168

हीन भावना, भय, उदासीनता तथा जड़ता को समाप्त करने की चेष्टा की ।
निर्धनता तथा पराधीनता के दुर्दशापूर्ण दिनों में भारतीय जन जीवन में
अनेक कुरीतियाँ व्याप्त थीं । विवेकानन्द ने वेदान्त के आध्यात्मवाद के
सन्देश को जन जन तक पहुँचाने, विभिन्न धर्मों तथा सम्प्रदायों के बीच
समन्वय और सद्भाव स्थापित करने तथा मानव सेवा को ईश्वर सेवा के समान
समझने जैसे कार्यों को रामकृष्ण मिशन का लक्ष्य निर्धारित किया । संयुक्त
प्रान्त में राम कृष्ण मिशन की अनेक इकाइयाँ स्थापित की गईं । स्वामी
विवेकानन्द ने नैतिक राष्ट्रवाद का नव सृजन किया, विस्मृत आध्यात्मवाद
को पुनरुज्जीवित किया तथा राजनीतिक देश भक्ति का मार्ग परोक्ष रूप से
प्रशस्त किया । प्रार्थना समाज की स्थापना यद्यपि महाराष्ट्र में केशवचन्द्र
सेन तथा महादेव गोविन्द रानडे के प्रभाव से हुई थी किन्तु इसका प्रभाव संयुक्त प्रान्त
में भी पड़ा । हिन्दुओं की सामाजिक, धार्मिक नीतियों को तर्कसंगत बनाने,
रूढ़िवादी समाज का दृष्टिकोण बदलने तथा अभिनव सामाजिक तथा शैक्षणिक
कार्यक्रम आरम्भ करके प्रार्थना समाज ने सामाजिक तथा धार्मिक सुधार का पुनीत
कार्य किया ।[1]

उत्तर भारत और विशेषकर संयुक्त प्रान्त को सर्वाधिक
आर्य समाज ने प्रभावित किया । आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द
सरस्वती थी । आर्य समाज आन्दोलन एक प्रकार से पाश्चात्य आदर्शों और
ईसाई प्रभावों के तेजी से भारत पर छा जाने के विरुद्ध प्रतिक्रिया थी ।
आन्तरिक रूप से यह एक हिन्दू पुनरुत्थान था। आर्य समाज में जन्मजात जातपाँत,
मानवीय विषमता तथा स्त्री और पुरुषों में ब्र असमानता को स्थान नहीं था ।

1- सी0एच0 हेमसत, इन्डियन नेशनलिज्म एण्ड हिन्दू सोशल रिफार्म,
पृ0 103

1875 में बम्बई में स्थापित आर्य समाज केवल दो दशकों में ही सम्पूर्ण उत्तर भारत में छा गया । मध्यम और निम्न मध्यम वर्ग के हिन्दुओं में इसका प्रभाव सर्वाधिक था । आध्यात्मिक और नैतिक जीवन के सम्बन्ध में आर्य समाज का नारा था " वेदों की ओर लौटो " । वेदों की तर्क संगत बातों और आदर्शों ने बुद्धिजीवियों को भी अपनी ओर आकर्षित किया । आर्य समाज ने सशक्त और दूरगामी परिणाम वाला कार्यक्रम बनाया । प्राचीन आर्य पद्धति की शिक्षा फिर से आरम्भ करने और उसे प्रोत्साहन देने के लिये आर्य समाज ने वैदिक काल के ढंग की शैक्षणिक संस्था गुरुकुल स्थापित किये । इनमें सर्वाधिक विख्यात संयुक्त प्रान्त में हरिद्वार के निकट गुरुकुल कांगड़ी था ।[1] गुरुकुलों में शिक्षा के साथ चरित्र निर्माण, सेवा और निष्ठा पर विशेष बल दिया गया । संयुक्त प्रान्त में लगभग सभी नगरों में आर्य समाज ने शिक्षण संस्थाओं, वाचनालय, पुस्तकालय तथा सेवा स्थलों की स्थापना की । कानपुर, बरेली, शाहजहाँपुर, आगरा, वाराणसी, लखनऊ, इलाहाबाद, मुरादाबाद, गोरखपुर, मेरठ तथा सहारनपुर आर्य समाज के प्रमुख केन्द्र बने । आर्य समाज ने अनाथों, विधवाओं तथा असहायों के लिये आश्रम बनवाये । आर्य समाज ने ब्राह्मणों द्वारा निर्देशित रीति रिवाजों, मूर्ति पूजा तथा अंधविश्वास पर आधारित कुप्रथाओं की निन्दा की । आर्य समाज ने हिन्दुओं की शक्ति को अक्षुण्ण रखने के लिये गैर हिन्दुओं को हिन्दू बनाने तथा दूसरा धर्म ग्रहण कर लेने वाले हिन्दुओं की पुनः वापसी के लिये श शुद्धि आन्दोलन चलाया जो बहुत लोकप्रिय हुआ । आर्य समाज के अकेले शुद्धि आन्दोलन ने ही ब्रिटिश सरकार तथा विधर्मियों को हिला कर रख दिया । आर्य समाज ने अस्पृश्यता को समाप्त कर अछूतों को सवर्णों की तरह के सामाजिक अधिकार दिलाने के प्रयास किये । स्त्री

1- पी0सी0 कुलकर्णी, ए हिस्ट्री आफ द आर्य समाज, पृ0 69

शिक्षा तथा विधवा विवाह पर आर्य समाज ने विशेष बल दिया । आर्य समाज के कतिपय विवादास्पद कार्यों के कारण साम्प्रदायिक भेद भाव भी तीव्र हुये तथा पारस्परिक वैमनस्य बढ़ा ।[1]

आर्य समाज के प्रचारकों ने हिन्दू धर्म की तुलना में अन्य धर्मों की कड़ी आलोचना की । आर्य समाज द्वारा गो रक्षा के लिये आरम्भ किया गया आन्दोलन भी विवाद का कारण बना । आर्य समाज के कतिपय जोशीले प्रचारकों तथा समर्थकों ने अतिशय आक्रामक रुख अपनाया जिससे हिन्दुओं और मुसलमानों में बढ़ता मन मुटाव और बढ़ गया ।[2] आर्य समाज ने इतिहास और परम्परा से हटकर बहुदेववाद, पुनर्जन्म तथा पाखण्ड का विरोध किया । आर्य समाज के नियम वेदों पर आधारित स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तिक विश्लेषण तथा तर्क के परिणाम थे । आर्य समाज के माध्यम से जन सामान्य में आत्मनिर्भरता और आत्म सम्मान की भावना बढ़ी और इससे बाद में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं को बहुत सहायता मिली ।

वर्ष 1875 में थियोसाफिकल सोसायटी की स्थापना न्यूयार्क में मादाम ब्लावात्सकी और कर्नल एस0एस0 आल्कट ने की थी । इसके संस्थापक ने 1882 में अड्यार §मद्रास§ में इसकी इकाई खोली और कुछ ही वर्षों में इसकी इकाइयाँ सारे भारत में फैल गयीं । भारत में थियोसाफिकल सोसायटी का प्रसार करने में श्रीमती ऐनीबेसेंट ने प्रमुख भूमिका निभायी । ऐनीबेसेंट बहुत समय तक वाराणसी में रहीं इसलिये संयुक्त प्रान्त में थियोसा--फिकल सोसायटी के क्रियाकलापों का प्रसार स्वाभाविक था । श्रीमती - ऐनीबेसेंट ने 1898 में वाराणसी में सेन्ट्रल हिन्दू कालेज की स्थापना की जहाँ

1- ताराचन्द, भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, पृ0 373

2- एस0 नटराजन, ए सेंचुरी आफ सोशल रिफार्म इन इण्डिया,पृ0273

पर हिन्दू धर्म की शिक्षा भी दी जाती थी । थियोसाफिकल सोसायटी बाल विवाह, नस्ल तथा रंगभेद विरोधी था । यह विधवाओं की स्थिति में सुधार तथा दलित वर्ग की उन्नति के लिये प्रयत्नशील था । इसकी ओर से बालकों, स्त्रियों तथा दलित वर्ग के लिये शिक्षण संस्थायें खोली गईं ।

बहुत से शिक्षित मध्यवर्गीय हिन्दुओं की रुचि थियोसाफिकल सोसायटी में बढ़ी । वे इस तथ्य से बहुत अधिक प्रभावित हुये कि इसके संस्थापक यूरोपीय होने के बाद भी हिन्दू धर्म की उन तमाम बातों का समर्थन करते हैं जिनकी पहले ईसाई मिशनरी निन्दा तथा आलोचना करते थे । थियोसफी के विश्व बन्धुत्व के सिद्धान्त ने भी सबको प्रभावित किया । थियोसाफिकल समाज ने भारतीय सभ्यता तथा आध्यात्मिक ज्ञान की श्रेष्ठता स्वीकार की तथा हिन्दू शास्त्रों के प्रकाशन और अनुवाद में मदद की । उसने दर्शन तथा आध्यात्म सम्बन्धी प्रवचनों के आयोजनों के अतिरिक्त साहित्य और अनुसंधान के क्षेत्र में विशेष कार्य करके हिन्दुओं की जागृति में मूल्यवान योगदान दिया ।

संयुक्त प्रान्त में उन्नीसवीं शताब्दी में पलटूदासी, चरणदासी तथा देव समाज सम्प्रदायों का भी आंशिक प्रभाव रहा । सतनामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक अवध के जगजीवन दास थे । राम भक्तों के सम्प्रदाय पलटूदासी के प्रवर्तक पलटूदास थे । देव समाज के प्रवर्तक शिवनारायण अग्निहोत्री थे । इस सम्प्रदाय का मुख्यालय लाहौर में था और रुड़की इसका उपकेन्द्र था । ये सभी सम्प्रदाय सामाजिक सुधारों, नैतिकता, विश्वबन्धुत्व तथा सहिष्णुता में विश्वास रखते थे ।

मुसलमानों के धार्मिक तथा सामाजिक सुधार आन्दोलनों में सबसे महत्वपूर्ण वहाबी आन्दोलन था । इस आन्दोलन के प्रणेता संयुक्त प्रान्त के रायबरेली शहर के निवासी सैयद अहमद थे । यह आन्दोलन

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में हुआ । सैयद अहमद ने संयुक्त प्रान्त में इस्लाम के ह्रास को रोकने के लिये व्यापक दौरा करके धर्म का उपदेश दिया । सैयद अहमद 1822 में मक्का मदीना चले गये और 1824 में भारत लौटे ।[1]

1889 में संयुक्त प्रान्त में अहमदिया आन्दोलन का प्रभाव रहा । इस आन्दोलन के संस्थापक मिर्जा गुलाम अहमद थे । उनका उद्देश्य आधुनिक बौद्धिक विकास के सन्दर्भ में धर्मोपदेशों तथा नियमों को उदार बनाना था । गुलाम अहमद आधुनिक पाश्चात्य के नीतिवाद के समर्थक थे । वे मध्ययुग के जेहाद के दृष्टिकोण के कट्टर विरोधी थे । उनके अनुसार इसी जेहाद की भावना ने विश्वबंधुत्व जैसे मूल धार्मिक मतों को नष्ट कर दिया था । सामाजिक क्षेत्र में अहमदिया आन्दोलन पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली का पक्षपाती था । मुसलमान अंग्रेजी भाषा के विरोधी थे तथा सरकारी स्कूलों से दूर रहते थे । अहमदिया आन्दोलन ने इस प्रवृत्ति को तोड़ा और कई स्थलों पर आधुनिक शिक्षा के केन्द्र खोले । संयुक्त प्रान्त में ऐसे शिक्षा के केन्द्र मुरादाबाद तथा रामपुर में खोले गये ।

सर सैयद अहमद का अलीगढ़ आन्दोलन भी भारतीय मुसलमानों में सामाजिक सुधारों के उद्देश्य से विकसित हुआ । इसने मुसलमानों की भौतिक समृद्धि के लिये पाश्चात्य शिक्षा पर बल दिया । 1875 में अलीगढ़ में मोहम्मडन एंग्लो ओरियन्टल कालेज खोला गया जो मुसलमान छात्रों का प्रधान आकर्षण बन गया । इस आन्दोलन ने मुस्लिम समाज में स्त्रियों की दशा सुधारने के लिये भरपूर प्रयास किया । मुस्लिम समाज पर अलीगढ़ आन्दोलन की पकड़ मजबूत हो रही थी कि अलीगढ़ मुसलमानों की राजनीतिक चेतना का केन्द्र बन गया और अन्य सुधार कार्यक्रमों की उपेक्षा होने लगी ।[2]

1- डब्लू० डब्लू हंटर, द इन्डियन मुसलमान्स, पृ० 53

2- डब्लू सी स्मिथ, मार्डन इस्लाम इन इण्डिया, पृ० 19

उन्नीसवीं शताब्दी के संयुक्त प्रान्त का समाज मध्ययुगीन व्यवस्था तथा ह उदय हो रहे नये वर्गों का मिला जुला रूप था। मुगलकाल से चला आ रहा जमींदार वर्ग उन्नीसवीं शताब्दी में काफी सशक्त हो रहा था। कृषि की उन्नति, आबादी का विस्तार करना, सरकारी राजस्व एकत्रित करके उसे राजकोष में जमा करना, शांति व्यवस्था बनाये रखने में सरकार की मदद करना तथा शासन के प्रति सदैव स्वामिभक्त बने रहना जमींदारों के प्रमुख कर्त्तव्य थे किन्तु अपने अधिकारों का दुरुपयोग तथा अमानवीय कठोरता के कारण ये किसान तथा सामान्य जनता के लिये अन्याय तथा शोषण के प्रतीक बन गये थे।[1] जमींदार निम्न जाति के कृषकों का शोषण अधिक करते थे। खुदकाश्त तथा पैकाश्त कृषकों से उनका व्यवहार भिन्न था। पैकाश्त कृषकों की अपेक्षा खुदकाश्त कृषक जमींदारों के अधिक निकट थे क्योंकि संकट के समय में वे जमींदारों के महत्वपूर्ण सहायक सिद्ध होते थे। संयुक्त प्रान्त में महालवाड़ी प्रणाली के साथ-साथ अवध में तालुकेदारी प्रथा भी थी। एक तालुकेदार के अधीन अनेक गाँव होते थे। सरकार तीस वर्ष के लिये तालुकेदार से समझौता करती थी। तालुकेदार अपने आधीन गाँव से निर्धारित लगान वसूल करके वसूली का खर्च और अपना मेहनताना काटकर सरकार को देता था।[2]

उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय किसानों की स्थिति दयनीय थी। कुटीर उद्योगों के ह्रास तथा भूमि पर बढ़ती जनसंख्या के दबाव के कारण किसानों की स्थिति में दिन प्रतिदिन गिरावट आने लगी। सरकार के उपेक्षात्मक रवैये के कारण किसान निःसहाय तथा निराश थे।

1- डी० एस० शर्मा, उन्नीसवीं शताब्दी में भारत की आर्थिक स्थिति, पृ० 88

2- चार्ल्स जेम्स, अपर लैन्ड रेवन्यू पालिसी इन नार्दर्न इण्डिया,

किसानों को लगान के अतिरिक्त जमींदारों को अनेक अमानवीय तथा अनैतिक कर देने होते थे जिनमें जल कर, वन कर, कूत, तैर, जमींदारी, अगवानी शादी §विवाह कर§, रसूम खाना, करघई §बुनकरों के करघे पर कर§, आबकारी, मत्स्य कर, राहदारी कर, पुरजोत §निवास योग्य भूमि पर लिया जाने वाला कर§, भरी §अनाज पर लगने वाला कर§, गंजकर §हाट कर§, घर दुआरी §गृहकर§ तथा कंवरी §निषादों तथा मछुआरों पर लगने वाला कर§ प्रमुख थे । किसानों में असुरक्षा की भावना सर्वोपरि थी । स्थायी बंदोबस्त में सिद्धान्ततः पुराना पट्टा तथा कबूलियत का तरीका बरकरार था जिसमें किसान को उसकी जमीन की गारंटी मिली हुई थी किन्तु जमींदार किसी न किसी बहाने से किसान को बेदखल कर देता था । 1859 में जमींदारों की मनमानी पर अंकुश लगाने के लिये रेन्ट ऐक्ट §किराया सम्बन्धी कानून§ पास किया गया जिससे किसानों को भूमि अपने पास रखने का अवसर मिल गया । इस अधिनियम में यह व्यवस्था थी कि जो किसान किरायेदार के रूप में लगातार बारह वर्षों तक जमीन जोतता है उसे वह अपने पास रख सकता है । इसके बाद न तो उसे बेदखल किया जा सकता था और न किराया बढ़ाना सम्भव था । जमींदारों ने इस व्यवस्था को भी सफल नहीं होने दिया । वे किसानों को आवंटित भूमिखण्ड को समय-समय पर बदला करते थे जिसके कारण उनकी जोतदारी निरन्तर बारह वर्षों तक नहीं हो पाती थी । जमींदारों की इस चाल को विफल करने के लिए 1885 में एक और कानून बना किन्तु जमींदार शक्ति के बल पर कानून का दुरुपयोग करने लगे । जमींदार तालुकेदार तथा लंबरदार के क्रोध से किसानों की रक्षा कानून भी नहीं कर पाता था ।[1] 1857 के विद्रोह की परिस्थितियों तथा 1860 और 1861 में पड़े भीषण दुर्भिक्ष से किसानों की हालत और भी खराब हो गयी । कड़ी मेहनत के बाद भी किसान दोनों समय के भोजन की व्यवस्था करने में सक्षम नहीं हो पाते थे ।

1- पी०एन०चोपड़ा, बी०एन०पुरी व एम०एन०दास,
भारत का सामाजिक,सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, पृ० 186

उन्नीसवीं शताब्दी में एक पूँजीपति वर्ग उभर कर सामने आया जिसमें सूदखोर, व्यापारी तथा उद्योगपति थे। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में संयुक्त प्रान्त में ग्रामीण कर्जदारी इतनी अधिक बढ़ गई कि उसने विषमतम ग्रामीण समस्या का रूप धारण कर लिया। ग्रामीण ऋणदाता साहूकार द्वारा वसूल की जाने वाली आसमान को छूने वाली ब्याज की दर ने दो प्रमुख समस्याओं को जन्म दिया। प्रथम ब्याज के भुगतान के रूप में साहूकार किसान की आय का बहुत बड़ा भाग हड़प कर जाते थे दूसरे प्रायः ऋण की वापसी में किसान की असमर्थता के फलस्वरूप बड़े पैमाने पर किसानों की भूमि हल न चलाने वाले ऋणदाता साहूकारों के हाथ में चली जाती थी। इस प्रकार किसान, साहूकार की इच्छा का पट्टेदार बन गया था और इसका परिणाम यह निकला कि कृषि और कृषक दोनों की दशा पहले से अधिक बिगड़ गयी।[1]

उद्योगों के विकास तथा शहरीकरण की तेज प्रक्रिया से खेतिहर मजदूरों का वर्ग पैदा हुआ। संयुक्त प्रान्त से खानों, चाय बागानों तथा विदेशों में मजदूर गये। निर्धनता तथा कर्ज में डूबे मजदूर ग्रामीण संस्कृति, सामाजिक परिवेश तथा पिछड़ेपन के प्रतिनिधि थे। नई आर्थिक व्यवस्था ने पुराने समाज के अवशेषों के बावजूद पूँजीवादी समाज और केन्द्रित राज्य सत्ता को जन्म दिया।

1- विपिन चन्द्र, भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास, पृ0 404

भारत में ब्रिटिश शासन के आगमन के बाद यहाँ जो नया समाज विकसित होता जा रहा था, उसकी जरूरतें पहले के पुराने समाज की जरूरतों से भिन्न थीं । उदारवादी पाश्चात्य संस्कृति में दीक्षित नये प्रबुद्ध वर्ग ने इन जरूरतों को पहचाना और सुधारवादी आन्दोलन शुरू किये । उन्हें विश्वास था कि नये समाज का राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विकास व्यक्ति स्वातंत्र्य, व्यक्ति की उन्मुक्त अभिव्यक्ति के लिये अवसर, सामाजिक समानता आदि उदारवादी सिद्धान्तों के आधार पर ही सम्भव है । इन सुधार आन्दोलनों में भारतीय जनता के जागरूक और प्रगतिशील वर्गों की, नई सामाजिक आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में पुराने धार्मिक दृष्टिकोणों के परिमार्जन और सामाजिक संस्थाओं के प्रजातंत्रीकरण की इच्छा का प्रतिफलन हुआ ।[1]

1- ए० आर० देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ० 19।

" अध्याय - चतुर्थ "

[अ] " सामाजिक-सांस्कृतिक विकास एवं पत्रकारिता "

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक भारतीय समाचार पत्र-पत्रिकाओं में अत्यधिक गतिशीलता आ गई थी । उन्होंने अपना ध्यान केवल राजनीतिक घटनाक्रमों की ओर ही नहीं किया अपितु सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक सुधारों में विशिष्ट योगदान दिया । अंधविश्वास, धार्मिक आडम्बर, कर्मकाण्ड छुआ-छूत, जाति प्रथा, बहु विवाह, बाल विवाह सती प्रथा, बेमेल विवाह, बलि प्रथा तथा मादक वस्तुओं के प्रयोग के विरूद्ध जनमत तैयार करने के लिये समाचार पत्रों ने अनवरत प्रयास करके सुधार का वातावरण बनाया और सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिये सामाजिक संगठनों तथा समाज सुधारकों से सहयोग किया । समाज सुधार आन्दोलनों के प्रचार प्रसार में समाचार पत्रों ने मूक दर्शक न बने रहकर अग्रणीय भूमिका निभाई । समाचार पत्रों के प्रयास प्रगतिशील विचारों के आत्मसातकरण के साथ ही पाश्चात्य शिक्षा, विज्ञान तथा समाज की भौतिक परिस्थितियों के सुधार के पक्षधर थे । उन्होंने सामाजिक उत्थान के लिये राष्ट्रवादी राजनीतिक दलों के रचनात्मक कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने में भरपूर सहयोग प्रदान किया । उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में संयुक्त प्रान्त के पत्र-पत्रिकाओं ने नर बलि, सती प्रथा, शिशु हत्या आदि अमानवीय कृत्यों के विरूद्ध अभियान छेड़ दिया । सती प्रथा को अमानुषिक तथा जघन्य अपराध करार देते हुये समाचार पत्रों ने विधवाओं से अच्छा व्यवहार करने तथा उन्हें समाज में उचित स्थान दिये जाने के लिये प्रयास किया । विधवाओं की दयनीय स्थिति सुधारने तथा विधवा विवाह को प्रचलित करने के लिये समाचार पत्र बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में भी प्रयासरत रहे । अनेक समाचार पत्रों ने इस बात पर असन्तोष व्यक्त किया कि 1856 में ही विधवा विवाह कानून मान्य हो जाने पर भी उसके अपेक्षित परिणाम नहीं निकले ।[1] अड़चनों के समाप्त हो जाने पर भी जनता के रूढ़िवादी विचारों में परिवर्तन न आने की दशा को समाचार पत्रों ने दुर्भाग्यपूर्ण बताया ।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारतीय स्त्रियों के साथ अंग्रेजों द्वारा बलात्कार किये जाने की अनेक घटनायें समाचार पत्रों के माध्यम से प्रकाश में आयीं ।[1] समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने ऐसी घटनाओं की कटु शब्दों में निन्दा करते हुये इसे भारतीय समाज का अपमान निरूपित किया तथा इसका विरोध करने के लिये जनता से संगठित होने की अपील की । अंग्रेज अधिकारियों व सैनिकों द्वारा भारतीय स्त्रियों के साथ अमानवीय व्यवहार किये जाने पर तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुये इलाहाबाद से प्रकाशित " कायस्थ समाचार " ने लिखा कि " अंग्रेजों द्वारा भारतीय कन्याओं के साथ बलात्कार किये जाने की घटनायें प्रायः होती रहती हैं । न्याय न पाने की उम्मीद से, पहले तो कन्याओं के माता पिता चुप होकर बैठ जाते हैं और अगर यदि किसी ने हिम्मत करके अदालत का दरवाजा खटखटाया तो वहाँ बैठा अंग्रेज जज फैसला देता है कि सब कुछ सहमति से हुआ है । अदालत में इतने गन्दे-गन्दे सवालात पूछे जाते हैं कि पहले से ही दहशत की शिकार लड़की केवल गुमसुम खड़ी रहती है ।"[2]

दक्षिण में जिस तरह देवदासियों के रूप में मन्दिरों में वेश्यावृत्ति जैसी बुराइयाँ प्रचलित थीं उसी तरह संयुक्त प्रान्त के पर्वतीय क्षेत्रों में स्वार्थी, अनैतिक तथा असामाजिक तत्वों द्वारा नायक जाति की युवतियों को वेश्यावृत्ति के लिये देश के विभिन्न भागों में ले जाने का चलन

1- मद्रास प्रान्त में वेल्लूर जिले के निकट एक ग्राम में एक स्त्री मट्ठा बेचने जाती थी, एक यूरोपियन ने उसको अकेली देखकर कामवश होकर उस परमसुशील अहिरिन से बलात्कार किया वाह ! क्या अंधेर है ?

§ कवि वचन सुधा, जनवरी, 1868 पृ0 7 §

2- कायस्थ समाचार, दिसम्बर 1901, पृ0 9

ये लोग नायक युवतियों को निश्चित समय के लिये दूसरे स्थानों पर ले जाते थे तथा निर्धारित समय के भीतर इन्हें इनके माता पिता के पास वापस ले आते थे। नायक युवतियों को अन्यत्र स्थान पर ले जाने वाले लोग पर्वतीय क्षेत्र के ही होते थे इसलिये उनका उनपर विश्वास भी था। नायक जाति के लोगों में व्याप्त अत्यधिक निर्धनता तथा अशिक्षा के कारण इस अमान--वीय कृत्यों को रोक पाना सम्भव नहीं हो पा रहा था। ज्वाला दत्त जोशी, गिरिजादत्त नैथानी, हरिराम पाण्डेय, गौरीदत्त बिष्ट तथा तारादत्त गैरोला आदि ने "गढ़वाली" तथा "अलमोड़ा अखबार" आदि समाचार पत्रों के माध्यम से इसके विरूद्ध वैचारिक अभियान आरम्भ किया। इसके परिणाम स्वरूप 1929 में प्रान्तीय सरकार को " नायक बालिका संरक्षण अधिनियम 1929 " पारित करना पड़ा जिसके अन्तर्गत नायक जाति की लड़कियों को कुमायूँ मण्डल के बाहर ले जाये जाने पर रोक लगा दी गई।[1]

समाचार पत्र एवं पत्रिकायें समय-समय पर सामाजिक कुप्रथाओं का विरोध करने के लिये जनता को संगठित होने का आह्वान करते रहते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जिलाधिकारी वार्षिक निरीक्षण करने के लिये भ्रमण किया करते थे। उन भ्रमणों में जब उनके शिविर लगते तो वे दूध, अंडे एवं माँस की माँग करते थे। अधिकारी और उनके नीचे के नौकर घूस लिये बिना किसी को साहब से मिलने तक नहीं देते थे। इन वार्षिक भ्रमणों के विषय में हिन्दी पत्रकारिता ने अभियान चलाया। " आर्य दर्पण " के अनुसार जिला अधिकारी केवल मजे लेने के लिये ही वार्षिक भ्रमण करते थे और जनता की वास्तविक स्थिति की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते थे।[2] अंग्रेजों की जाति एवं रंग भेद की नीति के

1- द यूनाइटेड प्राविन्सेज़ कोड, वाल्यूम 3, पृ0 3

2- आर्य दर्पण, सितम्बर, 1888, " रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, एन0डब्लू0पी0 1888" पृ0 703

विरुद्ध भी हिन्दी पत्रों ने सिंहनाद किया । अंग्रेज किसी भी हिन्दू मन्दिर में या मस्जिद में जूते पहने ही घुस जाते थे और यदि मन्दिर के पुजारी या मस्जिद के मौलवी उनको जूते उतारने के लिये कहते तो उन्हें पीटा जाता और कभी तो उन्हें गोली का शिकार भी होना पड़ता था । यदि कोई भारतीय अंग्रेजों को सलाम न करे तो उसकी पिटाई तो स्वाभाविक ही थी, साथ ही उसे कुत्ता, काला और हब्शी जैसे शब्दों से सम्बोधित किया जाता था ।[1]

यदि कोई भारतीय किसी अंग्रेज अधिकारी के सम्मुख जाता तो उसे अनिवार्य रूप से जूते उतारने पड़ते थे । यद्यपि 1867 में यह प्रथा एक सरकारी आदेशानुसार रद्द हो चुकी थी परन्तु यह आदेश केवल कागज पर ही था ।[2] "मेरठ गजट" के अनुसार चीफ कमिश्नर ने एक आदेश दिया कि यदि कोई भारतीय उनसे मिलना चाहे तो वह जूता उतारकर ही मिल सकता है ।[3] भारतीय कर्मचारियों तथा अंग्रेज अधिकारियों के वेतन में बहुत अधिक अन्तर होता था इस कारण भारतीय कर्मचारियों में असंतोष था । समाचार पत्रों ने अंग्रेज अधिकारियों को बहुत अधिक वेतन दिये जाने की कटु शब्दों में आलोचना की ।[4]

1- "होम डिपार्टमेन्ट, जुडिशियल प्रोसिडिंग्स" जून, 1878, न०81 §बी§

2- "होम डिपार्टमेन्ट पब्लिक प्रोसिडिंग्स", 4 अप्रैल 1867, न०23

3- "मेरठ गजट" 25 मार्च 1871 "रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, एन०डब्लू०पी० 1871, पृ० 142

4- " अंग्रेज अधिकारियों को अधिक वेतन दिये जाने से एक और राज्य पर वित्तीय भार बढ़ता है और अल्प वेतनभोगी भारतीय अधिकारियों की कार्यक्षमता पर भी इसका असर पड़ता है । अंग्रेज अधिकारी जो अपने देश में 4-5 हजार रुपये प्रतिवर्ष नहीं कमा पाते थे वे भारत में इतना प्रतिमाह कमा लेते हैं ।"

§ अल्मोड़ा अखबार, 30 अक्टूबर, 1882, पृ० 3 §

उत्तराखण्ड में उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में कुली बेगार[1], कुली उतार[2], कुली बरदायश[3], आदि घृणित और निन्दनीय प्रथायें प्रचलित थीं । ये प्रथायें बंधुवा मजदूरी तथा गुलामी की

1- कुली बेगार का शाब्दिक अर्थ बिना मजदूरी के जबरन श्रम से था । यह प्रथा उत्तराखण्ड में ही नहीं अपितु देश के अनेक अंचलों में प्रचलित थी । ब्रिटिश शासन काल में छोटे दर्जे के अधिकारी और कर्मचारी निजी पारिवारिक कार्यों के लिये बेगार का प्रयोग करते थे ।

2- कुली उतार का शाब्दिक अर्थ उतर कर नीचे आना है । बोझा ढुलाने हेतु ग्रामीण काश्तकार पड़ावों में इकट्ठा होते थे इसी लिये इसे उतार कहा जाने लगा । उतार और बेगार में मात्र इतना अन्तर था कि उतार में एक निश्चित न्यूनतम मजदूरी दी जाती थी । इस प्रकार कुली उतार सरकारी या गैर सरकारी बोझों की ढुलाई हेतु जबरन न्यूनतम मजदूरी पर बुलावे का नाम था ।

3- कुली बर्दायश का अभिप्राय बोझ उठाने से है लेकिन यह इस अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता था । इसका वास्तविक अभिप्राय विभिन्न पड़ावों पर साहबों, सैनिकों और सैलानियों या उनके दलों को दी जाने वाली सामग्री से था । बर्दायश को भी उतार और बेगार के साथ सभी काश्तकारों को देना पड़ता था । इसके अन्तर्गत सवर्ण काश्तकारों से खाद्य-सामग्री ली जाती थी तथा शिल्पकारों आदि से छप्पर बनाने का और लकड़ी घास आदि इकट्ठी करने का काम कराया जाता था ।

{ कुली-बेगार, कुली-उतार तथा कुली-बर्दायश के लिये सामान्यतः कुली-बेगार सम्बोधन का ही प्रयोग किया जाता था }

प्रतीक थीं । जनमानस में इन प्रथाओं के विरोध में व्यापक आक्रोश था किन्तु उन्हें सुयोग्य नेतृत्व तथा सशक्त प्रचार माध्यम की आवश्यकता थी । 1868 से पूर्व उत्तराखण्ड में भारतीय भाषा का कोई स्थानीय पत्र नहीं था । जब पत्रों का प्रकाशन आरम्भ हुआ तो वे अपने प्रारम्भिक काल में सरकार समर्थक रहे । उस समय समाचार के रूप में इन तमाम अमानवीय प्रथाओं के सम्बन्ध में समाचार प्रकाशित होने लगे किन्तु इनका उद्देश्य सरकार का विरोध करना नहीं था । इन समाचारों से बेगार के स्वरूप, कुलियों की दशा, उनके साथ पर्यटकों तथा प्रधान पटवारियों का व्यवहार तथा कुलियों की दयनीय अवस्था के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है किन्तु इनसे इन प्रथाओं के संगठित विरोध का संकेत तक नहीं मिलता । 1871 में "अल्मोड़ा अख़बार" के प्रकाशन के साथ ही इस क्षेत्र में जागृति आने लगी । इस दौरान ज्वालादत्त जोशी, हरिराम पाण्डेय, बद्रीदत्त जोशी, वाचस्पति पंत, सदानन्द सन्वाल तथा तारादत्त गैरोला जैसे प्रखर पत्रकार एवं समाज सेवियों ने समाचार पत्रों में इन प्रथाओं के विरूद्ध लिखा तो प्रायः सरकारी अधिकारियों एवं कर्मचारियों से स्पष्टीकरण माँगे गये । प्रखर पत्रकारों तथा अग्रणी समाज सेवियों के पास इन प्रथाओं का भोगा हुआ यथार्थ तो नहीं था किन्तु वे स्थिति से अनभिज्ञ भी नहीं थे । इन परिस्थितियों में ये पत्र इन प्रथाओं के विरोध के लिये जनता से आह्वान करने की स्थिति में नहीं थे । बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में "गढ़वाल समाचार" तथा "गढ़वाली" ने सुदूर पर्वतीय क्षेत्रों में शोषण की घटनाओं के समाचार को प्रकाशित कर समाज में समाचार पत्रों की भूमिका को पहले से अधिक अर्थवान एवं जनमुखी बनाया । इन समाचार पत्रों के प्रभाव से बेगार सम्बन्धी प्रश्न प्रान्तीय परिषद तथा गवर्नर जर्नरल की परिषद में कई बार पूछे गये । यह क्रम उन्नीस सौ तक जारी रहा । पर्वतीय क्षेत्र के समाचार पत्रों ने उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में बेगार विरोधी सभाओं को प्रमुखता से प्रकाशित किया तथा यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि यह प्रथायें नियम विरूद्ध ही नहीं अपितु अनैतिक एवं अमानवीय भी हैं ।[1]

1- बद्रीदत्त पाण्डेय, कुमाऊँ का इतिहास, पृ0 500

1909 में इलाहाबाद से प्रकाशित "मार्डन रिव्यू" नामक मासिकपत्र में उत्तराखण्ड में बेगार सम्बन्धी एक विस्तृत तथा महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ ।[1] इससे पूर्व पर्वतीय क्षेत्र में "गढ़वाली समाचार" तथा "समय विनोद" जैसे पत्रों ने इन अमानवीय प्रथाओं के विरुद्ध चलाये जा रहे अभियान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाना आरम्भ कर दिया था । "अलमोड़ा अखबार" ने 15 जुलाई, 1874 को बेगार सम्बन्धी कुप्रथा से उत्पन्न कठिनाइयों का उल्लेख करते हुये सरकार से इसे समाप्त करने का आग्रह किया ।[2] 3 सितम्बर 1876 में " समय विनोद " समाचार पत्र में स्पष्ट रूप से ब्रिटिश शासन पर भारतीयों को अपमानित करने पीटने तथा न्यायालयों में पक्षपात करने का आरोप लगाया गया था । पत्र ने लिखा कि कठोर यवनों के शासन काल में भारतीयों का जो स्वाभिमान शेष रह गया था वह फिरंगियों द्वारा समाप्त किया जा रहा है ।[3] "अलमोड़ा अखबार ने 15 अप्रैल 1878 को लिखा कि ब्रिटिश शासन जानबूझ कर पर्वतीय क्षेत्रों की उपेक्षा कर रहा है । उसने सरकार समर्थक पत्र "पायनियर" द्वारा देशी भाषाओं के पत्रों के सम्बन्ध में निन्दात्मक टिप्पणियों के लिये उसकी निन्दा की ।[4]

बेगार को असुविधा और संकट का सबसे बड़ा कारण बताते हुये " अलमोड़ा अखबार " ने अपने 22 सितम्बर, 1884 के अंक में इसे ब्रिटिश साम्राज्य के लिये अहितकर बताया था ।[5] 6 नवम्बर 1884 के "रुहेलखण्ड" तथा "कुमाऊँ गजट" में प्रकाशित उस टिप्पणी का विरोध "अलमोड़ा अखबार" ने अपने 22 नवम्बर 1884 के अंक में किया था ।

1- श्रीकृष्ण जोशी द्वारा हेमवत उपनाम से "मार्डन रिव्यू" में प्रकाशित लेख,
2- वर्नाक्यूलर प्रेस रिपोर्ट, 1874 पृ0 283-84
3- वही, 1876 पृ0 462-63
4- वही, 1878 पृ01802-03
5- वही, 1884बी,पृ0 672

जिसमें कहा गया था कि नैनीताल में कुलियों को मजदूरी अधिक मिलती है अन्यत्र कम । अतः नैनीताल में भी मजदूरी कम होनी चाहिये । "अलमोड़ा अखबार" ने इस तरह की गलत बात लिखने वाले पत्रों पर प्रशासन को निर्भर न रहने की सलाह दी थी ।[1] ।। अक्टूबर 1886 को "अलमोड़ा अखबार" ने लिखा कि बेगार से कुमाऊँ के किसानों को बहुत असुविधा है । फसल के मौसम में उन्हें बुलाया जाता है और कई बार तो उन्हें निर्धारित दिन से एक दिन पहले ही तहसील में उपस्थित होना पड़ता है । वायसराय के दौरे के समय लोगों को खूब सताया गया किन्तु किसानों की स्थिति जानने का कोई प्रयास नहीं किया गया ।[2]

अलमोड़ा अखबार " ने 17जनवरी 1887 को मेहल चौड़ी के ड्याली को दिये गये उस लाइसेन्स को रद्द कर देने का निवेदन किया जिसके अन्तर्गत वह बेगार बरदायश की व्यवस्था के नाम पर कुली, घोड़े तथा इन्सानों पर कर लेता था । "अलमोड़ा अखबार" ने राजस्व के 5 प्रतिशत के बराबर लगने वाले पटवारी सैस और आर्म्स ऐक्ट को कुमाऊँ में लागू करने का विरोध किया था ।[3] 23 नवम्बर 1891 को "अलमोड़ा अखबार" ने लिखा कि सरकारी अधिकारियों के दौरों के समय लोगों की वास्तविक स्थिति जानने की कोशिश की जानी चाहिये किन्तु इसके विपरीत लोगों को परेशान किया जाता है । जिन अधिकारियों को पर्याप्त वेतन मिलता है वे भी बरदायश-बेगार लेने से बाज नहीं आते । निर्धन किसानों से जो कुछ माँगा जाता है उसका मूल्य नहीं चुकाया जाता है ।[4] "अलमोड़ा अखबार"

1- वर्नाक्यूलर प्रेस रिपोर्ट, 1884 की, पृ0 826
2- वही, 1886, पृ0 775
3- वही, 1891, पृ0 429
4- वही, पृ0 816

ने 7 नवम्बर 1892 के अंक में गढ़वाल में अकाल के दौरान ली जाने वाली बेगार का विरोध करते हुये लिखा कि रुपये का 5,6 सेर अनाज किसान स्वयं खरीद रहे हैं किन्तु दौरे के समय अधिकारीगण रुपये का 14,15 सेर अनाज लेते हैं और कुलियों को न्यूनतम मजदूरी देते हैं ।[1] अगस्त 1893 में "अलमोड़ा अखबार" ने अंग्रेजों द्वारा स्थानीय लोगों को घोड़े से जबरन उतार देने की घटना पर विरोध प्रकट करते हुये एक प्रखर टिप्पणी में लिखा कि अंग्रेज जब दुकानदार बनकर हिन्दुस्तान आये थे तो जनताकाआदर करते थे किन्तु सत्ता मिलने के बाद उनका काम केवल दमन करना ही रह गया ।[2]

19 जून 1895 के अंक में "हिन्दुस्तानी" नामक पत्र ने बेगार को पुलिस दमन की तरह बताया था और "अलमोड़ा अखबार" में टैक्सों की भरमार का विरोध करते हुये लिखा था कि आज हमारे शरीर के हर अंग पर कर लग गये हैं ।[3] "अनीस-ए-हिन्द" ने 18 जुलाई 1895 को लिखा कि जमींदार भी खूब बेगार लेते हैं और जनता के पास विरोध करने की शक्ति नहीं है । "बुन्देलखण्ड पंच " ने बेगार को पुलिस दमन से भी बड़ा कहा था । "तोहफा-ए-हिन्द" ने 20 अगस्त 1895 को बेगार के अन्तर्गत होने वाले शोषण की चर्चा करते हुये लिखा कि 40,50 कुली प्रतिदिन कलेक्टर के ही कैम्प में चाहिए ।[4] " अलमोड़ा अखबार" ने लिखा कि केवल अधिकारी ही बेगार-बरदायश नहीं लेते बल्कि उनके लिपिक-चपरासी भी किसानों से निजी —

1- वर्नाक्यूलर प्रेस रिपोर्ट, 1892, पृ0 422
2- वही, 1893, पृ0 340
3- वही, 1895, पृ0 307
4- वही, पृ0 428-29

नौकरों कीभाँति काम कराते हैं । " अलमोड़ा अखबार " ने 23 मई 1896 को अँग्रेजों द्वारा भारतीयों के साथ किये जाने वाले दुर्व्यवहार पर दुख व्यक्त करते हुये इसे समाज के लिये अहितकर बताया ।[1] 10 अप्रैल 1897 को "अलमोड़ा अखबार" ने प्रान्तीय काउन्सिल में राजा रामपाल सिंह द्वारा दिये गये बेगार सम्बन्धी प्रश्नों का सन्दर्भ देते हुये इसे एक प्रकार की दासता बताया । 10 अगस्त 1897 के अंक में "विद्या विनोद " नामक पत्र ने गढ़वाल में बेगार की क्रूरताकावर्णन करते हुये लिखा था कि सरकार इसे पुराना और प्रचलित बताकर बच नहीं सकती ।[2]

" गढ़वाली " नामक पत्र ने अप्रैल 1901 में लिखा कि अधिकारियों को अपने स्वार्थ के लिये बेगार की प्रथा को जारी नहीं रखना चाहिये क्योंकि लोगों में असन्तोष बढ़ता जा रहा है । इसी पत्र ने अगस्त माह में लिखा कि जब तक अन्याय रहेगा प्रतिरोध रहेगा ।[3] "अलमोड़ा अखबार " ने 31 अक्तूबर 1901 के अंक में लेफ्टिनेंट गवर्नर के पर्वतीय क्षेत्रों के दौरे के दौरान उतार की मजदूरी तथा बरदायश का मूल्य ठीक से दिये जाने की प्रशंसा की ।[4] 13 दिसम्बर 1901 को "अलमोड़ा अखबार" ने भारत सरकार से अनुरोध किया कि बेगार प्रथा का यदि पूरी तरह उन्मूलन सम्भव न हो सके तो कम से कम यह तो सुनिश्चित ही किया जाना चाहिये कि बोझ तथा कार्य के अनुसार मजदूरी दी जाये ।[5]

1-	वर्नाक्यूलर प्रेस रिपोर्ट,	1896,	पृ0 284
2-	वही,	1897,	पृ0 558-59
3-	वही,	1908बी,	पृ0 482
4-	वही,		पृ0 810
5-	वही,	1901,	पृ0 822

अन्नाकाल, आम जनता की स्थिति तथा पटवारियों के आतंक पर विचारोत्तेजक सामग्री का प्रकाशन "गढ़वाल समाचार" के मई तथा जून 1902 के अंकों में हुआ ।[1] "अल्मोड़ा अखबार" ने अपने 21 जून, 1902 के अंक में लिखा कि पटवारी आज अधिक निर्दयी, दुर्व्यवहारी और भ्रष्ट हो गये हैं इसलिये अल्मोड़ा में पुलिस स्टेशन की स्थापना होनी चाहिये । इसी पत्र ने 31 अक्टूबर को दौरे पर जाने वाले अधिकारियों को सलाह दिया कि वे अपनी जरूरत की चीजों का माँग पत्र पहले से भेज दिया करें जिससे ये चीजें दुकानदार उपलब्ध करा सकें ।[2] फरवरी 1903 में "गढ़वाल समाचार" ने यातायात की सुविधा हेतु सड़कों के शीघ्र निर्माण की आवश्यकता पर बल दिया जिससे कि ठीक फसल के समय लैंसडाउन छावनी द्वारा काश्तकार बेगार पर आदमियों को न बुलायें ।[3]

31 दिसम्बर 1905 को "अल्मोड़ा अखबार" ने टिप्पणी किया कि इंग्लैन्ड में सरकार चाहे उदार हो या अनुदार, इससे भारत की दशा में अन्तर नहीं पड़ता है । आज समूचा शासन तहसीलदार, नायब तहसीलदार, रेन्जर, पटवारी तथा फारेस्ट गार्डों पर निर्भर है ।[4] "गढ़वाली" समाचार-पत्र ने अपने अगस्त 1906 के अंक में माँग किया कि बेगार के अन्तर्गत सरकारी गैर सरकारी कामों के लिये जाने वाले ग्रामीणों की सुविधा के लिये कोटद्वार या श्रीनगर में ट्रान्सपोर्ट डिपो की स्थापना की जाये । पत्र ने यह भी लिखा कि मजदूरी बाँटने वाले अधिकारियों या कर्मचारियों की बेईमानी के कारण मजदूरी या तो नहीं मिलती है या कम मिलती है ।[5] बेगार के

1- वर्नाक्यूलर प्रेस रिपोर्ट, 1902, पृ0 390, 407

2- वही, 1902, पृ0 417, 691-92

3- वही, 1903, पृ0 120

4- वही, 1906ए, पृ0 31

5- वही, 1906बी, पृ0 613-14

विरोध में श्रीनगर के निवासियों द्वारा डिप्टी कमिश्नर को दी गई अर्जी पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने हेतु "गढ़वाली" समाचार पत्र ने अपने अप्रैल 1907 के अंक में साग्रह अनुरोध किया है । इसी समय "अल्मोड़ा अखबार" ने बेगार के संकट को असहनीय बतलाते हुये लिखा कि यह सभ्य ब्रिटिश सरकार पर एक धब्बे की तरह है ।[1]

" गढ़वाली" मई 1907 ने तारादत्त गैरोला द्वारा प्रस्तुत इस प्रस्ताव का समर्थन किया था कि सरकार को प्रति रुपया राजस्व पर तीन पाई अतिरिक्त लेकर रसद और ढुलान की व्यवस्था करनी चाहिये । इससे बेगार रुकेगी और जरूरतमंदों को रोजगार मिलेगा ।[2] इसी वर्ष अपने 31 मई के अंक में " अल्मोड़ा अखबार " ने गढ़वाल में बेगार पर रोक लगाने हेतु कुली-उतार फण्ड की स्थापना की आवश्यकता बतायी ।[3] अक्टूबर 1908 में "गढ़वाली" ने इसी साल बरेली दरबार में दिये प्रान्तीय लाट के उस भाषण से असहमति प्रकट की जिसमें बेगार के उन्मूलन को असम्भव और अनुचित बताया गया था । पत्र द्वारा मजदूरी बढ़ाने, सड़कों को बेहतर बनाने और खच्चरो की व्यवस्था करने के साथ हर पड़ाव पर बनियाँ रखने की आवश्यकता महसूस की गयी थी ।[4] "गढ़वाली" जून 1909 तथा मई 1910 में पुनः बेगार के उन्मूलन और कुली डिपो की स्थापना पर जोर दिया था और दिसम्बर 1910 में कुली बर्दायश के नये नियम प्रकाशित किये ।[5]

1- "अल्मोड़ा अखबार", 30 अप्रैल, 1907.

2- वर्नाक्यूलर प्रेस रिपोर्ट, 1907 ए, पृ0 712

3- वही, 1907 ए, पृ0 713

4- वही, 1908 बी, पृ01044-45

5- वही, 1909 ए, पृ0 512

" गढ़वाली" ने जनवरी तथा फरवरी 1911 के अपने अंकों में क्रमशः बेगार के कष्ट बताये और गढ़वाल के बेगारियों की एक अपील प्रकाशित की जिसमें कहा गया था कि इस प्रथा द्वारा हमें काश्तकारों से बहुत अधिक हानि हो रही है। पटवारी से जब हम अपने कष्ट कहते हैं तो वह अधिक निरुत्साहित करता है। इसलिये कुली-फण्ड चले और बेगार समाप्त हो।[1] इसी पत्र ने अपने मार्च 1911 तथा जून 1912 के अंकों में क्रमशः अडवाणी में कुली-एजेन्ट रखने का स्वागत करते हुये इस व्यवस्था को और व्यापक बनाने का आग्रह किया तथा हल्द्वानी में हेवेट द्वारा दिये गये भाषण में बेगार की चर्चा न करने पर उसकी आलोचना किया।[2]

" अभ्युदय " समाचार-पत्र ने भी बेगार के उन्मूलन की माँग की तथा "लीडर" ने तारादत्त गैरोला के उस लेख को प्रकाशित किया जिसमें बेगार-बर्दायश के उन्मूलन को आवश्यक बताया गया था और अडवाणी की तरह के प्रयोग सर्वत्र किये जाने की आवश्यकता बतायी।[3] " पायनियर" 3 जुलाई 1912 में प्रकाशित उस टिप्पणी की आलोचना "गढ़वाली" ने अपने अगस्त 1912 के अंक में की, जिसमें कहा गया था कि कुमाऊँ में कुली अधिक मजदूरी माँगते हैं।[4] सितम्बर तथा अक्टूबर 1912 के अंकों में इसी पत्र ने क्रमशः कुली-एजेन्सी सम्बन्धी विवरण प्रकाशित किया तथा काउन्सिल में कुमाऊँ को प्रतिनिधित्व दिये जाने की माँग करते हुये लिखा कि कुली बेगार का दुख कोई सरकारी कर्मचारी या काउन्सिल का विदेशी सदस्य नहीं समझ सकता।

1- गढ़वाली, जनवरी, 1911, पृ0 195-203 तथा
फरवरी, 1911, पृ0 219-21

2- वही, मार्च, 1911, पृ0 257-58
जून, 1912, पृ0 57-60

3- वर्नाक्यूलर प्रेस रिपोर्ट, 1911ए, पृ0 484
1911बी, पृ0 936

4- गढ़वाली, अगस्त, 1912, पृ0100-101
अक्टूबर, 1912, पृ0177-181

5- वही, सितम्बर, 1912, पृ0153-156

पत्र ने संयुक्त प्रान्त के गवर्नर द्वारा बरेली दरबार के भाषण में की गई उस टिप्पणी की आलोचना की जिसमें कहा गया था कि बेगार से कुमाऊँ के लोग खुश हैं । इसी पत्र ने अपने दिसम्बर 1912 के अंक में बेगार के कष्टों की विस्तृत चर्चा करते हुये पूछा कि क्या हमारी सभ्य सरकार इस विषय में अमीर-काबुल का अनुसरण करते हुये कुमाऊँ की प्रजा को बेगार के दुख से मुक्त करेगी ?[1]

समाचार पत्रों ने बेगार की वास्तविकता बताने वाली सामग्री का प्रकाशन वर्ष 1912 तक किया जिससे आन्दोलन को बल मिला तथा जनता की हिस्सेदारी आन्दोलन में बढ़ने लगी । 1913 के आसपास से स्थानीय पत्रों में बेगार के शोषक स्वरूप को उजागर करने के प्रयासों में वृद्धि हुई । जिसके फलस्वरूप " अल्मोड़ा अखबार", "गढ़वाली", "विशाल कीर्ति" और " गढ़वाल समाचार" आदि में ग्रामीणों के पत्र तथा बुद्धजीवियों के विचार प्रकाशित होने लगे । यह क्रम तब तक निरन्तर चलता रहा जब तक बेगार प्रथा का समूल उन्मूलन नहीं हो गया । दुर्भाग्यवश इसी दौरान " गढ़वाल समाचार" बन्द हो गया और 1918 में " अल्मोड़ा अखबार" से जमानत माँगी गयी जिसके फलस्वरूप यह समाचार पत्र भी अन्ततः बन्द हो गया । बेगार-विरोधी चेतना को जन-मन तक संप्रेषित करने में निर्णायक भूमिका निभाने वाला "शक्ति" नामक नया समाचार पत्र इसी दौरान प्रारम्भ हुआ । बेगार उन्मूलन के अंतिम दो-ढ़ाई वर्ष सशक्त रूप से इसी समाचार पत्र से जुड़े रहे । "आज" "अभ्युदय" " लीडर" "इन्डिपेन्डेन्ट""मार्डर रिव्यू" आदि पत्रों ने भी इस दौरान भ्र बेगार के सम्बन्ध में विचारोत्तेजक लेखों का प्रकाशन किया । 1913 के आसपास इन

1- " गढ़वाली " दिसम्बर 1912, पृ0 250-251

पत्रों की शैली और संस्कारों में जो अनिश्चितता और सरकार के प्रति उदारता थी वह इस दौर के उत्तरार्द्ध में आक्रमकता में बदल गयी । इसी काल में "अलमोड़ा अखबार" को उत्तराखण्ड का ऐसा पत्र बनने का अवसर मिला जो पहली बार सरकार की दृष्टि में खतरनाक साबित हुआ ।

बदरीदत्त पाण्डे पहले " अलमोड़ा अखबार" के संपादक रहे तदोपरान्त उन्होंने "शक्ति" के सम्पादन की कमान सँभाल ली । गिरिजादत्त नैथाणी, विशम्भरदत्त चंदोला और तारादत्त गैरोला " "गढ़वाली" के सम्पादक रहे । गिरिजादत्त नैथाणी ने अकेले ही "गढ़वाल समाचार" और"पुरुषार्थ" का भी सम्पादन किया था । इस प्रकार उस समय सभी स्थानीय पत्रों के सम्पादक बेगार-आन्दोलन के अग्रिम पंक्ति के व्यक्ति थे । इन सभी व्यक्तियों ने अपने अपने पत्रों के सम्पादन के साथ ही आन्दोलन -कारियों की भी भूमिका निभाई । यद्यपि इनके विचारों में मतभेद था परन्तु बेगार-उन्मूलन के प्रश्न पर इनमें पूर्ण मतैक्य था ।

" गढ़वाल समाचार " के जनवरी-फरवरी 1913 के अंक में कुली एजेन्सी पर एक रपट प्रकाशित हुई जिसमें बेगार के विषय में तीखी टिप्पणी की गई थी ।[1] इसी प्रकार अप्रैल 1913 में अलमोड़ा शहर के

1- " हकीकत में इस कदर दुखदायी व हर्ज पहुँचाने वाला दूसरा कोई काम नहीं है, जैसा कि कुली बर्दायश का काम हो गया है । इसकी वजह से लोग अपनी गुजर व बेहतरी की सूरत नहीं निकाल सकते हैं । सरकार इस दुख को हलका करने की जो तदबीर निकालेगी उससे रियाया को दिली दुआ हासिल करेगी —— ।"

§"गढ़वाल समाचार" जनवरी-फरवरी, 1913, पृ0 18 §

निवासियों से बेगार लेने की घोषणा होने पर इसी समाचार पत्र ने अपने एक रोचक सम्पादकीय में बेगार के सम्बन्ध में तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की थी।[1]

1- " -------- अल्मोड़ा अखबार से विदित हुआ कि अल्मोड़ा शहर से भी सरकार ने बर्दायश ली । यदि यह बात सच है तो हमको बड़ा दुख और आनन्द होता है । दुख इसलिये कि यह कार्य न्याय-विरुद्ध समझा जाता है क्योंकि बर्दायश लेना उन मुकामात पर किस कदर वाजिब सा जान पड़ता है जहाँ मूल्य देकर भी चीज नहीं मिल सकती है । इसी न्याय पर शहर में - जहाँ सब चीज प्राप्त हो सकती है, आज तक बर्दायश नहीं ली जाती है । पुराने जमाने यानि राजा के समय से लेकर आज तक अल्मोड़ा से कभी बेगार नहीं ली गयी । तब अँग्रेज जैसे न्यायपरायण सरकार के राज्य में अल्मोड़ा से बेगार लेना क्या न्याय कहा जा सकता है ? हमको पूर्ण विश्वास है कि यह अन्याय सरकार की तरफ से नहीं, किन्तु केवल किसी कर्मचारी की तरफ से हुआ होगा और सरकार का ध्यान इस अन्याय की तरफ जायेगा और आनन्द इसलिये हुआ कि अल्मोड़ा में कई ऐसे लोग हैं जिन्होंने गाँवों के गरीब लोगों से खूब बर्दायश लेकर अपना पेट बढ़ाया, जिन्होंने गढ़वाल की कुली एजेन्सी से भी दाम देने के भय से दूध वगैरा तलब न कर गाँवों से तलब करना चाहा था और जिन्होंने मुल्क का रुपया खाकर विद्या पढ़ी और फिर उससे सहानुभूति नहीं की, जो सब कुछ करने की योग्यता रखते हुये भी अपने देश के लिये कुछ नहीं करना चाहते । ऐसे निपट अकर्मण्य लोगों से यदि सरकार ने बेगार ली तो अन्याय नहीं किया । इनको मालूम तो हो, एक दिन की भी बेगार देना मनुष्य-समाज के लिये कितना कष्टदायी है । भाई सोचो, यदि तुमसे बेगार लेनी अन्याय है तो दूसरों से क्यों लेते हो ---- ।"

§ "गढ़वाल समाचार" मई-जून 1913, पृ06-7 §

14 जुलाई, 1913 के अपने सम्पादकीय में "अल्मोड़ा अखबार" ने कुली प्रथा के शिकार लोगों की तुलना अमेरीकी हब्शियों से किया है ।[1] इसी प्रकार 21 जुलाई, 1913 को इस अखबार ने कुली उतार एवं बर्दायश की सख्ती के विषय में एक सम्पादकीय लिखा ।[2] मिल, बर्क, शेक्सपियर टेनीसन आदि स्वतन्त्रता प्रेमियों का स्मरण करते हुये "अल्मोड़ा अखबार" ने 28 जुलाई, 1913 को मानवाधिकारों पर तीखा कटाक्ष किया ।[3]

1- " —— बेगार के प्रश्न ने हमको वास्तव में बेज़ार कर दिया है, यह कष्ट जंगलात के कष्ट से भी गुरुतर है । क्योंकि जंगलात का प्रश्न तो धन सम्बन्धी है, पर यहाँ तो मानहानि का प्रश्न है । इस बीसवीं शादी में जबकि अमेरिका के हब्शी अथवा अफ्रीका के असभ्य तक उन्नति की चेष्टा कर रहे हैं और सभ्यों के स्वत्वों को पाने का निरन्तर उद्योग कर रहे हैं, कूर्मांचल ऐसे सभ्य, विद्या सम्पन्न देश के सदस्यों को कुली कहाया जाना कैसा अपमानजनक है —— ।"

("अल्मोड़ा अखबार", 14 जुलाई, 1913)

2- " —— कुली बेगार और बर्दायश की सख्ती से लोग इतने निस्सहाय और निर्बल हो गये हैं कि जिनके पुरखे किसी साल में बंहगियों - बोझ ढोने का वह बाँस जिसके दोनों ओर छीके लटके रहते हैं - के बाँस से बाघ मारने के लिये प्रसिद्ध थे, वे आज बाघ के नाम से डरते हैं ।"

("अल्मोड़ा अखबार", 21 जुलाई, 1913)

3- " —— इन्हीं की प्रभावशाली सन्तति हमारे सम्मानपूर्वक आन्दोलन करने पर भी हमसे कहे कि यह बेगार की प्रथा कूर्मांचल ऐसे शिक्षित व सभ्य देश के लिये बुरी नहीं है, तो कितने खेद व आश्चर्य की बात है —— ।"

(" अल्मोड़ा अखबार ", 28 जुलाई, 1913)

1913 में " अलमोड़ा अखबार ", " गढ़वाली " तथा बेगार आन्दोलन के संचालकों के दृष्टिकोण का आभास उसी समय स्पष्ट रूप से हो सका जब अलमोड़ा के नागरिकों पर बेगार लगने के समाचार पर पत्रों ने अपनी टिप्पणियाँ प्रकाशित की । इस समय "अलमोड़ा अखबार" ने लिखा कि बेगार द्विज जातियों पर कभी नहीं लगती थी और रवतिया तथा शिल्पकार जाति बोझ ढो कर अपनी गुजर करती थी । इन्हीं से कुली का काम लिया जाता था, अन्य ऊँचे काम करने वाली जातियों से नहीं । पत्र ने आगे लिखा कि कुली एजेन्सी कायम कर हमने बेगार की प्रथा को ही स्वीकार कर लिया है और अलमोड़ा के नागरिकों की लड़ाई सदैव इस निन्दनीय प्रथा को उठा लेने की है न कि उसके बदले रुपये देकर समझौता कर लेने की ।[1] " गढ़वाली " ने " अलमोड़ा अखबार " द्वारा प्रकाशित बेगार विरोधक लेखों की प्रशंसा करते हुये इस बात को खेदजनक बताया कि कुली-एजेन्सी की आलोचना की जा रही है । "गढ़वाली" ने अपने सहयोगी की इस दलील से असहमति प्रकट की कि कुली बर्दायश द्विजों से नहीं लेनी चाहिये बल्कि केवल खसियों और डोमों से लेनी चाहिये । पत्र ने बेगार आन्दोलन सभी जातियों के लिये आवश्यक बताया था ।[2]

" अलमोड़ा अखबार " ने अगस्त-सितम्बर 1913 के अंकों में अलमोड़ा की जनता द्वारा कमिश्नर को दिया गया बेगार-सम्बन्धी आवेदन पत्र और फिर कमिश्नर द्वारा दिया गया इसका निराशाजनक कुतार्किक उत्तर प्रकाशित किया था ।[3] "गढ़वाली" और "गढ़वाल समाचार" ने एजेन्सी सम्बन्धी विवरण प्रकाशित किये थे ।[4] "अलमोड़ा अखबार" ने

1- " अलमोड़ा अखबार ", 11 अगस्त, 1913

2- " गढ़वाली " अगस्त, 1913, पृ0 168-169

3- " अलमोड़ा अखबार ", 20अक्टूबर, 1913,

4- " गढ़वाल समाचार ", जनवरी-फरवरी, 1913

" गढ़वाली", अक्टूबर, 1913

कुली उतार और बर्दायश को दक्षिण अफ्रीका का सा अत्याचार बताते हुये इसे उठाने का निवेदन किया था ।[1] दिसम्बर 1913 में ही "गढ़वाली" ने एक लेख में गढ़वाल और कुमाऊँ को हिमालय के दो नेत्र कहा और 1914 के पहले अंक में लिखा " ——— हमारे यहाँ सोसाइटियाँ नाम व रुपया पैदा करने की मशीनें हैं । लोग सभायें कायम कर टट्टी की आड़ में शिकार खेल अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं — जाति व देश जाये जहन्नुम में ——— ।" आगे पत्र ने नेताओं की आलोचना करते हुये गढ़वाल यूनियन को भी एक पत्र निकालने के अलावा कुछ न करने के लिये कोसा था ।[2] " लीडर" ने 24जनवरी 1914 को अल्मोड़ा शहर में बेगार लगने का विरोध किया था ।[3] "अल्मोड़ा अखबार" ने 1914 के बागेश्वर के उत्तरायणी मेले में कुली बर्दायश की धूम का विवरण प्रकाशित किया था । साथ ही एक अग्रलेख में लिखा था "——— अंगरेजी सरकार अनुदार है । वह जो बात चली आयी है, चाहे वह बुरी ही क्यों न हो, उसे चलने देती है और उसका परिवर्तन नहीं करती है, जब तक कि लोग इसके लिये घोर आन्दोलन न करें । आन्दोलन करो, आन्दोलन करो, मानो उसका मूल मंत्र है । बंग-विच्छेद तथा उसके विरुद्ध बंगालियों का घोरातिघोर आन्दोलन इसका ज्वलन्त उदाहरण है ——— ।" इसी लेख में आगे कहा गया था ——— " वास्तव में शुद्ध तथा निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाये तो जितना अत्याचार स्वदेशी पटवारी, पेशकार, तहसीलदार, पुलिस अफसर लोगों पर करते हैं उतना विदेशी अफसर नहीं करते हैं ——— ।" अन्त में एक संगठन की आवश्यकता महसूस की गई थी, " ——— अब सभा, सोसायटी, समाज-संगठन के आन्दोलन पर नीति निर्भर है, इसलिये कूर्मान्चल में ही इनका प्रचार आवश्यक है, क्योंकि कुली-उतार तथा जंगलात की विपत्ति

1- " अल्मोड़ा अखबार " 29 दिसम्बर, 1913

2- " गढ़वाली " जनवरी, 1914

3- जी0ए0डी0 फाइल, 398/1913

इन प्रान्तों को छोड़ अन्यत्र कहीं नहीं है । सभी ने आन्दोलन कर इन प्रथाओं को उठा दिया है । क्या ही अच्छा होता, यदि हमारे सभ्यजन कूर्मान्चल परिषद नामक एक समिति खोलते, जिसमें हमारी राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा साहित्यिक दशाओं पर विद्वतापूर्ण विचार होता ——— इसकी शाखें स्थान-स्थान पर होती और वार्षिक उत्सव भी हुआ करते ।[1] इसी अंक में कमिश्नर के नाम एक राजभक्त गँवार का पत्र प्रकाशित हुआ था । बेगार के कष्टों का वर्णन करते हुये इसमें कहा गया था, " ——— हे दयाशील गवर्नमेन्ट प्रतिनिधि क्या आपका चित्त नहीं दुखता ? अब हम कब तक और चुप बैठें ? नहीं नहीं, सरकार हम आपसे कहे देते हैं कि आज गँवार लोग भी आत्म-गौरव के नशे में चूर हैं ——— ।"[2]

"गढ़वाल समाचार" का विचार था कि कुली एजेन्सी खोलकर बेगार की यन्त्रणा से मुक्त नहीं हुआ जा सकता है । पत्र ने "अलमोड़ा अखबार " की आलोचना की थी कि यह बेगार देना खसियों का काम मानता है और बेगार के लिये गढ़वाल के बन्दोबस्त के कलक्टर का विरोध किया था ।[3] यह प्रभाव अपनी कुछ-कुछ विनयशीलता के बावजूद "गढ़वाली" पर भी पड़ा था जो कि इसके मई-जुलाई 1914 के संपादकीय में स्पष्टरूप से दिखायी देता है ।[4]

1- " अलमोड़ा अखबार", 26 जनवरी, 1914

2- वही,

3- " गढ़वाल समाचार " फरवरी-मार्च, 1914

4- " ———— कुली बर्दायश की प्रथा गुलामी से भी बुरी है और सभ्य सरकार के योग्य नहीं, कतिपय सरकारी कर्मचारियों की दलील है कि यह प्राचीन प्रथा अर्थात् दस्तूर है। किन्तु जबकि यह दस्तूर बुरा है तो चाहे प्राचीन ही भी हो निन्दनीय है और फौरन बन्द होना चाहिये । क्या गुलामी, सती आदि प्रथायें प्राचीन नहीं थी ——— ।"

{"गढ़वाली, मई-जुलाई, 1914}

सरकारी कर्मचारियों की आलोचना करने में " विशाल कीर्ति " जितनी आगे थी, उतना ही आगे पटवारी - पतरौलों का दमन-चक्र उजागर करने में " गढ़वाल समाचार " था ।[1] " गढ़वाली " अपनी उदारता से अब भी मुक्त नहीं हुआ था । अक्टूबर, 1914 में इस पत्र ने बेगार का बहुत अधिक प्रयोग करने वाले कलक्टर के स्थानान्तरण पर प्रसन्नता प्रकट की तो अगले अंक में कुली एजेन्सी, गढ़वाल के कायदे प्रकाशित किये ।[2] धीरे-धीरे पत्रों की शैली और दृष्टिकोण भी बदलता रहा । 23 अक्टूबर, 1916 को " अलमोड़ा अखबार " ने बरेली-दरबार में कुमाऊँ के प्रतिनिधि न बुलाये जाने की आलोचना की तो 1917 में जनता से स्वाधीनता की मर्यादाओं को पहचानने का निवेदन किया था ।[3]

1918 के प्रथम अंक में पत्र ने ताकुला में बेगार की स्थिति पर टिप्पणी प्रकाशित की कि फसल नष्ट हो रही है पर पटवारी, लोगों को कुली बनाकर ले जा रहा है ।[4] फरवरी के अंक में इसी पत्र ने पूछा था कि पहाड़ के लोग बेगार दें या भर्ती होवें ? इसी अंक में एक सैनिक के वृद्ध पिता का मार्मिक पत्र छपा था कि एजेन्सी खुलने पर उसे सताया जा रहा है ।[5]

1- " गढ़वाल समाचार " मई-जून, 1914
2- " गढ़वाली ", अक्टूबर,नवम्बर-दिसम्बर,1914
3- " अलमोड़ा अखबार ", 18 जून, 1917
4- वही, 3जनवरी, 1918
5- वही, 18फरवरी, 1918

1918 के इसी पत्र के होली अंक में तत्कालीन डिप्टी कमिश्नर अलमोड़ा §लोमस§ द्वारा सियाही देवी में हुई से एक कुली घायल करने का समाचार प्रकाशित किया था । इस कारण " अलमोड़ा अखबार " को स्थानीय प्रशासन के कोप का शिकार होना पड़ा । अखबार से एक हजार रुपये की जमानत माँगी गयी और व्यवस्थापक सदानन्द सनवाल से त्याग-पत्र लिखवा लिया गया । इस प्रकार 48 साल के जीवन के बाद, "अलमोड़ा अखबार" सरकार की नीतियाँ और उसके प्रकाशकों का चरित्र उजागर करने के कारण बन्द हो गया ।[1] "अलमोड़ा अखबार" के बन्द हो जाने से जागरण और प्रतिरोध का क्रम ब्रिटिश सरकार नहीं बन्द कर सकी ।

15 अक्टूबर 1918 से "शक्ति" का प्रकाशन आरम्भ हुआ । बेगार तथा वन-आन्दोलनों के साथ राष्ट्रीय संग्राम की स्थानीय मुख-पत्रिका के रूप में इसकी भूमिका महत्वपूर्ण रही । "अलमोड़ा अखबार" अपने अन्तिम सालों में आक्रामक बना था और "शक्ति" में यह गुण जन्म से था । " शक्ति " ने अपने प्रथम अंक में लिखा था कि उसका उद्देश्य देश की सेवा करना, देशहित की बातों का प्रचार करना, देश में अराजकता और कुराजकता के भावों को न आने देना, प्रजा-पक्ष को निर्भीक रूप से प्रतिष्ठा पूर्वक प्रतिपादित करना है । पत्र ने आगे लिखा कि यह जन-समुदाय की पत्रिका है । वह सदा विशुद्ध लोकतंत्र का प्रकाश करेगी । जहाँ-जहाँ अत्याचार, पाखण्ड और शासन की धींगामुश्ती से लोकपीड़ित होता है, वहाँ "शक्ति" अपना प्रकाश डाले बिना न रहेगी ।[2] 1918 तक कुली बेगार में जो संशोधन किये गये थे उन्हें अत्यल्प बताते हुये पत्र ने लिखा कि लकड़ी और घास की व्यवस्था सरकारी बनिये को दी जानी चाहिये और किसी को भी कुली बनने के लिये बाध्य नहीं किया जाना चाहिए ।[3]

1- इस समय "पुरुषार्थ" ने लिखा था :—

" एक फायर में तीन शिकार
कुली, मुर्गी और अलमोड़ा अखबार ।"

2- "शक्ति", 15 अक्टूबर, 1918

3- वही, 17 दिसम्बर, 1918

1918 में जब काउन्सिल में तारादत्त गैरोला ने बेगार सम्बन्धी प्रस्ताव रक्खा और इसे उठाने का निर्णय किया गया तो " शक्ति " ने बेगार का विरोध करते हुये लिखा कि अब समय नहीं है कि संसार में किसी भी रूप में दासत्व शेष रहे। ऐसी घृणित प्रथा तुरन्त उठायी जानी चाहिए।[1] जब विभिन्न संस्थायें तथा " कुमाऊँ-परिषद " बेगार-विरोधी प्रस्ताव पारित करने लगी थी तो " शक्ति " ने लिखा था कि यदि सरकार दो साल के अन्दर इस घृणित प्रथा को बन्द नहीं करती है तो परिषद और सदस्यों का कर्तव्य है कि वे लोकमत को इस अवस्था तक शिक्षित करें कि वह प्रस्ताव के अनुसार कार्य करे। पत्र का विचार था कि " कुमाऊँ - परिषद " के सदस्यों को अपने कार्यकर्ताओं तथा वक्ताओं को ग्रामीण क्षेत्र में भेजकर जनता को बेगार और जंगलात के सम्बन्ध में अवगत कराये और सभी प्रकार के दासत्व को समाप्त करने का प्रयास करें।[2]

" शक्ति" समाचार पत्र की बेगार-विषयक टिप्पणियाँ तथा समाचारों से जनता को उत्साह मिला और ग्रामीण क्षेत्रों से भी बेगार - विरोधी पत्र आने लगे। " एक कुमाऊँनी " के नाम से पत्र में एक टिप्पणी प्रकाशित हुई थी जिसमें कहा गया था कि प्रथम विश्वयुद्ध में कुमाऊँ ने 9500 लड़ाके और 3100 गैर लड़ाके दिये अर्थात् कुल 12600 योद्धा केवल 5 लाख की बस्ती ने दिये, तुर्कों को हटाया, पर उन्हीं योद्धाओं के परिवारों, देशवासियों को बेगार और जंगलात के कितने ही कष्ट हैं।[3]

1- " शक्ति ", 24 दिसम्बर, 1918
2- वही, 21 जनवरी, 1919
3- वही, 20 मई, 1919

1919 में जब कुली-बर्दायश की जाँच हेतु बोर्ड आफ कम्यूनिकेशन्स बनी तो कुली-बर्दायश से होने वाली आर्थिक हाँनि के विषय में "पुरुषार्थ" समाचार पत्र में एक अत्यन्त ही विचारोत्तेजक लेख प्रकाशित हुआ ।[1]

1- " ———— बेगार से कुमाऊँ की कितनी अधिक आर्थिक हाँनि होती है, इसका अंदाज मोटे तौर पर इस प्रकार लगाया जा सकता है कि कुमाऊँ प्रान्त में दस लाख लोग निवास करते हैं । यदि औसतन दस आदमियों का एक कुटुम्ब माना जाये {हालाँकि एक कुटुम्ब में छह आदमियों का औसत पड़ता है} तो सारे कुमाऊँ के तीनों जिलों में, प्रत्येक कुटुम्ब से एक आदमी के हिसाब से कम से कम एक लाख आदमियों को इन हाकिमों की कुली बेगार के लिये घर पर रहना पड़ता है । यदि बेगार का भय न होता तो ये एक लाख पेटेन्ट कुली कम से कम जाड़ों के चार महीने मेहनत-मजदूरी के लिये बाहर जा सकते थे । चार महीने में एक आदमी कम-से-कम पाँच आना रोज के हिसाब से चालीस रुपया कमाता है । एक लाख आदमी चालीस लाख रुपये आसानी से कमा सकते हैं ——— ।" " बेगार-बर्दायश से बचने के लिये सालाना 32,400 रुपये हाकिमों को प्रतिष्ठा में देना पड़ता है ——— ।" " ——— अब यह विचार करना है कि बिना बेगार-बर्दायश लिये, जैसा कि सरकार कहती है, काम नहीं चल सकता, काम चल सकता है या नहीं, इसका उत्तर हमने कुली-एजेन्सी स्थापित कर समुचित रीति से दे दिया है । किन्तु एजेन्सी स्थापित कर हमने अपने को कुली कहलाने के अपमान से नहीं बचाया है । इसके अतिरिक्त वह हमारी और न सारे प्रांत की सम्पूर्ण तकलीफों की रक्षा कर सकती है । अतएव हम उससे पूर्णतया संतुष्ट नहीं हैं । हम कुली कहलाने के महान लज्जास्पद अपमान तथा सम्पूर्ण तकलीफों तथा उपरोक्त आर्थिक हानियों से तभी मुक्त हो सकते हैं, जब दौरा हाकिमों के साथ मुकर्रर कुली भरती होंगे और सड़क और पड़ाव दुरुस्त और मुकर्रर होंगे ——— ।"

{ " पुरुषार्थ ", सितम्बर, 1919 }

1920 में फिजी में बंधुआ मजदूरी के उठने पर "शक्ति" ने लिखा कि कुली-प्रथा भी शर्त बंधी मजदूरी से कम नहीं है क्योंकि यहाँ भी हिस्सेदारों से डरा धमका कर बन्दोबस्ती इकरारनामों पर हस्ताक्षर कराये गये हैं ।[1] कुली एजेन्सियों की जिला अलमोड़ा में स्थापना का प्रसंग आने पर "शक्ति" ने लिखा था कि हमें एजेन्सी के नाम पर सब्जबाग दिखाया जा रहा है ।[2] इसी तरह "कुली उतार" शीर्षक से प्रकाशित अपने संपादकीय में पत्र ने इस प्रथा को तत्काल समाप्त करने का अनुरोध किया ।[3] जब एजेन्सी का समर्थन हो रहा था और एक लेख में तारादत्त गैरोला ने इसे पहाड़ का मजदूर संघ या स्वराज्य ही नहीं अपितु कामधेनु तक कह दिया तो बदरी दत्त पाण्डेय ने " गुलामों का स्वर्ग" शीर्षक लेख में नौकरशाही के स्वर में बोलने की नीति का विरोध करते हुये लिखा था कि हमारे अनेक नेता खुद नहीं चाहते कि कुली बर्दायश बन्द हो, क्योंकि तब सब बराबर गिने जायेंगे, तो उनको बड़ा कौन कहेगा ।[4] इलाहाबाद से हर्षदेव ओली ने लिखा कि जब पूरा देश स्वराज्य की भावना से भरा है, ऐसे वातावरण में तारादत्त गैरोला द्वारा इस शोषक प्रथा को बनाये रखने के लिये स्थापित एजेन्सी का समर्थन करना अनुचित है ।[5] 5 अक्टूबर, 1920 में एक महत्वपूर्ण संपादकीय में

1- " शक्ति ", 17 फरवरी, 1920

2- वही, 6 अप्रैल, 1920

3- वही, 20 अप्रैल, 1920

4- " गढ़वाली ", जून, 1920

5- " शक्ति ", 22, 29 जून, 1920

" शक्ति " ने लोगों से अनुरोध किया कि वे स्वयं कुली बनना छोड़ दें ।[1] पं0 हरगोविन्द पंत ने " शक्ति " में प्रकाशित अपने एक लेख में लिखा कि इस कलंक को बिना मिटाये कोई उच्च पद, उपाधि अथवा काउन्सिल की सदस्यता हमें शोभा नहीं देती है और न किसी स्वाभिमानी को इन्हें ग्रहण करना ही उचित है ।[2] इसी प्रकार मुकुन्दी लाल ने इसी पत्र में प्रकाशित

1- " ———— लोकमत के विरूद्ध नैनीताल व अलमोड़ा में कुली एजेन्सी स्थापित करने के विषय में सरकारी दखलनदाजी हो रही है ——— अब लोगों को स्वयं इस विषय में जगना चाहिये, अब कुली बनना नहीं है । स्वराज्य कुलियों से नहीं, निर्भय मनुष्यों से चलता है । इस विषय में सरकार को नोटिस देना है और सत्याग्रह या सहयोग-त्याग से काम लेना है ———— तमाम कुमाऊँ से आवाज उठनी चाहिये कि अब वे अपनी मर्जी से बोझ न ले जावेंगे । सरकार अपने काम के लिये जरखरीद कुली रख ले । कुमाऊँ में स्वराज्य की पहली दुस्तर सीढ़ी यही है । अब न तो हम एजेन्सी खोलेंगे, न कुली देंगे और न बेगार बर्दाश्त ही —— ———— । "

§ " शक्ति ", 19 अक्टूबर, 1920 §

2- " शक्ति ", 19 अक्टूबर, 1920

अपने लेख में लोगों से । जनवरी, 1921 से बेगार-बर्दायश और कुली-उतार देने से मना करने का अनुरोध किया ।[1] " शक्ति " ने बेगार आन्दोलन के इस नये स्वरूप को पुराने आन्दोलन से भिन्न मानने का आग्रह करते हुये लिखा कि नौकरशाही कभी इस प्रथा को पत्रों के प्रभाव से बन्द करेगी । बहुत से निवेदन-पत्रों, प्रार्थनाओं के बाद भी नौकरशाही टस से मस नहीं हुई । गाँव गाँव जाकर प्रचार करने और स्वयंसेवकों को जुटाने की तथा ग्रामीणों के भीतर आत्म-सम्मान लाने की आवश्यकता बताते हुये पत्र ने लिखा कि अब बेगार आन्दोलन को बड़ी हड़तालों की तरह संचालित करना पड़ेगा ।[2] कुमाऊँ परिषद के काशीपुर अधिवेशन के बेगार न देने सम्बन्धी ऐतिहासिक निर्णय के बाद "शक्ति" ने "कुली बेगार बन्द करो" सम्पादकीय में लिखी

1- " ———— हम लोग बेगार-बर्दायश और कुली उतार देने से साफ इन्कार कर दें और यदि तलबाना या जुर्माना माँगा जाये तो वह भी न दें । न देने पर कैद जाना पड़े तो उसके लिये भी तैयार हो जावें । अन्त में हाईकोर्ट में हम साफ छूट जायेंगे क्योंकि अभी हाल में बिजनौर के मामलों में भी बेगार को विधि-विरुद्ध बताया गया है । मान लिया जाये कि अपील नहीं की और बहाल भी न हुई तो भी इस गुलामी की श्रृंखला को तोड़ने के लिये कैद में सड़ना पड़े तो श्रेयस्कर है ——— ।"

§ "शक्ति", 9 नवम्बर, 1920 §

2- " शक्ति ", 16 नवम्बर, 1920

भी स्थिति में कुली न बनना आवश्यक बताया था । इसी अंक में बदरीदत्त पाण्डे ने " बेगार उठा लो " नोट में कहा था, " भाइयो, बेगार, कुली-उतार, बर्दायश का देना नाजायज है । गैर-कानूनी है । नौकरशाही का यह अन्याय है । अब यह देना कतई बन्द कर दो । कुमाऊँ-परिषद ने यह प्रस्ताव पास किया है ——— ।"[1] बागेश्वर की घटना के बाद पत्र ने उसका विस्तृत विवरण " स्वाधीनता का संग्राम " शीर्षक से प्रकाशित किया था और इसमें कुमाऊँ के हर व्यक्ति का सम्मिलित होना आवश्यक बताया था ।[2]

कुली बेगार प्रथा को समाप्त करने के लिये बागेश्वर में हुये जन आन्दोलन के अन्य क्षेत्रों में बहुत तीव्रता से फैलने, गाँव-गाँव में सभा, प्रतिरोधों और बेगार न देने के शपथ सम्बन्धी समाचारों को "शक्ति" ने प्रमुखता से प्रकाशित किया ।[3] " गढ़वाली " ने भी बागेश्वर और इसके बाद का घटना-क्रम विस्तार से प्रकाशित कर इस आन्दोलन को बढ़ाना ही राजा और प्रजा के हित में बताया था ।[4] फरवरी, 1921 में लेफ्टिनेन्ट गवर्नर की ओर से बेगार को शीघ्र उठाने की घोषणा होने पर "शक्ति" ने —

1- " शक्ति ", 11 जनवरी, 1921

2- वही, 25 जनवरी, 1921

3- वही, जनवरी-मई, 1921

4- " गढ़वाली " जनवरी-फरवरी, 1921

" धोखा न खाइये " शीर्षक से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संपादकीय प्रकाशित किया ।[1] गोविन्द बल्लभ पंत, हरगोविन्द पंत, चिरंजीलाल, बदरीदत्त पाण्डेय तथा लक्ष्मीदत्त शास्त्री द्वारा जारी अपील को "शक्ति" ने 15 मार्च, 1921 को " भाइयों सावधान " नामक शीर्षक से प्रमुखता के साथ प्रकाशित किया जिसमें कुली उतार के विरुद्ध एक होने, निडर बनने और अपने भाइयों की मदद करने का निवेदन किया गया था । "शक्ति" ने 22 मार्च 1921 के अंक में इस आन्दोलन के समय जन्मी और फिर असाधारण रूप से गायी गोर्दा की कविता " झन दिया कुली उतार " प्रकाशित किया ।[2]

1- " ———— लोगों ने उतार पूरी तरह बन्द कर दी है और अधिकारियों के दिमाग का दिवाला निकल गया है । अब लाट साहब क्या बन्द करेंगे इसे ? ———— प्यारे कुमाऊँनियों, नौकरशाही की चालों में न आइये । वे फिर तुमको डरा धमका कर, फुसलाकर, बोझ ले जाने को कहेंगे, पर अब शान्त व दृढ़ होइये ———— अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहें ।

§ "शक्ति " 22 फरवरी, 1921 §

2- मुल्क कुमाऊँ का सुण लिया यारो,
झन दिया कुल्ली बेगार ।।
चाहे पड़ी जा डंडे की मार ।
जेल हुनी से होवौ तय्यार ।।
तीन दिन ख्वै बेर मिल आना चार ।
आँखा देखूनी फिर जमादार ।।
घर कुड़ि बाँजि करि छोड़ि सब कार ।
हाँकि लिजाँछ मास गुवार ।।
- - - - - - - - - - -
- - - - - - - - - - -

§ § इस कविता का अर्थ है कि : मुल्क कुमाऊँ के लोगो ! सुनो, कुली-बेगार मत देना, चाहे डंडो की मार पड़ जाये । जेल जाने के लिये भी तैयार रहो । तीन दिन खोकर चार आने मिले, जमादार फिर आँख दिखाता है घरबार को चौपट कर सब कामकाज छुड़वा, मालगुजार पशुओं की तरह हाँक ले जाता है ।§

इस असाधारण भूमिका के कारण ही मई 1921 में "शक्ति" से नवम्बर, 1920 से अप्रैल 1921 तक प्रकाशित 53 विवादास्पद लेखों के लिये छह हजार रुपये की जमानत माँगी गई जिसके फलस्वरूप पत्र एक माह तक प्रकाशित नहीं हो सका। जुलाई 1922 से मुकुन्दीलाल ने "तरुण कुमाऊँ" का प्रकाशन आरम्भ किया। इस पत्र का प्रकाशन जून 1923 के लगभग बंद हो गया। इस पत्र ने बेगार आन्दोलन के अन्तिम चरण में हुये दमन और प्रतिरोध सम्बन्धी टिप्पणियाँ प्रकाशित की थी।[1] पत्र का विचार था कि कोई भी जाति बिना स्वराज्य के सरसब्ज, गौरववान, प्रभावशाली, शक्तिशाली और आदरणीय नहीं हो सकती। परतंत्र राष्ट्रों का कोई सम्मान नहीं करता और आज हमारी यह शोचनीय दशा भारतवर्ष में स्वराज्य न होने के कारण ही है।[2] पत्र ने केशर सिंह रावत पर विशेष लेख और कविता का प्रकाशन किया था। यद्यपि इस प्रकाशन पर सरकारी तंत्र ने अपनी नाराजगी भी प्रकट की परन्तु इसके संपादक मुकन्दी लाल पर इसका कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा और उन्होंने अपने पत्र में गढ़वाल की "क्षत्रिय-सभा" और उसके मुख-पत्र "क्षत्रिय-वीर" की आलोचना की क्योंकि इस पत्र ने केशर सिंह रावत को घृणा की दृष्टि से देखने का प्रस्ताव सरकार को भेजा था।[3]

1- " तरुण कुमाऊँ ", अगस्त, 1922, मार्च 1923 तथा जून 1923

2- वही, अगस्त, 1922

3- वही, अगस्त, 1922

बेगार-उन्मूलन आन्दोलन का यह दौर पत्रकारिता के स्तर पर आक्रामक हो गया था। अधिकांश स्थानीय पत्रों के सम्पादक आन्दोलन के सक्रिय सदस्य थे। स्थानीय पत्रों के अतिरिक्त " प्रताप ", "भविष्य" तथा "कर्मयोगी" जैसे प्रान्तीय स्तर के पत्रों ने भी इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। जन-जागृति, संगठन, नेतृत्व, पत्रकारिता, प्रचार प्रसार आदि सभी दृष्टियों से इस तरह की अभिव्यक्ति अन्य किसी भी सामाजिक आन्दोलन में देखने को नहीं मिलती है। नवीन जन-चेतना के कारण ही जनता ने 1921 से ही बेगार करना स्वयं ही छोड़ दिया। इस दशा में सरकार के पास बेगार उठा लेने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं था। अन्ततः 1922 में सरकार ने काउन्सिल में बेगार - उन्मूलन की औपचारिक घोषणा भी कर दी।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अवध के कुछ जिलों में भूमिहीन मजदूरों की संख्या बढ़ रही थी तथा जमींदारो के अत्याचार असहनीय हो रहे थे। इस स्थिति का कारण ब्रिटिश सरकार द्वारा जमींदारों की सहमति से 1886 में पारित किये गये अवध रेन्ट ऐक्ट को था। इस ऐक्ट के अन्तर्गत किसानों से प्रत्येक 7 वर्ष की समाप्ति के पश्चात जमींदार भरपूर नजराना लेते थे अन्यथा उन्हें जमीन से बेदखल कर देते थे। अवध के किसानों एवं मजदूरों ने 1920-21 में इस प्रथा के विरोध में एक व्यापक आन्दोलन किया जिसने ब्रिटिश सरकार की जड़ों को हिला दिया। उनका यह आन्दोलन प्रत्यक्ष रूप से जमींदारों के विरुद्ध था परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने अपना रोष जमींदारों के संरक्षक ब्रिटिश शासकों के प्रति भी प्रकट किया। किसानों के इस आन्दोलन का सूत्रपात प्रतापगढ़ में बाबा रामचन्द्र द्वारा गठित किसान सभा नामक संगठन के माध्यम से हुआ। बाबा रामचन्द्र के नेतृत्व में किसानो का विशाल समूह पदयात्रा करके प्रतापगढ़ से इलाहाबाद पहुँचा।

किसानों ने वहाँ अपनी व्यथा पं0 जवाहरलाल नेहरू तथा पं0 गौरीशंकर को सुनायी और उनसे प्रतापगढ़ आने का अनुरोध किया । पं0 जवाहरलाल नेहरू पं0 मोतीलाल नेहरू, मौलाना शौकत अली तथा मौलाना अबुल कलाम आजाद को साथ लेकर महात्मा गाँधी 29 दिसम्बर 1920 को किसानों से सीधे सम्पर्क स्थापित करने के उद्देश्य से प्रतापगढ़ स्वयं आये । उसी दिन प्रतापगढ़ में पं0 मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक सभा का आयोजन किया गया जिसमें इलाहाबाद, जौनपुर, रायबरेली, सुल्तानपुर तथा फैजाबाद के किसानों ने भाग लिया । उक्त सभा में गाँधी जी ने किसानों को आश्वासन दिया कि वे उनके अधिकारों की लड़ाई में पूरी तरह उनके साथ हैं ।[1]

राष्ट्रीय नेताओं से किसानों का सम्पर्क सूत्र स्थापित होते ही विद्रोह की लहर जो प्रतापगढ़ से उठी थी उसने देखते ही सम्पूर्ण अवध को अपनी चपेट में ले लिया । 20 नवम्बर 1920 को जमींदारों के कर्मचारियों ने पुलिस की सहमति से जौनपुर के कोलह, बलाई का पुरवा, अचल का पुरवा, सुमेर का पुरवा तथा प्रतापगढ़ के कोटिह तथा महुली ग्राम के कुछ घरों को लूटा तथा स्त्रियों को अपमानित किया ।[2] वाराणसी के समाचार पत्र " आज " ने अपने 25 दिसम्बर, 1920 के अंक में उक्त घटना की बनारस सेवा समिति के सदस्यों द्वारा दी गई जाँच का विवरण प्रकाशित किया । सरकारी कर्मचारियों की कार्यवाहियों से जनता में रोष व्याप्त हुआ जिससे विवश होकर उच्चाधिकारियों ने सम्बन्धित अधिकारियों को लूट से प्रभावित परिवारों के साथ नरमी बरतने का आदेश दिया ।

1- किसान रायट इन प्रतापगढ़, पुलिस विभाग, पत्रावली उ0प्र0राजकीय अभिलेखागार,लखनऊ

2- "इन्डिपेन्डेन्ट ", 28 नवम्बर, 1920

सुल्तानपुर जिले में किसान आन्दोलन का नेतृत्व बाबा रामलाल ने किया । नवम्बर, 1920 में सुल्तानपुर के निकट एक विशाल किसान सभा का आयोजन किया गया जिसमें पुरुषोत्तम दास टण्डन, गौरी शंकर मिश्र, महताब लाल पाण्डेय तथा बाबा रामचन्द्र ने भाग लिया । रायबरेली किसान आन्दोलन का एक प्रमुख केन्द्र था ।[1] 5 जनवरी, 1921 को 3000 किसानों का समूह बाबा जानकी दास तथा बद्री नारायण के नेतृत्व में जमींदारो के गाँव चन्दनियाँ पहुँचा । पुलिस ने तत्काल घटनास्थल पर पहुँचकर सैकड़ों किसानों को गिरफ्तार कर लिया । 6 जनवरी को किसानों के समूह ने रायबरेली से दो मील दक्षिण स्थित मुंशीगंज बाजार को लूटने का प्रयास किया । उसी दिन फुर्सतगंज में भी लूटपाट की घटनायें हुयी । पुलिस ने मुंशीगंज बाजार को घेर लिया तथा फुर्सतगंज में गोली चलायी जिसमें अनेक किसान मारे गये । 7 जनवरी को पं0 जवाहरलाल नेहरू का रायबरेली का पूर्व निर्धारित कार्यक्रम था । उन्हें सुनने के लिये हजारों की संख्या में किसान सुबह से ही रायबरेली आने लगे । पुलिस ने किसानों को सभा में जाने से रोकने का प्रयास किया । प्रतिरोध करने पर भीड़ को हटाने के लिये घुड़सवार पुलिस दस्ते प्रयोग किये गये । पं0 जवाहरलाल नेहरू को रायबरेली रेलवे स्टेशन से ही वापस भेज दिया गया ।[2] किसान विद्रोह की कहानी रायबरेली पर ही समाप्त नहीं होती उसकी यात्रा आगे बढ़ी और उसने फैजाबाद को भी अपना कार्यस्थल बनाया । इस जनपद के पूर्वी भाग में जहंगीर -गंज एवं बसखारी पुलिस स्टेशनो के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र किसान आन्दोलन से प्रभावित हुये । 12 जनवरी 1921 को एक सभा हुई जिसमें जमींदारो के विरुद्ध प्रदर्शन करने का निर्णय लिया गया । 13 तथा 14 जनवरी को प्रदर्शन

1- " लीडर ", 7 जनवरी, 1921

2- वही ,

के दौरान कुछ लूटपाट की भी घटनायें हुईं । प्रदर्शनकारी मुख्य रूप से हरिजन एवं पिछड़ी जातियों के लोग थे जिनसे जमींदार लोग जबरन बेगार करवाते थे ।[1]

17 जनवरी, 1921 को फैजाबाद के किसानों के मार्गदर्शन हेतु पं0 जवाहरलाल नेहरू स्वयं फैजाबाद आये । उसी दिन अकबरपुर तहसील के अन्तर्गत गोहना ग्राम के निकट उनकी अध्यक्षता में एक किसान सभा का आयोजन किया गया । आन्दोलन का यह क्रम निरन्तर चलता रहा । 10फरवरी 1921 को फैजाबाद में एक विशाल जनसभा को सम्बोधित करते हुये गाँधी जी ने किसानों द्वारा की गई लूटपाट की घटनाओं तथा हिंसात्मक कार्यों पर खेद प्रकट किया ।[2]

अवध के किसान आन्दोलन ने निश्चय ही ब्रिटिश सरकार को सोचने के लिये मजबूर कर दिया जिसके परिणामस्वरूप अवध रेन्ट ऐक्ट जो कि आन्दोलन का तात्कालिक कारण था संशोधित कर दिया गया । 1921 में पारित किया गया नया अवध रेन्ट ऐक्ट फैजाबाद मंडल के तत्कालीन आयुक्त मैलकाम हेली के प्रस्तावों पर आधारित एक ऐसा समझौता -वादी दस्तावेज था जो न तो पूर्णतः किसानों को संतुष्ट कर सका और न ही जमींदारों को । इस ऐक्ट के अन्तर्गत जबरन बेदखली और नजराने की प्रथा का अन्त कर दिया गया तथा जोतदार को उसकी जमीन पर पूर्ण स्वामित्व निर्धारित लगान पर जो कि प्रत्येक दस वर्ष के पश्चात परिवर्तनीय था मिल गया ।[3] किसान आन्दोलन का एक दूरगामी परिणाम यह हुआ कि आने वाले संघर्ष के दिनों में किसानों तथा कांग्रेस का सम्बन्ध प्रगाढ़तर होता गया । स्वतंत्रता का आर्थिक स्वरूप क्या है ? इसका ज्ञान राष्ट्रीय नेताओं को किसान आन्दोलन के ही माध्यम से हुआ तथा उसी के पश्चात कांग्रेस द्वारा संचालित आन्दोलन सही अर्थों में एक राष्ट्रीय आन्दोलन बन सका ।[4]

1- " पायनियर ", 15 जनवरी, 1921

2- " लीडर ", 12 फरवरी, 1921

3- एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ यूनाइटेड प्राविन्सेज, 1921-22, पृ0 16

4- अवध का किसान आन्दोलन[लेख] वीर सिंह, नवजीवन, 15अगस्त,1981

::x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x::

"" अध्याय : पंचम ""

[ब] " सामाजिक - सांस्कृतिक विकास एवं पत्रकारिता "

::x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x::

समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने मद्यपान तथा मादक वस्तुओं की बिक्री का भी विरोध किया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सरकार ने अफीम तथा भाँग की खेती को प्रोत्साहन दिया। इसके परिणाम स्वरूप सरकार के राजस्व में तो आशातीत वृद्धि हुई परन्तु मादक वस्तुओं के प्रसार से जनता का स्वास्थ्य तथा कार्यक्षमता पर काफी खराब प्रभाव पड़ा। राष्ट्रीय विचारधारा के पत्र-पत्रिकाओं ने सरकार से अफीम, गाँजा तथा भाँग की खेती पर प्रतिबन्ध लगाने तथा नशीली वस्तुओं का विक्रय रोकने की माँग की। समाचार पत्रों नें मादक वस्तुओं के सेवन से होने वाले कुप्रभावों से जनता को आगाह करने के लिये विभिन्न प्रकार की सामग्री का प्रकाशन किया। सामाजिक संगठनों तथा समाचार पत्रों के प्रबल विरोध के बाद भी ब्रिटिश सरकार ने अफीम, भाँग तथा गाँजे की खेती पर रोक नहीं लगाई। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में शराब का उपयोग तथा चलन काफी बढ़ गया। सरकार की निरन्तर उपेक्षात्मक नीति के बाद भी समाचार पत्र सरकार का ध्यान मदिरा पान के दुष्परिणामों की ओर आकर्षित कराते रहे।[1]

1- "भारत में अधिकारियों को इस बात की परवाह नहीं कि अब वहाँ भी शराब की दुकाने खुल रही हैं वहाँ पहले नहीं थी। 1901 में देश में लगभग 6 करोड़ की शराब खर्च हुई। चक्र को आगे ही बढ़ाना चाहिये क्योंकि इसी में उन्नति है। इसी हिसाब से 1910-11 में देश में शराब का खर्च साढ़े दस करोड़ रुपये का हो गया। अकेले इंग्लैन्ड में हर साल 60 लाख गैलन शराब आती है। जिन लोगों के हृदयों में इस देश नाश को देखकर आह उठती हो, जो देश के स्वास्थ्य और जलवायु और उसकी अवस्था को देखते हुये सुरापान को हानिकारक और देश को दरिद्र निकम्मा और चरित्रहीन बनाने वाला समझते हो अपने प्रयत्न से सुरापान की हानियों को लोगों के कान तक पहुँचाने और उसकी रोक के लिये अपना नैतिक प्रभाव काम में लाये।"

§ सुरापान की भयंकरता, "प्रताप", 10मई, 1915, पृ० 4 §

1937 में संयुक्त प्रान्त में कांग्रेसी सरकार ने शराब बन्दी लागू की लेकिन उसके त्याग पत्र देने के बाद स्थिति पुनः पहले जैसी हो गयी । समाचार पत्र मादक वस्तुओं के प्रयोग पर सरकार की ओर से कोई आदेश जारी करा सकने में तो सफल नहीं हो सके लेकिन मादक वस्तुओं के खिलाफ लगातार जनता को आगाह करके वे स्थिति को नियन्त्रित करने में किसी सीमा तक सफल ही रहे ।

समाचारपत्र-पत्रिकाओं ने भारतीय समाज पर पाश्चात्य सभ्यता के पड़ रहे कुत्सित प्रभाव की ओर भी जनता का ध्यान आकृष्ट किया । फैशन, भौतिकवादिता, मद्यपान, शहरों के आकर्षण में गाँवों से पलायन तथा अन्य मामलों पर उन्होंने गहरी चिन्ता व्यक्त करते हुये सचेत किया कि भारतीय सभ्यता के अनुसार ही जीवनयापन करने में सबका कल्याण है ।[1]

1- " इस देश में, नशेबाजी उतनी कभी न थी, जितनी इस समय है । लोग सादगी से रहते थे - सादा भोजनथा और सादा ही कपड़ा । आचरण में भी बहुत सादगी थी । जीवन की कठिनाइयाँ और उनका भीषण संघर्ष भी इतना न था । पाश्चात्य देशों के रहन-सहन की हवा भी यहाँ नहीं आई थी । किन्तु, समय बदला, उसके साथ लोगों की दशा भी बदली । विदेशी शासक अपने साथ विदेशी आचरणों की सत्ता लाये । नशेबाजी-खासकर शराबखोरी-बुरी बात न रही, वह बड़े लोगों की बड़ी बात हो गई । ताड़ी और ठर्रा, गाँजा और अफीम का ढेर, व्हिस्की और ब्रांडी की बोतलों की सहायता से और भी बड़ा हो गया ——————— । उनका ध्यान इस बात की ओर भी जाना चाहिये कि नशेबाजी की आदत लोगों में अज्ञान, अधिक परिश्रम, बेकारी की चिन्ताओं और समय काटने के अच्छे साधनों

§ क्रमशः §

समाचार पत्रों की यह दृढ़ धारणा थी कि समानता व बंधुत्व पर आधारित समाज ही स्वतन्त्रता आन्दोलन का संचालन कर सकता था तथा भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की रक्षा कर सकता है। कांग्रेस के प्रायः सभी महत्वपूर्ण रचनात्मक कार्यक्रमों - कृषक आन्दोलन, ग्राम्य जागरण, नारी- जागरण, अछूतोद्धार, हिन्दू-मुस्लिम एकता, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार, चर्खा और खादी, मद्यपान निषेध, पिकटिंग इत्यादि में समाज को प्रगतिशील बनाने की सभी बातें विद्यमान थीं। समाचार पत्रों ने इसीलिये रचनात्मक कार्य क्रमों के प्रचार के लिये सक्रिय सहयोग दिया। राजनीतिक निष्क्रियता के वर्षों में कांग्रेस ने अपनी शक्ति रचनात्मक कार्यों में लगायी और जनता में निराशा नहीं पनपने दी। स्वतन्त्रता आन्दोलन के अनुकूल समाज को बाँधे

के न होने से भी बढ़ती है। छोटे बच्चों को तो जाने के लिये बहुत से स्थानों में अफीम खिलाई जाती है। अधिक परिश्रम की थकावट मिटाने के लिये, बहुत से मजदूरों को शराबखाने में जाना पड़ता है। बेकार लोग अपनी चिन्ता मिटाने के लिये बहुधा नशापत्ती के फेर में पड़ जाते हैं। बहुत से आदमी नशे के व्यसन में इसलिये पड़ जाते हैं कि उन्हें हँसी-खुशी के साथ समय काटने के अच्छे साधन नहीं मिलते। यदि, इन त्रुटियों के दूर करने की ओर भी, नशेबाजी के रोकने वालों का ध्यान गया, और उन्होंने कुछ काम किया, तो उससे लाभ होगा, और लोगों की दशा अवश्य सुधरेगी।"

‖ नशेबाजी की रोक, "प्रताप", 8 फरवरी, 1926 ‖

– रखने में कांग्रेस ने जो आशातीत सफलता प्राप्त की उसका आधार समाचार –पत्रों ने ही तैयार किया था ।[1]

1– " हम दहित पराधीनता से मुक्त तो होना चाहते हैं पर मानसिक पराधीनता में अपने आपको स्वेच्छा से जकड़ते जा रहे हैं । हमारी सभ्यता कृषि प्रधान थी । हम गाँवों में रहते थे जहाँ अपने आत्मीयों का संसर्ग बहुत सी बुराइयों से हमारी रक्षा करता था । पश्चिमी सभ्यता व्यवसाय प्रधान है और बड़े-बड़े नगरों का निर्माण करती है । हमारी सभ्यता में सम्मिलित कुटुम्ब एक प्रधान अंग था । पश्चिमी सभ्यता में परिवार का अर्थ है केवल स्त्री और पुरुष । दोनों में बुराइयाँ व अच्छाइयाँ हैं किन्तु जहाँ एक में सेवा और त्याग प्रधान है वहीं दूसरे में स्वार्थ और संकीर्णता । हमारी सभ्यता में नम्रता का बड़ा महत्व था, पश्चिमी सभ्यता में आत्मप्रशंसा को वही स्थान प्राप्त है । अपने आप को खूब सराहो और अपने मुँह खूब मियाँ – मिट्ठू बनो । हमारी सभ्यता में धन का स्थान गौण था, निष्ठा और आचरण से आदर मिलता था । पश्चिमी सभ्यता में धन ही मुख्य वस्तु है । हम भी धन कमाते हैं पर दया के साथ । पश्चिमी भी धन कमाता है पर दान के नाम पर नहीं । हमारी सभ्यता का आधार धर्म था, पश्चिमी सभ्यता का आधार संघर्ष है । लेकिन यहाँ हम अपने सद्गुणों की प्रशंसा करने नहीं बैठे हैं । हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि हममें हर पश्चिमी चीज के पीछे आँखे बंद करके चलने की जो प्रवृत्ति हो रही है उसका एकमात्र कारण हमारी मानसिक पराजय है ।"

[" हंस " जनवरी, 1931, पृ0 5]

हिन्दू समाज में कई बड़े क्रूर और अजनतांत्रिक तत्व थे। कुछ हिन्दुओं का अछूतों के रूप में पृथक्करण अत्यन्त अमानुषिक सामाजिक अत्याचार था। अछूतों को मन्दिरों में जाने का या सार्वजनिक कुओं और तालाबों के इस्तेमाल का अधिकार नहीं था और उनके स्पर्श मात्र से ऊँची जातियों के लोग अपवित्र हो जाते थे। हिन्दू समाज के अंग होते हुये भी अछूत इस समाज से बहिष्कृत जैसे थे। ब्रिटिश शासन काल में अंग्रेजों ने इस स्थिति का लाभ उठाकर हिन्दू धर्म में फूट डालने का प्रयास किया तो राष्ट्रीय नेताओं तथा समाचार पत्रों का ध्यान इस ओर गया। उन्होंने छोटी जातियों के प्रति युगों से चली आ रही इस भेद की भावना को समाप्त करने का प्रयास किया। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, समाज सुधार सम्मेलन, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जैसे राजनीतिक संगठनो, गाँधी जी द्वारा स्थापित अखिल भारतीय हरिजन संघ जैसी गैर राजनीतिक संस्थायें, इन सबने प्रचार, शिक्षा और अन्य व्यवहारिक उपायों द्वारा अछूतों को सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक अधिकार दिलाने की चेष्टा की। महात्मा गाँधी ने छोटी जातियों व अछूतो को " हरिजन " का नाम दिया। हिन्दू धर्म में अस्पृश्यता तथा जाति पाँति की भावना के फलस्वरूप ही उत्तर प्रदेश के कई स्थानों पर दलितों ने धर्म परिवर्तन का निर्णय कर लिया था। बदायूँ में सम्भावित इसी प्रकार के धर्म परिवर्तन की ओर हिन्दू समाज सुधारकों का ध्यान आकृष्ट करने के लिये गणेशशंकर विद्यार्थी ने एक विचारोत्तेजक संपादकीय जून 1925 में " प्रताप " में लिखा।[1]

1- " जब जरायम पेशा जाति या अन्य दलित जाति का कोई व्यक्ति ईसाई या मुसलमान हो जाता है, तो उसके शरीर और मन के सारे संस्कार बदल जाते हैं, और फिर न उस पर बेगार के दण्ड का प्रहार होता है, और न उस पर सरकारी कलंक का दाग ही रहता है।

| क्रमशः |

बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में " हरिजनों का मन्दिर में प्रवेश धर्म विरुद्ध " जैसा विवाद कट्टर सनातन धर्मियों ने शुरू किया था । वर्णाश्रम स्वराज्य संघ, वाराणसी के पत्र "पंडित" ने हरिजनों को मन्दिर में प्रवेश का अनाधिकारी बताया । महात्मा गाँधी ने हरिजनों

इन बातों से सरकारी नीति का कुछ पता लग सकता है । मौज मारने वाले स्वार्थान्ध लोगों का यही रोना है कि नीच लोग आजाद हो गये, तो फिर हमारी सेवा कौन करेगा ? सेवा करेंगे, आपके अपने हाथ पैर । भंगी नाम की कोई जाति न रहेगी, परन्तु भंगी रहेंगे । वे मैला उठाते हैं । सम्भव है उठाते रहेंगे । केवल अन्तर इतना ही होगा कि आज चार पैसे में आप जो गंदा काम करा लेते हैं और पुरस्कार में गालियाँ भी देते हैं, वह चार पैसे में न होगा, उसके लिये सम्भव है, 4/-रु0 तक खर्च हो और गालियाँ मुँह से निकालने की तो आपको उस समय दम ही न हो । यह सब आर्थिक समस्याओं की लीला है । सब तरह के काम करने वाले सब जमानों में रहेंगे । भंगी अपना काम नहीं करेंगे, तो उस काम के करने वाले ऊँची जाति के लोग पैदा हो जायेंगे, केवल उनकी उजरत बढ़ी हुई होगी ।"

§ " प्रताप ", 1 जून, 1925 §

का पक्ष लिया । राष्ट्रीय विचारधारा के पत्रों ने महात्मा गाँधी के विचारों को उचित बताया ।[1] 29 दिसम्बर, 1936 को " सनातन धर्म " में सनातन धर्म के प्रकाण्ड विद्वान पंडित प्रयागनाथ तर्कभूषण ने "अंत्यजों" के प्रति हमारा कर्त्तव्य में सिद्ध किया कि हरिजनों को विद्या एवं धर्म ज्ञान का पूर्ण अधिकार है । पत्र के इसी अंक में छुआछूत निवारण पर महात्मा गाँधी के विचार मदनमोहन मालवीय का लेख " अंत्यजोद्धार विधि " प्रकाशित हुआ । महात्मा गाँधी के रचनात्मक कार्यक्रमों, समाज सुधारकों के सतत् प्रयास तथा समाचार पत्रों के सक्रिय सहयोग से हरिजनों को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सवर्णों के समान अधिकार मिलने की प्रक्रिया का श्रीगणेश हो सका ।

1- तुम दीन हीन अतिशय मलीन, पर हरिजन हो तुम सत्य शुद्ध ।
न्योछावर तुम पर हुये नित्य कितने ही गाँधी, कृष्ण, बुद्ध ।।
तुम कितने निस्पृह वीतराग तुममे ही तो आर्यत्व शेष ।
कर सकता तुम पर गर्व आज यह पतित और पददलित देश ।।
ये सब सवर्ण हैं वर्ण हीन, कर्त्तव्यहीन संस्कृति विहीन ।
युग युग से हो बस तुम्हीं एक सद्धर्म और सत्कर्म लीन ।।

§ "हरिजन" §कविता§ रामनाथ गुप्त, "माधुरी", §
जनवरी, 1932

आर्य समाज, ब्रह्म समाज और अन्य धार्मिक सुधारवादी आन्दोलनों का उद्देश्य था कि बौद्धिक आधार पर भारतीय समाज का नवनिर्माण किया जाये। इसके नेताओं ने हिन्दू "सामाजिक व्यवस्था के प्रजातंत्रीकरण की दिशा में प्रयास किये। उन्होंने उन घोर सामाजिक अनीतियों के विरूद्ध संघर्ष किया जिनसे दलित वर्गों के हिन्दू पीड़ित थे और हिन्दू शास्त्रों की नई व्याख्या के आधार पर परम्परागत अनीतियों के उन्मूलन का उपदेश दिया। गैर धार्मिक सामाजिक सुधारवादी आन्दोलनों ने अपने पक्ष में वेदों का निर्णय उपलब्ध करवाने की चेष्टा किये बगैर व्यक्तिगत स्वातंत्र्य और मानवीय अधिकारों की समानता के नाम पर अस्पृश्यता और अन्य सामाजिक कुरीतियों तथा अनीतियों की भर्त्सना की। इसी क्रम में बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में उत्तरी भारत में एक नये आन्दोलन का जन्म हुआ जिसे "आदि हिन्दू आन्दोलन" के नाम से पुकारा गया। इसका मुख्य उद्देश्य दलितों के विकास और उन्नति के लिये कार्य करना था। आगरा, इटावा और कानपुर जिले में इस दिशा में लोग कार्य कर रहे थे। स्वामी हरिहरानन्द उर्फ अछूतानंद नाम के एक सज्जन इस कार्य के प्रधान सूत्राधार थे। इस आन्दोलन के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों पर प्रकाश डालते हुये गणेशशंकर विद्यार्थी ने अपने संपादकीय में लिखा कि मुसलमानो की चढ़ाई और हिन्दुओं की स्वाधीनता के नाश का एक प्रमुख कारण अछूतों के प्रति उनके द्वारा किया गया अन्याय है।[1]

1- " ———— " आदि हिन्दू " आन्दोलन के कार्यकर्ता दो दिशाओं की ओर बार बार दृष्टि फेंकते हैं। एक तो मुसलमान और ईसाई समाज की ओर, और दूसरी, गवर्नमेन्ट की तरफ। यदि, उनमें से कुछ लोग ईसाई और मुसलमान होना चाहते हैं, तो हमें, इससे अधिक कोई

[क्रमशः]

भारतीय समाज में व्याप्त एक अन्य निन्दनीय कुप्रथा "सती" के उन्मूलन हेतु भी संयुक्त प्रान्त की पत्र-पत्रिकाओं ने व्यापक अभियान छेड़ा। यद्यपि सती प्रथा पर विधि सम्मत प्रतिबन्ध तो 1829 में लार्ड विलियम बैंटिक के शासन काल में ही लग गया था किन्तु अंधविश्वास, धर्म आडम्बर, अशिक्षा तथा प्रतिक्रियावादी विचारों के प्रभाव से सती प्रथा पूरी तरह से समाप्त नहीं की जा सकी। उन्नीसवीं शताब्दी में संयुक्त प्रान्त में मिर्जापुर, जौनपुर, लखीमपुर खीरी, बुलन्दशहर, इटावा, कानपुर, बाँदा तथा बरेली जिलों में सती होने की घटनायें प्रायः होती रहती थीं। सूचना देर से मिलने के कारण स्त्रियों को अधिकांश स्थानों पर बचाया नहीं जा सकता था किन्तु तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने इसके लिये दोषी पाये जाने वाले लोगों के खिलाफ कड़ी कार्यवाही की। प्रगतिशील विचारों के प्रबुद्ध लोगों, समाजसुधारकों तथा राष्ट्रीय विचारों के राजनीतिज्ञों ने समय-समय पर सती प्रथा की निन्दा करते हुये जन सामान्य से इस निन्दित प्रथा को समाप्त करने में सहयोग देने की अपील

आपत्ति नहीं है, कि यदि यथार्थ में, उनकी आत्मा को इसलाम और ईसाईयत से शान्ति मिलती है तो वे खुशी से ईसाई और मुसलमान हो जायें और यदि वे सुविधाओं के लिये ईसाई और मुसलमान होना चाहते हैं, तो, हम ब कहेंगे कि वे बड़ी भूल करते हैं, वे थोड़ा सा उद्योग करें, हिन्दू समाज ही में उन्हें सब उचित और आवश्यक सुविधायें प्राप्त हो जायेंगी और केवल सुविधाओं के लिये, दूसरे सम्प्रदायों की शरण ग्रहण करना चरित्र शून्यता को प्रबल होने देना है, और बढ़ने देना है देश हित के विरुद्ध उन भावनाओं को, जोकि, इस समय, मुसलमान और ईसाई समाज में भारतीय राष्ट्रीयता के विरुद्ध पड़ रही है। —————— ।"

{ "प्रताप", 27 अप्रैल, 1925 }

समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने भी इस सम्बन्ध में विचारोत्तेजक लेख प्रकाशित किये ।[1]

1- " सच्चाई यह है कि हमारा तथाकथित प्रगतिशील समाज स्त्रियों को पुरुषों के समान सामाजिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रता देने के लिये तैयार नहीं है । वह किसी स्त्री को विधवा होने के बाद समुचित सुविधायें देने में अपने को अक्षम पाता है या यह कहें कि वह अपने दायित्व से कतराता है तो ठीक होगा । ———————
धर्म का अन्धानुकरण करने वाले लोग सती प्रथा के पक्ष में तमाम दलील देते हैं किन्तु वे किसी पढ़े लिखे व्यक्ति को संतुष्ट नहीं कर पाते हैं । सती प्रथा के सवाल पर धर्म को आड़े लाने का एक बढ़िया उदाहरण ऋग्वेद का है जिसकी एक पंक्ति ही धर्म के तथाकथित विद्वानो ने बदल दी । " अरोहंतु जनियो योनिम् अग्रे " को सती प्रथा जैसी क्रूर परम्परा को ऋग्वेद का समर्थन दिलाने के लिये सती प्रथा के समर्थकों ने उसे - " अरोहंतु जनियो योनिम् अग्ने " कर दिया जिसका अर्थ होता है कि माँ को अग्नि के गर्भ में जाने दो । धर्म विज्ञान के विद्वानो के अनुसार यह इन पंक्तियों का बदला हुआ रूप है । ऋग्वेद के साथ षड्यन्त्र किये जाने पर विख्यात जर्मन विद्वान मैक्समूलर ने क्षुब्ध होकर कहा था कि इसे तोड़ा मरोड़ा गया है । मैक्समूलर ने इसे अनैतिक पुरोहित्य का जघन्यतम उदाहरण बताया । मनुसंहिता के टिप्पणीकार मेधातिथि के अनुसार सती होना आत्महत्या तथा जबरन बलि देना है न कि धार्मिक अनुष्ठान । सिखों के पवित्र "गुरु ग्रंथ साहिब" में कहा गया है कि सती वह नहीं है जो अग्नि की लपटों के साथ भस्म हो जाये अपितु सती वह है जो अपने वैधव्य को साहस के साथ झेलती है ।"

§ संपादकीय, बाबूराव विष्णु पराड़कर, "आज" §
4 जून, 1925

बाल विवाह भी हिन्दू समाज की एक प्रमुख बुराई थी । पुत्री के विवाह के दायित्व से अतिशीघ्र मुक्ति पा लेने तथा अनेक धर्म ग्रन्थों के अनुसार रजोनिवृत्ति के पहले पुत्री का विवाह करके " पुण्य लाभ " पाने की इच्छा के कारण बाल विवाह का अत्यधिक चलन हुआ । बाल विवाह के कारण अनेक सामाजिक विकृतियाँ उत्पन्न हो गयी जिसका विरोध अनेक समाज सुधारकों ने किया । आर्य समाज ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम में इसे प्राथमिकता दी । ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के अथक प्रयास से 1860 में एक अधिनियम पारित हुआ जिसके अनुसार बालिकाओं के विवाह की न्यूनतम आयु दस वर्ष कर दी गई । इस अधिनियम से अपेक्षित सुधार की सम्भावना नहीं थी । समाचार पत्रों ने बाल विवाह के सम्बन्ध में 1860 में पारित अधिनियम में संशोधन की आवश्यकता अनुभव की । उन्होंने सामाजिक संगठनो द्वारा इस दिशा में किये जा रहे प्रयास सम्बन्धी समाचारों को प्रमुखता से प्रकाशित किया तथा बाल विवाह के विरुद्ध जनमत तैयार करने के लिये पृथक रूप से प्रयास किया ।[1]

1- " उत्तर प्रदेश सामाजिक सुधार संगठन की कार्यकारिणी ने 20 जनवरी, 1907 को लाला बैद्यनाथ की अध्यक्षता में सम्पन्न अपनी बैठक में निर्णय लिया कि आगामी ईस्टर में संगठन का पहला सम्मेलन किया जायेगा । कार्यकारिणी ने स्त्री शिक्षा, बाल-विवाह, जातीयता, पर्दा प्रथा तथा विदेशी यात्रा आदि के सम्बन्ध में सम्मेलन के विचारार्थ अपने प्रस्तावों का अनुमोदन किया ।"

| " इण्डियन पिपुल ", 14 फरवरी, 1907 |

अनेक समाचार पत्रों ने बाल-विवाह, शिशु हत्या, वैधव्य तथा सती प्रथा को एक कड़ी से जुड़ी बुराई करार दिया । यह भी अनुभव किया गया कि इन सबकी शिकार केवल स्त्री जाति होती है । महिलाओं को इन संकटों से मुक्ति दिलाये बिना सामाजिक विकास, नई चेतना तथा सुधार की बात करना बेमानी होगी । अंग्रेजी भाषा के पत्रों ने इन सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध एक अभियान छेड़ दिया ।[1]

आर्य समाज की विचारधारा से प्रभावित समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने महिलाओं के चतुर्मुखी विकास का बीड़ा उठाया । इसमें बाल विवाह का विरोध भी शामिल था । आर्य समाज की विचारधारा के पत्र वेद प्रकाश, §मेरठ§, आर्य विनय §मुरादाबाद§ आर्य भास्कर §लखीमपुर खीरी§ दयानन्द पत्रिका §मेरठ§, नवजीवन §वाराणसी§, भास्कर, भारत महिला आर्य समाचार §मेरठ§, आर्यकुमार §फतेहपुर§, वेदोदय §इलाहाबाद§, श्रद्धा §गुरूकुल कांगड़ी§, आर्य सन्देश §आगरा§, आर्य §मुरादाबाद§ तथा उषा हरिद्वार§ ने बाल - विवाह, अनमेल विवाह, शिशु हत्या के विरूद्ध सामाजिक संगठनों को अभियान प्रारम्भ करने के लिये प्रेरित किया । 1924 में हरि सिंह गौड़ ने दाम्पत्य

1- " महिलाओं को जन्म से ही अनेकानेक कष्टों का शिकार होना पड़ता है तथा सामान्य पारिवारिक अधिकारों से वंचित होना पड़ता है । शिशु हत्या, अशिक्षा, बाल विवाह, वैधव्य के पश्चात सती आदि सभी प्रकार की यंत्रणाओं की शिकार महिला को समाज में उचित स्थान न दिया गया तो हमारी सामाजिक प्रगति अर्थहीन ही रहेगी ।"

§ लेख : दयाराम गिदूमल, "लीडर", §

§ सितम्बर, 1911 §

सम्बन्ध की न्यूनतम अवस्था को 14 वर्ष तक करने का प्रस्ताव केन्द्रीय विधान -सभा में रक्खा तो प्रगतिशील तथा रचनात्मक कार्यों को प्रमुखता देने वाले समाचार पत्रों ने इसका समर्थन किया इस पर विचार करने के लिये हरिविलास शारदा समिति बनाई गई। उक्त समिति की संस्तुतियों को स्वीकार करते हुये सरकार ने 1929 में बाल विवाह निषेधक कानून बनाया जिसे " शारदा कानून " भी कहा जाता है। इसके तहत विवाह की न्यूनतम अवस्था लड़कियों के लिये चौदह वर्ष तथा लड़कों के लिये 18 वर्ष निर्धारित कर दी गई।

सामाजिक संगठनों ने अपनी सभाओं में प्रस्ताव पारित कर लड़के लड़कियों को समान रूप से शिक्षित करने, बाल-विवाह पर प्रतिबंध लगाने, विवाहादि में अधिक व्यय को नियन्त्रित करने तथा विधवा विवाह को प्रचारित करने की ओर अग्रसर हुये। ऐसे प्रस्तावों को समाचार पत्रों में उचित स्थान देकर उनकी भावनाओं को जनता तक पहुँचाने का दायित्व सँभालकर तत्कालीन समाचार पत्रों के संपादकों ने उल्लेखनीय कार्य किया। समाज सुधार के सम्बन्ध में भूमिहार ब्राह्मणों की सोशियल कान्फ्रेन्स इलाहाबाद में हुई। जिसमें विवाह और मृत्यु आदि के अवसरों पर अधिक व्यय न करने का प्रस्ताव पारित किया गया।[1] इसी प्रकार कमेटी ने नेटिव मैरेज एक्सपेंसेज " नामक निबन्ध प्रतियोगिता आयोजित की। इस प्रतियोगिता में प्रथम स्थान पर आने वाले को दो सौ रुपये इनाम के रूप में दिये गये। इस इनाम को फतेहपुर के ईश्वर दास ने जीता। "म्युनिसिपिल कमेटी बरेली" की यह कार्यवाही बरेली के "कोहिनूर" अखबार में प्रकाशित हुई। पर्दा प्रथा की समाप्ति हेतु भी समाचार पत्रों ने जनता को जागृत करने का प्रयास किया।[2]

1- " हिन्दोस्तान ", 27 जनवरी, 1901

2- " विश्व के प्रगतिशील देशों की पंक्ति में हम तब तक खड़े होने का साहस नहीं कर सकते जब तक कि हम पर्दा प्रथा समाप्त कर हम महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार नहीं दिला देते।"

§ "एडवोकेट", 16 नवम्बर, 1915 §

समाज में नारी की समुचित प्रतिष्ठा हेतु बाबू राव विष्णु पराड़कर ने "आज", "संसार" अखबारों तथा " कमला पत्रिका " में संपादकीय, लेख तथा समीक्षात्मक टिप्पणियाँ प्रकाशित कर संकीर्ण विचारधारा ग्रस्त मानसिकता को उद्बुद्ध किया । उनके इस कार्य में "आज" समाचार पत्र सर्वाधिक सशक्त माध्यम बना । "आज" में पराड़कर जी ने "विधवा विवाह और बहिष्कार," " स्त्री कोई वस्तु नही ", "वीर माता", "वीर पत्नी", तथा "वीर भ्राता" आदि शीर्षकों के अन्तर्गत नारी विषयक लेखमाला का प्रकाशन प्रारम्भ किया था । उन्होंने "बूढ़े की कामुकता " शीर्षक से एक अग्रलेख "आज" में तब लिखा जब काशी के प्रख्यात आयुर्वेद चिकित्सक त्र्यम्बक शास्त्री ने बहत्तर वर्ष की आयु में एक नवयौवना से सातवीं शादी रचायी ।

नारी के लिये वैधव्य इतना बड़ा अभिशाप था कि इस स्थिति को प्राप्त नारी एक प्रकार से समाज के लिये कलंक स्वरूप समझी जाती थी । इसीलिये विधवा विवाह के प्रति जागरूक-मानसिकता ने एक आन्दोलन चलाया और उस आन्दोलन को समाचार पत्रों ने भरपूर गति प्रदान की । "आज" के तत्कालीन संपादक बाबू राव विष्णु पराड़कर समाज में विधवा नारी की अवमानना से अत्यन्त क्षुब्ध रहते थे । वह उनकी स्थिति में सुधार के पक्षधर थे । नारी समाज के प्रति हो रहे अत्याचारों पर उन्होंने अपनी लेखनी से सशक्त चोट की । विधवाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिये तो पराड़कर जी ने कोटिशः विरोधों को झेलकर विधवा से विवाह तक किया । उन्होंने विधवा-विवाह विषयक शास्त्रीय प्रमाणों के साथ तत्कालीन पंडित समाज से शास्त्रार्थ भी किया ।

पराड़कर जी के इस वैवाहिक कृत्य के सहयोगी थे :
गणेश शंकर विद्यार्थी तथा माधव राव सप्रे । विद्यार्थी जी ने उन्हें साधुवाद देते हुये 19 मई, 1926 को पत्र लिखा जो समस्त समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ ।[1] इतना ही नही विद्यार्थी जी ने इस विवाह का विधिवत निमंत्रण पत्र भी अपने हस्ताक्षर से वितरित कराया ।[2]

1- " ------------ यदि आप चाहेंगे कि यहाँ के कुछ सज्जन उस अवसर पर उपस्थित रहे तो यहाँ पर ऐसे भले आदमियों की संख्या काफी मिल जायेगी ।---------- इस सम्बन्ध में जो सेवा मैं कर सकूँगा, उसके लिये आप निःसंकोच भाव से आज्ञा प्रदान कीजिये । यदि मुझसे कुछ भी बन पड़ा तो अपना सौभाग्य समझूँगा ।

{ गणेश शंकर विद्यार्थी द्वारा "आज" के संपादक बाबू राव विष्णु पराड़कर को 19 मई, 1926 को लिखे पत्र का अंश }

2- " आज शाम को 6 बजे डॉ0 मुरारीलाल के बंगले पर"आज" समाचार पत्र के संपादक पंडित बाबू राव विष्णु पराड़कर का विवाह संस्कार बाल विधवा श्रीमती सरस्वती बाई के साथ होगा । जिन सज्जन और देवियों के नाम नीचे लिखे हुये हैं उनसे सादर प्रार्थना है कि वे इस संस्कार के समय डाक्टर साहब के बंगले पर पधारें और वहीं जलपान करें ।"

{ गणेश शंकर विद्यार्थी द्वारा पराड़कर जी के विवाह में सम्मिलित होने हेतु "प्रताप" कार्यालय, कानपुर से दिनांक 26 जून,1926 को वितरित निमंत्रण पत्र }

22 सितम्बर, 1923 ई0 को पं0 मदन मोहन मालवीय के सभापतित्व में " हिन्दू महासभा " का अधिवेशन हुआ । इस अधिवेशन में अन्य प्रस्तावों के साथ " काशी महिला परिषद " की स्थापना का प्रस्ताव भी पारित हुआ किन्तु विधवाओं के पुनर्विवाह के प्रश्न पर हिन्दू महासभा के नेता मौन रहे । इस अवसर पर बोलते हुये "गृह लक्ष्मी " पत्रिका के संपादक ने हिन्दू महासभा के नेताओं पर कटाक्ष किया ।[1] "वन लता " पत्रिका के

1- " ------------ जो प्रस्ताव पास हुये वे महासभा में न रक्खे जाते तभी अच्छा था । आज कल विधवाओं की क्या दुर्दशा हो रही है इसको जानते हुये भी किसी ने इस पर ध्यान नहीं दिया और न सभापति महोदय ने इस पर कुछ राय जाहिर की । यद्यपि यह एक ऐसी बात है जिसको इस प्रकार न टाल देना चाहिये था । हमारी समझ में तो आज कल हमारी विधवा बहनों की स्थिति अछूतों से भी गई गुजरी है । आश्चर्य यही है कि जो अछूतों के उद्धार में तन मन से लीन हैं तथा जो अपने बिछुड़े भाई बहनों को गले लगाये बिना एक मिनट भी नहीं रह सकता – उसी के हृदय में विधवाओं की आह का असर तक न हो ? हिन्दू महासभा को यह ध्यान रखना चाहिये कि विधवाओं के गरम आँसू उनकी जड़ कदापि मजबूत न होने देंगे ।"

§ "गृह लक्ष्मी" वर्ष 14, दर्पण 6, संवत् 1980 §
§ 1923 ई0 § पृ0 352 §

- संपादक ने भी " विधवाओं की व्यवस्था " शीर्षक से एक विचारोत्तेजक संपादकीय अपनी पत्रिका में प्रकाशित किया ।[1] समानता और स्वतन्त्रता के सिद्धान्तों पर आधारित नई सामाजिक वैधानिक संरचना स्थापित करने में, बीसवीं शताब्दी के तीसरे और चौथे दशक में इलाहाबाद से प्रकाशित " चाँद " पत्रिका ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई । स्त्रियों की निकृष्ट स्थिति को भी पवित्र बताने वाले धार्मिक विधानों को "चाँद" ने प्रतिक्रियावादी तथा अनैतिक करार दिया । "चाँद" के संपादक रामरिख सिंह सहगल ने लिखा कि "चाँद" ब्रिटिश सरकार से छुटकारा दिलाने के लिये जहाँ निर्भीकता पूर्वक जन जागृति में योग करता रहेगा वहाँ समाज को धर्म के नाम पर जकड़ी बेड़ियों से मुक्ति भी दिलायेगा । "चाँद" के बहुचर्चित "मारवाड़ी अंक " में सामाजिक पापाचार, पर्दा प्रथा, मारवाड़ियों द्वारा विधवा विवाह का विरोध, मारवाड़ियों में प्रचलित "बाल विवाह" आदि विषयों पर विचारोत्तेजक लेख प्रकाशित किये गये । सरकार ने इस अंक को जब्त कर लिया था ।[2]

1- " ———— हर्ष है देश में स्त्री शिक्षा की सामाजिक और धार्मिक उपयोगिता का महत्व लोग समझने लगे हैं । इसका फल यह हुआ कि जन साधारण में स्त्री शिक्षा की रुचि बढ़ रही है विशेषकर हमारी विधवा बहनों के दारुण दुःख की कथा हमें अब अधीर बना रही है, और धर्म, समाज के नाते हम उनकी सहायता में आज कल रत हो रहे हैं । स्थान-स्थान पर विधवा आश्रम खोले जा रहे हैं ।"

§ " वनिता ", फरवरी, 1924, पृ0 87 §

2- " चाँद " " मारवाड़ी अंक ", नवम्बर, 1929

" चाँद " ने " अनिवार्य वैधव्य जीवन " §व्यंग्य§, विभिन्न प्रान्तों में विधवा विवाह की समस्या ", "विधवाओं की उपेक्षा आखिर कब तक ", " चलती हुई जिन्दा लाशें", "बाल विधवा का दर्द", "सब बुराइयों की जड़ बाल विवाह", "विधवाओं को भी जीने का हक", " विधवायें माँ, बहनें और बेटी भी हैं " तथा "विधवाओं को सताये जाने से बचायें" जैसे शीर्षकों से मर्मस्पर्शी लेख प्रकाशित किये ।[1]

1- " भारत की स्थिति राजनीतिक व आर्थिक रूप से खराब है ही, सामाजिक रूप से भी उसका पतन हो रहा है, जिस देश में प्रति एक हजार में 175 विधवायें हों उसे किसी तरह भी सभ्य नहीं कहा जा सकता । 1921 में भारत में 1 से 5 वर्ष तक की 243260, 5 से 10 वर्ष की 1435241 तथा 10 से 15 वर्ष की 5354434 विधवायें थी । 15 वर्ष से कम आयु की 7032935 विधवायें थीं । आखिर इनका दोष क्या है । विवाह शब्द का मतलब जाने बिना उन्हें विवाह बंधन में बाँध देने के लिये रूढ़िवादी समाज ही जिम्मेदार है । समाज सुधारकों व प्रगति शील विचारों के लोग यदि इन निर्दोष विधवाओं के जीवन में पुनः एक बार सुख का संचार करना चाहते हैं तो उन्हें पढ़े लिखे लोगों को विधवा विवाह के लिये तैयार करना पड़ेगा ।"

§ शीतलाप्रसाद सक्सेना, "विधवा विवाह " §लेख§ §

§ " चाँद " , दिसम्बर, 1931, पृ0 235 §

" दम्पत्ति " पत्रिका ने भी नारी समस्याओं के समाधान हेतु जनमत तैयार करने में भरपूर सहयोग दिया । इस पत्रिका में " भारतीय समाज में स्त्रियों की दुर्दशा " तथा " स्त्रियों की भयंकर गुलामी" आदि शीर्षकों से लेखों का प्रकाशन हुआ । इन लेखों में विधवा विवाह की सापेक्षता पर भरपूर जोर दिया गया ।[1]

1- " ———————— इन विधवा बहनों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि गुप्त व्यभिचार महान अनर्थकारी है और विवाह करके रहना व्यभिचार नहीं है किन्तु तृष्टि की उत्तम क्रिया है । जैसे - विधुर पुरुष को काम भाव की तृप्ति या संगति के लिये विवाह करना उनके जीवन का रक्षक है, उनको महान व्यभिचार आदि पापों से बचाने वाला है उसी तरह से विधवा स्त्री को अपने सन्तोष के लिये और जीवन यात्रा में अकेले रहकर आँसू बहाने से बचाने या पेट की ज्वाला शान्त कराने के लिये विवाह का अधिकार है और पुनर्विवाह द्वारा अपने ब्रह्मचर्य व्रत के रक्षा करने का उन्हें हक है ———————— । "

" ———————— ऐ भोली बहनों ! अपनी गुलामीपन छोड़ो । अपने हकों को पहचानो और स्वार्थी पुरुषों के द्वारा अपने हकों को कुचलने न दो । अब भी यदि महिला समाज अग्रसर न होगा तो कभी भी समाज सुधार नहीं हो सकेगा ———————— ।"

(" दम्पत्ति ", अगस्त, 1930, पृ0 72-73)

अशिक्षा, जाति प्रथा, ऊँच नीच की भावना तथा पारम्परिक रीति रिवाजों की विकृति के कारण दहेज उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में एक प्रमुख सामाजिक कुरीति के रूप में प्रकट हुआ। वैदिक युग के ब्राह्म विवाह में कन्या को अलंकृत करके देने की प्रथा का विकास दहेज के रूप में हुआ। प्राचीन काल तथा मध्यकाल में इसका स्वरूप भिन्न था। बालिकाओं के पिताओं में अपनी पुत्री के सुयोग्य वर से शीघ्र विवाह की होड़ ने विवाह योग्य लड़कों के पिताओं को दहेज आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त लाभकारी साधन दिखा। पुत्री के विवाह के लिये माता-पिता का कर्ज के भार से लद जाना, वर के पिता द्वारा असीमित धन की माँग करना, धन के अभाव में सुयोग्य किन्तु निर्धन बालिकाओं का अविवाहित रह जाना तथा दहेज की मानसिक यंत्रणा के कारण माता पिता या बालिकाओं द्वारा आत्महत्या कर लेना दहेज से जुड़े ऐसे मार्मिक पक्ष थे जिनसे पूरा समाज प्रभावित था। दहेज के कारण कन्याओं की उपेक्षा, अनैतिकता, बेमेल तथा वृद्ध विवाह जैसी बुराइयों को बल मिला। समाचार पत्रों ने इस प्रमुख सामाजिक कुरीति के विरुद्ध जनता में चेतना लाने के लिये लेख, समाचार तथा व्यंग्य के रूप में दहेज का विरोध किया।[1] दहेज प्रथा के कारण —

1- कायस्थ पत्रिका ने लड़के के पिता पर व्यंग्य करते हुये लिखा था कि एक लड़के का पिता, जिसके पास अपना घर नहीं और जो एक किराये के मकान में रहता है, वह अब लड़के की शादी करके दुमंजिले मकान का स्वामी बनना चाहता है। वह कर्ज में डूबा हुआ है किन्तु बेटे के ब्याह से अपना सारा कर्ज उतारना चाहता है, वह अपने बेटे को आई०सी०एस० बनाने के लिये इग्लैन्ड भेजना चाहता है, उसके पास धन नहीं। इसलिये लड़के की शादी से उसे यह धन अवश्य प्राप्त करना चाहिये। —

(क्रमशः)

पुनः सम्पादक ने अपनी पत्रिका के अगले अंक में " दहेज का भाड़ " शीर्षक से इस घृणित कुप्रथा पर तीखा प्रहार किया ।[1] तत्युगीन सभी पत्र-पत्रिकाओं ने दहेज प्रथा का जमकर विरोध किया जिसके कारण दहेज की माँग करने वालों में निश्चय ही भय उत्पन्न हुआ और इस कुप्रथा में कुछ कमी आई ।

भारत में आधुनिक शिक्षा के प्रसार का श्रेय विदेशी ईसाई मिशनरियों, ब्रिटिश सरकार और प्रगतिशील भारतीयों को है । ईसाई मिशनरियों ने आधुनिक शिक्षा के प्रसार के लिये प्रथम प्रचारक की भूमिका निभाई । मिशनरियों द्वारा आरम्भ की गई आधुनिक शिक्षा के पूर्व शिक्षा का कार्य धर्माचार्यों तथा धार्मिक संगठनों के पास था । अति राष्ट्रीयतावादी विचारों के कारण यह शिक्षा केवल भारत के अतीत को आदर्श रूप में प्रस्तुत करती थी । आधुनिक युग के आविष्कार, अन्वेषण, भौतिकी, रसायन, प्राणिशास्त्र तथा अभियन्त्रण के सारे सिद्धान्तों से यह शिक्षा अछूती थी । गाँवों तथा तहसील स्तरों पर स्कूल थे जिनमें शिक्षा का माध्यम संस्कृत था । यह शिक्षा ब्राह्मणों द्वारा नियन्त्रित और प्रचालित हिन्दू समाज की समस्त संस्कृति का विशिष्ट अंग थी किन्तु इसका उपयोग मूलतः जाति व्यवस्था को सार्वजनीन मान्यता और स्वीकृति प्रदान करने तथा "वेदों" की सत्यता एवं उनकी व्याख्या परिभाषित करने में ब्राह्मणों की दक्षता में आस्था जमाने के लिये साधन के रूप में किया गया । इस शिक्षा का उद्देश्य यह था कि व्यक्ति समाज की श्रेणीबद्ध संरचना को स्वीकार कर लें,

---

1- " ——— दहेज का भाड़ सुलग रहा है और उसमें बालिकायें ईंधन की भाँति झोंकी जा रही हैं । शिक्षा के साथ यह बुराई बढ़ी ही है घटी नहीं ——— । "

| " दीदी ", मार्च, 1947, पृ0 104 |

और अपने व्यक्तित्व को उसके आधीन रक्खे । मुसलमानों के बीच में इस्लाम के प्रजातान्त्रिक स्वरूप के कारण शिक्षा पर किसी वर्ग विशेष का एकाधिकार नहीं था । मदरसे में कोई भी मुसलमान शिक्षा ग्रहण कर सकता था । "कुरान" अरबी भाषा में लिखा इस्लाम का प्रमुख ग्रन्था था । इसलिये यह विदेशी भाषा मुसलमानों के बीच समस्त शिक्षा का माध्यम थी । कुछ ऐसे स्कूल भी थे जहाँ दूसरे विषयों के अतिरिक्त फारसी की भी पढ़ाई होती थी । फारसी इस्लामी संस्कृति और प्रशासन की भाषा थी । इस शिक्षा से छात्रों में व्यक्तित्व तथा बुद्धिवाद का विकास नहीं हो पाता था । यह शिक्षा छात्रों को कट्टर हिन्दू या मुसलमान बनाती थी अथवा अपने धर्म द्वारा समर्थित - सामाजिक संरचना का अविवेकी अनुयायी ।

भारत में ब्रिटिश शासन द्वारा आरम्भ में शुरू की गई शिक्षा का लक्ष्य धार्मिक होने के बाद भी भारतीयों को शिक्षा के संकीर्ण दायरे से बाहर निकालना था । समाचार पत्रों ने शिक्षा की आवश्यकता पर सर्वाधिक बल देते हुये उसे राष्ट्रीयता के तीन प्रधान स्तम्भों में स्थान दिया ।[1]

1- " शिक्षा, स्वदेशी तथा स्वराज्य - राष्ट्रीयता के तीन प्रधान स्तम्भ हैं । जिसे समय तक कि तुम अपने परिश्रम तथा प्रयत्नों द्वारा उन्हें सुदृढ़ न कर लो उस समय तक विश्राम न लो —————— "

" जब मैं "शिक्षा" शब्द का प्रयोग करता हूँ तो समझ लो कि मेरा सम्पूर्ण सिद्धान्त इस महान शब्द के अन्तर्गत तथा सार रूप में उसके भीतर समाविष्ट है । वर्तमान समय के आन्दोलन में सबसे अधिक महत्व तथा गौरव का प्रश्न शिक्षा का प्रश्न है । ——

§ जोजफ मैजिनी का कथन : राष्ट्रीय शिक्षा विशेषांक, §
§ " प्रताप " , संवत् 1972 §

उन्होंने शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुये भारत तथा विदेशों में शिक्षा के स्वरूप का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया ।[1]

1- यदि हम संसार के केवल प्रारम्भिक अर्थात एलिमेन्टरी स्कूलों में पढ़ने वाले बालक तथा बालिकाओं पर दृष्टि डाले, तो पता लगता है कि जर्मनी में कुल साढ़े 6 करोड़ आबादी में से 51 लाख, 69हजार, बालक तथा 61 लाख, 66 हजार, बालिकायें वहाँ के प्रारम्भिक स्कूलों में शिक्षा पाती हैं । जापान की साढ़े पाँच करोड़ आबादी में वहाँ के प्रारम्भिक स्कूलों के विद्यार्थियों की संख्या 72 लाख है । इग्लैन्ड, स्काटलैन्ड व आयरलैन्ड अर्थात ग्रेट ब्रिटेन की साढ़े 4 करोड़ आबादी में से वहाँ के प्रारम्भिक स्कूलों में पढ़ने वालों की संख्या 84 लाख से ऊपर है । यूनाइटेड स्टेट्स अमरीका की 9 करोड़ आबादी में से एक करोड़ 86 लाख प्रारम्भिक स्कूलों में जाती हैं । इन समस्त देशों में प्रारम्भिक स्कूलों में पढ़ने वाले बालक तथा बालिकाओं की पृथक पृथक संख्यायें लगभग बराबर हैं । दूसरी ओर भारत की 31करोड़ आबादी में से केवल 44 लाख § 44,52,105§ बालक तथा आठ लाख बालिकायें §8,33,788§यहाँ के सरकारी प्रारम्भिक स्कूलों में शिक्षा ग्रहण करती हैं । इसके अतिरिक्त समस्त देश की प्राइवेट संस्थाओं में कुल मिलाकर § 5,91,754 § बालक तथा § 77,336 § बालिकाओं को शिक्षा दी जाती है । बंगाल प्रान्त शिक्षा के विचार से भारत के अन्य समस्त प्रान्तों का अग्रगामी है । बंगाल की आबादी इग्लैन्ड, स्काटलैन्ड व आयरलैन्ड की आबादी को मिलाकर ठीक बराबर है तथापि जब कि इग्लैन्ड, स्काटलैन्ड, आयरलैन्ड के केवल प्रारम्भिक स्कूलों में 84 लाख विद्यार्थियों की शिक्षा व्यवस्था है, बंगाल के प्रारम्भिक मिडिल तथा हाईस्कूलों में सब मिलाकर केवल साढ़े 15लाख बालक तथा बालिकाओं को शिक्षा दी जाती है ।

§ " प्रताप ", राष्ट्रीय शिक्षा विशेषांक, संवत्‌ 1972 §

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में स्त्री-शिक्षा का प्रसार तो लगभग नगण्य था । केवल राज घरानो तथा अत्यधिक सम्पन्न घरानो में ही स्त्रियों को सामान्य शिक्षा दिये जाने की व्यवस्था थी । मध्यम तथा साधारण वर्ग की स्त्रियों के लिये सार्वजनिक रूप से शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी । समाचार पत्रों ने स्त्रियों की शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुये लोगों को अपनी पुत्रियों को शिक्षा दिलाने के लिये प्रोत्साहित किया ।[1] 1823 में श्रीमती मोरिस ने वाराणसी में एक बालिका विद्यालय खोला । 1837-38 के दौरान मिशनरियों ने कई बालिका विद्यालय खोले । 1855 में लेफ्टिनेन्ट गवर्नर जे0आर0 काल्विन ने स्त्री शिक्षा के प्रसार पर विशेष ध्यान दिया । काल्विन के इस प्रयास का समाचार पत्रों ने स्वागत किया ।[2]

1- " स्त्रियों में सन्तोष और नम्रता और प्रीति यह सब गुण कर्ता ने उत्पन्न किये हैं केवल विद्या की ही न्यूनता है । यदि यह भी हो तो स्त्रियाँ अपने सारे ऋण से चुक सकती हैं और लड़को को पढ़ाना, सिखाना जैसा उनसे बन सकता है पुरुषों से नही हो सकता है । यह कार्य उन्हीं का है कि शिक्षा के कारण बाल्या- - वस्था में लड़को को भूल चूक से बचावें और सरल विद्या उन्हें सिखाये । जो स्त्री विद्या से विहीन है वह बालको के चित्तरूपी क्षेत्र में विद्या का बीज कैसे बो सकती है ।"

§ " बुद्धि प्रकाश " §आगरा§, 31 अगस्त, 1853§

2- सर डब्लू हन्टर रिपोर्ट आफ इन्डियन एजूकेशन कमीशन आफ 1882, पृ0 73

स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रमों में राष्ट्रीय शिक्षा पर विशेष बल दिया गया था । राष्ट्रीय शिक्षा के अन्तर्गत स्त्री शिक्षा के विकास के लिये कांग्रेस समर्थक समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने विशेष प्रयास किये ।[1] " चाँद " तथा " माधुरी " में विदुषी महिलाओं के लेख चित्र सहित प्रकाशित होते थे । शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रियों की विशिष्ट उपलब्धियों तथा प्रयास को ब्योरेवार प्रकाशित किया जाता था । महादेवी वर्मा के संपादन काल में "चाँद" में स्त्री शिक्षा प्रसार के लिये वातावरण तैयार करने तथा स्त्रियों के बहुमुखी विकास के लिये अवसर दिये जाने पर विशेष रूप से बल दिया गया । "बाला बोधिनी", "स्त्री धर्म शिक्षक" आदि महिला पत्रिकाओं ने भी स्त्री शिक्षा के प्रसार तथा स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा के लिये लोगों का ध्यान आकर्षित किया । "आशा" पत्रिका ने सुभाषचन्द्र बोस के चित्र के साथ उनके आह्वान को प्रकाशित किया जिसमें सुभाष बाबू ने स्त्री शिक्षा पर बल दिया था ।[2]

1- " किसी भी देश की प्रगति के लिये वहाँ के बालक, बालिकाओं को पर्याप्त शिक्षित किया जाना बहुत आवश्यक है किन्तु भारत में समस्त बालक बालिकायें जो प्रारम्भिक स्कूलों में पढ़ने योग्य हैं, 69 फीसदी बालक तथा 95 फीसदी बालिकायें ऐसी हैं जिन्हें किसी प्रकार की शिक्षा नहीं दी जाती । भारत में अगर राष्ट्रीय शिक्षा पर ध्यान नही दिया गया तो राष्ट्र को प्रगति पथ पर ले जाने की बात बेमानी होगी।"

{ राष्ट्रीय शिक्षा, "प्रताप" {विशेषांक} सम्वत् 1972,पृ021 }

2- " देशोत्थान के लिये स्त्री शिक्षा और युवकों की जागृति परमावश्यकीय है किन्तु स्त्री शिक्षा का आदर्श हमारा प्राचीन वीर क्षत्राणियों का धर्म होना चाहिये यूरोप की पाउडरमुखी लेडियाँ नहीं ।"

{ "आशा" वर्ष 2, अंक 4, सन् 1928 }

" कमला " पत्रिका ने स्त्री शिक्षा के प्रसार पर बल देते हुये सरकार द्वारा शिक्षा को "स्त्री शिक्षा " और "पुरुष शिक्षा" में विभक्त करने का विरोध किया ।[1]

समाचार पत्रों द्वारा शिक्षा का प्रसार करने के लिये सरकार पर पड़ रहे दबाव के कारण 1921 में उत्तर प्रदेश हाई स्कूल एण्ड इन्टर-मीडियट बोर्ड की स्थापना हुई । 1921 में असहयोग आन्दोलन के दौरान कांग्रेस ने विद्यार्थियों से सरकार द्वारा चलाये जा रहे स्कूलों का बहिष्कार

1- " ———— शिक्षा को लोकप्रिय बनाने के लिये सबसे पहले यह आवश्यक है कि उसका भारतीकरण किया जाये । वर्तमान समय में भारतीय दिल व दिमाग को शान्ति देने वाली भारतीय परम्परा के अनुकूल शिक्षा ही आदर्श नागरिक और नागरिकायें पैदा कर सकती है । "शिक्षा" के साथ लगी हुई "स्त्री" और "पुरुष" की दीवारें शिक्षा की प्रगति में बाधक हैं । यूरोप में भले ही यह विवाद चला हो कि स्त्री, पुरुष के मस्तिष्क समान नहीं होते इसलिये वे कभी समान रूप से ज्ञानार्जन नहीं कर सकते । पर भारत में इस प्रकार के सवाल कभी नहीं उठे । यहाँ स्त्री-पुरुष के अधिकारों को और विशेषक ज्ञानप्राप्ति के जन्मसिद्ध अधिकारों को इस बीसवीं शताब्दी में भी सीमित कर देना हमारी दासता का ही काम है —— ———— ।"

§ "कमला" भारतीय नारी और उसकी शिक्षा §लेख§ §
§ चन्द्रपाल बाजपेयी, सितम्बर, 1939 §

करने की अपील की । वैकल्पिक व्यवस्था के अन्तर्गत जिला स्तर पर अनेक शिक्षा संस्थायें खोली गई । प्रान्तीय स्तर पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति के आदर्श वाली संस्था काशी विद्यापीठ, वाराणसी में खोली गई । आचार्य कृपलानी, आचार्य वीरबल सिंह, पं0 कमलापति त्रिपाठी, श्रीप्रकाश जैसे अग्रणी राजनीतिक इस संस्था से सम्बद्ध रहे । महात्मा गांधी ने काशी विद्यापीठ का शिलान्यास 10 फरवरी, 1921 को किया । इस अवसर पर उन्होंने कहा कि प्रभु से मेरी प्रार्थना है कि इस विद्यापीठ की प्रतिदिन प्रगति हो और यह इस राक्षसी सल्तनत को मिटाने या दुरुस्त करने में हिस्सा ले ।[1]

1935 के अधिनियम से प्राप्त प्रान्तीय स्वायतत्ता के बाद हुये चुनाव में कांग्रेस विजयी हुई और 17 जुलाई, 1937 को पं0 गोविन्द बल्लभ पंत के नेतृत्व में कांग्रेसी मंत्रिमण्डल ने शपथ ग्रहण की । मंत्रिमण्डल में पहले शिक्षा मंत्री पं0 प्यारेलाल शर्मा हुये उनके पश्चात शिक्षा मंत्री का पद सम्पूर्णानन्द ने ग्रहण किया । सम्पूर्णानन्द प्रख्यात शिक्षा शास्त्री तथा प्रकान्ड विद्वान थे । वाराणसी से प्रकाशित राष्ट्रीय विचारधारा के पत्र " आज " ने रचनात्मक कार्यों में शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता देने का सुझाव दिया । डॉ0 सम्पूर्णानन्द के प्रयास से वर्धा शिक्षा प्रणाली के अनुसार अध्यापकों को प्रशिक्षण देने के लिये स्कूल खोले गये । प्रौढ़ शिक्षा के लिये कदम उठाये गये । स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिये अनेक योजनायें बनायी गयी । सितम्बर, 1938 में वाराणसी में स्त्रियों के लिये एक प्रशिक्षण विद्यालय की स्थापना की गई । हरिजनों की शिक्षा के प्रबन्ध के लिये एक विशेष शिक्षा समिति बनायी गयी ।

1- " लीडर ", 13 फरवरी, 1921, पृ0 3

हरिजनों को कार्य सिखाने के लिये प्राविधिक संस्थायें खोली गयी। पूरे प्रदेश में लगभग तीन हजार वाचनालय तथा सात सौ पुस्तकालय भी खोले गये।[1]

राष्ट्रीय विचारधारा के समाचार पत्रों ने प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा के स्तर में सुधार हेतु निरन्तर जोर दिया जिसके फलस्वरूप संयुक्त प्रान्त की सरकार ने 4 अगस्त, 1939 को आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। आचार्य नरेन्द्र देव समिति में श्रीप्रकाश, पं0 इकबाल नारायण गुर्टू, प्रो0 मोहम्मद हबीब, लेफ्टिनेन्ट कर्नल टी0एफ0 ओडोनेल तथा प्रो0 परमानन्द जैसे शिक्षा शास्त्री भी थे। समिति ने अत्यन्त निष्ठा के साथ प्रदेश के विभिन्न भागों में जाकर शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन किया। समिति के सदस्यों ने महामना मदनमोहन मालवीय, डॉ0 राधाकृष्णन, सर गंगा नाथ झा, ए0एन0झा, डॉ0 ताराचन्द्र, डॉ0सी0 पी0 रंगास्वामी, सर मारिस गायर, डा0 जियाउद्दीन अहमद, डॉ0 जाकिर हुसैन, ए0एल0 मुदालियार, आर0पी0 परांजपे, आशुतोष मुकर्जी तथा ज्ञानेन्द्र नाथ चक्रवर्ती सरीखे प्रकांड विद्वानों की सहायता और परामर्श लिया। अनेक समाचार पत्र इस पक्ष में थे कि संयुक्त प्रान्त में प्रारम्भिक शिक्षा के जनक एन0 जे0 थामसन के समय में की गई व्यवस्था में अनेक परिवर्तन किये जाने चाहिये। शिक्षा विभाग में कार्यरत अनुभवी आंग्ल भारतीय अधिकारियों ने समिति को शिक्षा के आधारभूत ढांचे के बारे में उपयोगी सुझाव दिये। महात्मा गांधी ने वर्धा शिक्षा सम्मेलन में बहुत पहले ही प्रारम्भिक शिक्षा की अपनी परिकल्पना को स्पष्ट कर दिया था। संयुक्त प्रान्त के समाचार पत्रों ने महात्मा

1- गोविन्द सहाय, यू0पी0 कांग्रेस सरकार के अब तक के कार्य, पृ070

– गाँधी द्वारा सुझायी गई शिक्षा पद्धति को लागू करने का आग्रह किया ।[1]

आचार्य नरेन्द्र देव समिति ने अपनी संस्तुतियों को कई चरणों में लागू करने का सुझाव दिया । इलाहाबाद से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक "लीडर" ने आचार्य नरेन्द्र देव समिति की संस्तुतियों को उपयोगी मानते हुये उसकी कुछ विसंगतियों तथा कमियों को इंगित किया ।[2] आचार्य नरेन्द्र देव समिति की संस्तुतियों के आधार पर संयुक्त प्रान्त में 41 हजार प्राइमरी स्कूल खोले गये । सामान्य परिवर्तनों के साथ नरेन्द्र देव समिति द्वारा बनाया गया आरम्भिक शिक्षा का प्रारूप आज भी लागू है ।[3]

1– " महात्मा गाँधी ने 22 अक्टूबर, 1937 को वर्धा शिक्षा सम्मेलन में कहा:-ग्रामीण स्थिति में कुछ सुधार चाहते हैं तो शिक्षा भी प्रधानतः ग्रामीण होनी चाहिये । मेरी इच्छा है कि सम्पूर्ण शिक्षा किसी हस्तकला अथवा उद्योग के माध्यम से दी जाये । शिक्षा खर्च बच्चों द्वारा निर्मित वस्तुओं को बेचकर भी निकाला जा सकता है । कांग्रेसी सरकार के शासन काल में महात्मा जी के विचारों को अमली जामा पहनाने का वक्त आ गया है ।

§ § "आज", सम्पादकीय, 17 जून, 1939 §§

2– " लीडर ", 8 नवम्बर, 1939

3– बलवन्त सिंह स्याल, एजुकेशन इन उत्तर प्रदेश, पृ0 184

1938 में संयुक्त प्रान्त के विश्वविद्यालयों में सरकार के हस्तक्षेप पर कई समाचार पत्रों में चर्चा की गई। समाचार पत्रों का विचार था कि विश्वविद्यालयों में मनचाहे व्यक्तियों की कुलपति के पद पर नियुक्ति करके सरकार शिक्षा के क्षेत्र में अनुचित दबाव डाल रही है। के० एन० वाही, प्रो० ए०के० सिद्धान्त, डा० सर जेम्स एफ० डफ, डा० आर्थर ई० मोर्गन, डा० जे०जे० टिगर, डा० मेघनाथ साहा तथा डा० राधा कृष्णन जैसे शिक्षा शास्त्रियों की राय थी कि कुलपति के चयन का अधिकार विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी परिषद को होना चाहिये। इसके पश्चात सरकार ने सूक्ष्म समिति का गठन कुलपति के चयन की सही प्रक्रिया निर्धारित करने के लिये किया। समिति ने सुझाव दिया कि कुलपति का चयन किसी विशिष्ट समिति द्वारा न करके विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा किया जाना चाहिये। समिति का विचार था कि इस प्रक्रिया में एकेडेमिक काउन्सिल तथा विश्वविद्यालय कोर्ट के एक-एक सदस्य की भागीदारी भी सुनिश्चित की जानी चाहिये तथा असाधारण विद्वान, लब्धप्रतिष्ठ शिक्षा शास्त्री तथा कुशल प्रशासक को ही कुलपति के पद पर चयनित किया जाना चाहिए।[1]

संयुक्त प्रान्त में 1944 में सर जान सार्जेन्ट की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई किन्तु उसकी संस्तुतियों को राजनीतिक कारणों से व्यावहारिक रूप नहीं दिया गया। समाचार पत्र प्राथमिक, माध्यमिक, —

1- " लीडर ", 22 मई, 1938,

औद्योगिक तथा प्रौढ़ शिक्षा के विकास की आवश्यकता पर जोर दे रहे थे। राष्ट्रीय विचारधारा के पत्र "आज" ने देश में स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथ रचनात्मक क्रान्ति के लिये शिक्षा के विकास को अपरिहार्य बताया।[2] 1946 में प्रान्तीय शिक्षा परामर्शदात्री समिति ने निःशुल्क अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के विषय में एक योजना बनाई। 1936 के अधिनियम के अन्तर्गत औद्योगिक शिक्षा के विकास हेतु एक समिति का गठन किया गया। व्यय साध्य होने के कारण उक्त दोनों ही समितियों की संस्तुतियों को सरकार ने नहीं लागू किया।

1- " बदलते समय में परम्परागत शिक्षा पद्धति अप्रासंगिक बन गयी है। बुनियादी हस्तकला को शिक्षा का माध्यम बनाकर उद्यम की समस्या का समाधान किया जा सकता है क्योंकि इससे स्वाव--लम्बन तथा श्रम, गौरव की भावना के साथ उत्पन्न होती है तथा साथ ही सहकारिता की भावना भी आती है। हमारे देश में शिक्षा के तरीके इतने पुराने हैं कि उनसे शिक्षा पा रहे बालक-बालिका की मूलभूत शक्तियों का विकास कर पाना सम्भव नहीं है। अव्यवस्थित पाठ्यक्रम, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव तथा उद्देश्यहीन शिक्षा मानव को यथार्थ के स्थान पर भावनावादी तथा कल्पना जगत में विचरण करने वाला बनाती है। इससे मुक्ति तभी सम्भव है जब शिक्षा व्यवस्था में आधारभूत परिवर्तन किये जायें और इसमें समाज के सभी वर्गों का हित सन्निहित हो।

§ " आज ", 3 जुलाई, 1944 §

भारत में ब्रिटिश शासन के अन्तिम वर्षों में भी सरकार आधुनिक शिक्षा की अनदेखी कर रही थी । शीर्षस्थ अधिकारियों का मत था कि राजद्रोह का एक प्रमुख कारण शिक्षा का प्रसार भी है । उनका मानना था कि शिक्षा से राजनीतिक क्षोभ तथा अशान्ति को बल मिल रहा है । राष्ट्रीय विचारधारा के समाचार पत्रों ने अंग्रेजों की इस सोच को प्रतिक्रियावादी तथा अनुचित करार दिया । उन्होंने स्पष्ट किया कि अंग्रेजी सरकार जनशिक्षा की उपेक्षा इसलिये करती है क्योंकि वे भारतीयो को उतनी ही शिक्षा देना चाहते हैं जिससे भारत में उनकी राजनीतिक सत्ता की नींव मजबूत रहे और भारत की युवा पीढ़ी इंग्लैन्ड के गौरव तथा समृद्धि से प्रभावित होकर उनकी सुयोग्य सहायक बनी रहे ।

समाचार पत्रों ने जन शिक्षा के विकास में निरक्षरता को सर्वाधिक बताते हुये प्रौढ़ शिक्षा पर बल दिया । उन्होंने प्रौढ़ किसानों तथा श्रमिको के लिये रात्रि पाठशालाओं की आवश्यकता बताई । उन्होंने युवा पीढ़ी को पाश्चात्य शिक्षा को आत्मसात करने की प्रेरणा दी । यह समाचार पत्रों की ही देन थी कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, सोसल सर्विस लीग, अखिल भारतीय विद्यार्थी संगठन तथा अन्य संस्थाओं ने इस दिशा में कार्य किये । संयुक्त प्रान्त में मिर्जापुर, बाराबंकी, बहराइच, हरदोई, बलिया, बस्ती, पीलीभीत, लखीमपुर खीरी, जालौन, हमीरपुर, फतेहपुर, बिजनौर, बदायूँ, शाहजहाँपुर, इटावा तथा सीतापुर जैसे उपेक्षित जिलों में इन संस्थाओं ने प्रौढ़ शिक्षा, प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा के प्रसार हेतु उल्लेखनीय कार्य किया ।[1]

1- प्रशान्त मिश्रा, उत्तर प्रदेश : अतीत और वर्तमान, पृ0 3।

भारतीय पुनर्जागरण काल में समाज में धार्मिक परिवर्तन तेजी से हो रहे थे । आर्य समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज तथा थियोसाफी आन्दोलन ने एक बुद्धिवादी दृष्टिकोण पैदा किया । धार्मिक वाद-विवाद से व्यक्तिवाद का विकास हुआ । राजनीतिक तथा धार्मिक प्रभावों के साथ मिलकर व्यक्तिवाद ने राष्ट्रवाद को शक्ति प्रदान की । धार्मिक व सामाजिक सुधार आन्दोलनों के कारण अंधविश्वास, रूढ़िवाद, आडम्बरपूर्ण अनुष्ठान तथा जड़ कुसंस्कार से ग्रस्त धर्म को पुनः आदिम शुद्धता मिल सकी । उत्तर प्रदेश में आर्य समाज को व्यापक सफलता मिली । आर्यसमाज से प्रेरित समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने कर्मकाण्डों तथा सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिये वैचारिक क्रान्ति पैदा की और शिक्षा के विकास तथा साहित्यिक चेतना के लिये सतत् प्रयास किये ।

पत्रकारिता के माध्यम से आर्य समाज की सफलता से प्रेरणा लेकर विभिन्न धार्मिक संगठनों ने अपने मुखपत्र प्रकाशित किये किन्तु इनमें अधिकांश अपने मत के प्रचार के साथ ही दूसरों पर आक्षेप करने में नहीं चूकते थे इसलिये धार्मिक कटुता भी बढ़ती थी । "सतयुग", "कल्याण", "सनातन धर्म " तथा "कर्मयोग" ही ऐसी प्रमुख पत्र-पत्रिकायें थी जिनका उद्देश्य निष्पक्ष तथा विवाद रहित धार्मिक सामग्री प्रकाशित करना था । भगवत भक्ति का प्रतिपादन, आध्यात्मिक ज्ञान का विवेचन तथा ईश्वर व आस्तिकता का मंडन करने वाले लेखों को प्रमुखता दी जाती थी । सभी धर्मों के सत्पुरुषों, महात्माओं तथा आध्यात्मिक रहस्यों पर भी विचारपूर्ण लेख छपते थे । सरकार द्वारा सनातन धर्म की मर्यादा पर आक्षेप करने पर विरोध भी किया जाता था । हिन्दू कोड बिल तथा तलाक बिल के विरोध में भी कल्याण में चिंतापूर्ण लेख प्रकाशित किये गये ।

समाचार पत्रों ने धार्मिक कृत्यों के साथ जुड़ी गलत परम्पराओं का भी मर्यादित विरोध किया। देहरादून में प्रतिवर्ष राम लीला होती थी। 1901 में राम लीला में सीता स्वयंवर में विविध अंचलों के राजाओं के स्वांग भरे जाते थे। जब गढ़वाली राजा का स्वांग आता तो उसकी पीठ पर "पिन्डा" तथा नितम्बों के नीचे टेक के लिय "टेक्का" ॥मातु॥ लगाकर बड़ी हास्यास्पद तथा घृणास्पद गंदी फटी पोशाक में उसे बड़े असभ्य रूप में प्रस्तुत किया जाता था। उसका गढ़वाली भाषा का उच्चारण तथा स्वराघात जुगुप्सा पैदा करने वाला होता। उसे जंगली सिद्ध करने के लिये सारे सामानो से बुरी तरह लादा जाता। "गढ़वाली" के संपादक विशम्भर दत्त चंदोला ने इस परम्परा के विरोध में लेख लिखे और इस सम्बन्ध में प्रबुद्ध लोगों के विचारों को भी प्रकाशित किया। इसके परिणाम स्वरूप देहरादून की रामलीला का स्वरूप ही बदल गया।[1]

संयुक्त प्रान्त में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जाँच या किसी अन्य काम से अंग्रेज अधिकारी जूते पहनकर मन्दिरों में घुस जाते थे। मना करने पर वे पुजारी को गाली देते और पीटने की भी धमकी देते। हिन्दुओं की धार्मिक भावना को इससे ठेस पहुँचती थी। " हिन्दी प्रदीप " तथा " ज्ञान चन्द्रोदय " ने अंग्रेजो के इस काम का घोर विरोध किया। अन्ततः सरकार को आदेश देना पड़ा कि सरकारी अधिकारी जनता की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने वाले काम न करें।[2]

1- बैरिस्टर मुकुन्दीलाल चंदोला, बीसवीं शताब्दी के महापुरुष ॥लेख॥ " उत्तर प्रदेश ", फरवरी, 1980

2- एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ यूनाइटेड प्राविन्सेज आफ आगरा एण्ड अवध, 1881-82

सामाजिक व धार्मिक सुधार के लिये प्रयत्नशील मासिक पत्रिका "चाँद" ने धार्मिक कुरीतियों तथा धर्म के नाम पर किये जा रहे शोषण का पर्दाफाश किया ।[1] नवम्बर, 1929 में "चाँद" के बहुचर्चित " मारवाड़ी अंक " में प्रकाशित चित्रों के परिचय में "भाँग की चिता दहकाने वाले जैनियों के यती, " " मारवाड़ का रक्त शोषण करने वाले मारवाड़ी योजन भट्ट", समाज में नाना प्रकार के " अनाचार फैलाने वाले अलखधारी गोसाई " तथा " पाखंड रचकर हिन्दुओं को मूँड़ने वाले साधुओं की मण्डली " लिखकर धार्मिक कुसंस्कार फैलाने वालो पर तीखा प्रहार किया गया ।

आदिवासी तथा पिछड़े क्षेत्रों में मिशनरियों द्वारा लोगो को ईसाई बनाने का भी समाचार पत्रों ने विरोध किया ।[2] उन्होंने इसके लिये केवल मिशनरियों को ही दोषी नहीं बताया बल्कि हिन्दू व मुस्लिम धर्म के अनुयायियों से अपने धर्म के लोगों से अच्छा और एक समान व्यवहार करने का आग्रह किया जिससे कोई भी आर्थिक कारणों व ज्यादती से परेशान होकर धर्म परिवर्तन न करे । मिशनरियों द्वारा धर्म परिवर्तन

1- अप्रैल, 1931 के अंक में " चाँद " में आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने धर्म व्यवसायियों का नाश" लेख लिखकर तहलका मचा दिया । इसमें उन्होंने तीर्थस्थलों में पंडों के कुकृत्यों व धर्म गुरुओं का भंडाफोड़ रोचक शैली में किया था ।

2- इन्हीं थोथे प्रयत्नों से हिन्दुस्तानियों को क्रिस्तान बनाने के लिये पादरी साहब के हर तरह से जुर्म व चाल है । ब्रह्म समाज तथा आर्य समाज इसे रोकने में लगे हैं किन्तु साधनो के बल पर विरोध की चिंता किये बिना मिशनरी अपने काम में लगे हैं ।

§ " हिन्दी प्रदीप ", नवम्बर, 1885 §

कराने के कुत्सित प्रयासों का पर्दाफाश करके समाचार पत्रों ने जनता को आगाह किया । आर्य समाज ने सबसे अधिक सबल और तार्किक ढंग से मिशनरियों पर प्रहार किया । दयानन्द सरस्वती ने महसूस किया कि ईसाई मत के प्रचार ने बहुसंख्यक हिन्दू समाज के हृदय में अपने धर्म के प्रति अनास्था, उपेक्षा तथा तिरस्कार का भाव उत्पन्न कर दिया है । दयानंद सरस्वती ने ईसाई मत और इस्लाम के प्रभाव से हिन्दू धर्म को बचा लेने का सराहनीय कार्य किया । जिस प्रकार से ईसाई और मुसलमान धर्म के नेता और कार्यकर्ता अपने धर्म की विशिष्टताओं का विवरण प्रस्तुत करते उसी प्रकार आर्य समाज के नेता और प्रचारक उनसे अधिक दुगनी शक्ति के साथ हिन्दू धर्म का प्रचार करते ।

समाजों के इतिहास में आर्य समाज का इतिहास इसलिये अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि उसने हिन्दू जाति को दूसरी जातियों के मुकाबले में जिन्दा रहना सिखाया । देश के पौरुष की जिस नवीन चेतना का परिचायक बनकर आर्य समाज उपस्थित हुआ उससे विदेशी सत्ता को बड़ी बेचैनी हुई । अंग्रेजों को आर्य समाज एक भयंकर खतरे के रूप में दिखायी दिया । आर्य समाज का "शुद्धि आन्दोलन" अपने आप में एक क्रान्तिकारी कदम था । इस आन्दोलन ने इतिहास को नई दिशा प्रदान की क्योंकि बहुत से हिन्दू जो मुसलमान या ईसाई बन गये थे वे पुनः अपने समाज में लौट आये

हिन्दू धर्म में गौ रक्षा का विशेष महत्व होने के कारण मुगलकाल तथा ब्रिटिश शासनकाल में गौ हत्या से हिन्दुओं को बहुत अधिक पीड़ा होती थी । गौ रक्षा का प्रश्न साम्प्रदायिक विद्वेष का कारण भी बन जाता था । ब्रिटिश शासक गौ रक्षा के सम्बन्ध में हिन्दुओं की —

धार्मिक भावनाओं से परिचित थे किन्तु वे इसका उपयोग धार्मिक विद्वेष को बढ़ाने में करते थे। व्यवसायिक कारणों से वे गोवध-निषेध पर प्रति-बन्ध लगाने के पक्ष में नहीं थे। समय समय पर समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने गो रक्षा के लिये सरकार से माँग की तथा गाय के धार्मिक महत्व संबंधी लेख प्रकाशित करके हिन्दुओं से गो रक्षा के लिये अपील की।[1]

1- " इस बात को भारतवासी मात्र जानते हैं कि इस देश में जैसा मान गौ-धन का था और अन्य किसी धन का नहीं था क्योंकि भारतवासियों के बल और बुद्धि का कारण केवल गौ ही मालूम होती है। भारतवासी अधिक दयालुचित्त और न्यायकारी होने के कारण माँस नहीं खाते थे परन्तु सब देशवालों से बलवान होते थे। उनमें जो वीरता व पराक्रम था उसका कारण गाय का दुग्ध और घृत ही था। गाय के घृत में असार भाग बहुत स्वल्प है जिससे रुधिर और वीर्य बनता है। गौ के घृत हीसे यज्ञ और होम किये जाते थे और ब्राह्मणों व विद्वानो को गौ दान में दी जाती थी। गौ इस लोक व परलोक में सहायता करती है तो उसको माँ के समान न मानना महान कृतघ्नो का काम नही तो किसका है ? "

§ " गोधर्म प्रकाश ", जुलाई, 1886 §

1894 में गो हत्या को लेकर संयुक्त प्रान्त के कई नगरों में दंगे हुये । वाराणसी से जगत नारायण के संपादन में प्रकाशित साप्ताहिक " गो सेवक " ने इसका प्रमुख कारण सरकारी नीति तथा हिन्दुओं की धार्मिक भावना का अनादर बताया । मार्च 1914 में लाला सुखवीर सिंह ने कौंसिल में विचारार्थ पशु-रक्षा का प्रस्ताव प्रस्तुत किया । अपने प्रस्ताव में उन्होंने वर्मा में सूखा माँस के व्यापार पर रोक लगाने की माँग की थी । लाखों पशु भारत में इसी व्यापार के लिये मारे जाते थे जिसके परिणाम स्वरूप पशुओं की संख्या में निरन्तर कमी हो रही थी, खेती के लिये अच्छे पशु नहीं मिलते थे तथा घी दूध की कमी हो रही थी । निश्चय ही भारत ऐसे देश के लिये यह चिन्ता का विषय था । वास्तव में यह प्रस्ताव गो रक्षा के लिये ही था क्योंकि गायों और बैलों की ही संख्या में कमी हो रही थी दुर्भाग्य से इस प्रस्ताव के भाग्य का निपटारा वैसा ही हुआ, जैसा बहुधा प्रस्तावों का हुआ करता है । धार्मिक तथा सामाजिक संगठनों ने गायों की रक्षा तथा स्वास्थ्य के लिये गोशालायें स्थापित की तथा चारागाह बनाये । बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने गायों की नस्ल सुधारने तथा दूध का उत्पादन बढ़ाने पर भी बल दिया । "प्रताप" ने अपने एक महत्वपूर्ण संपादकीय में गोरक्षा को धार्मिक और सामाजिक दृष्टिकोण से ही नहीं अपितु आर्थिक दृष्टिकोण से भी आवश्यक बताया ।[1]

1- " ——— केवल धार्मिक और सामाजिक भावों ही को लेकर नहीं, किन्तु आर्थिक कठिनाइयों को भी सामने रखकर । देश के बड़े भारी भाग का स्वास्थ्य और जीविका पशुओं और खासकर गाय बैलों पर निर्भर है । पर, इन पशुओं के साथ, देश के मनुष्यों के पेट पालने वालों के साथ, ऐसा क्रूर व्यवहार हो रहा है, कि उस क्रूरता

। क्रमशः ।

गो रक्षा के प्रश्न को सभी पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों ने प्रमुखता प्रदान की । श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सन् 1913 में "सरस्वती" पत्रिका में मैथलीशरण गुप्त की "भारत भारती" से "गो वंश विनाश" अंश को लेकर प्रकाशित किया ।[1] इसका व्यापक प्रभाव पड़ा । उत्तर प्रदेश के अन्य अंचलों से प्रकाशित समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं ने " गो वंश की सुरक्षा " पर संपादकीय के अतिरिक्त लेख, कवितायें प्रकाशित कर जनता को गाय की महत्ता से अवगत कराने का प्रशंसनीय कार्य किया । परिणामतः देश एवं प्रदेश के कई नगरों में गोशालाओं की स्थापना हुई । 1930 में गंगा प्रसाद अग्निहोत्री ने "दम्पत्ति" पत्रिका में "गोभक्तों की गोभक्ति" शीर्षक से एक लेख लिखा जिसमें उन्होंने गोशालाओं और उनकी कार्य पद्धति के विषय में विस्तृत विवरण दिया ।[2]

की दूसरी निर्दयता के साथ बहुत ही कम समानता है । दिन-ब-दिन पशुओं के चरने का स्थान कम होता जाता है । लोग अंधाधुंध सभी भूमि पर खेती करते जाते हैं । ———— लेकिन केवल पिछले ही वर्ष में बर्मा में सूखा मांस बेचे जाने के लिये, केवल इसी प्रान्त के 144178 पशुओं की हत्या की गई और इसमें किसी को भी संदेह नहीं कि इन पशुओं में गाय, बैल ही की संख्या अधिक होगी । यह संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जाती है और इस हत्या के केन्द्र पहले बरेली, शाहजहाँपुर, अलीगढ़, आगरा, फतेहपुर, कानपुर और झाँसी थे, पर अब बुलन्दशहर, मथुरा, एटा, मुरादाबाद, जालौन, हमीरपुर, बाँदा, आजमगढ़ और पीलीभीत ने भी पहले स्थानों का साथ दिया है । हत्या-लीला भी सहज ही समाप्त नहीं होती, बहुधा खून अलग करके तथा चमड़ा मजबूत बनाने के लिये शरीर को छेद छेद करके पशुओं की हत्या की जाती है ।——"

{ " प्रताप ", 5 अप्रैल, 1914 }

1— " सरस्वती ", अगस्त, 1913

2— " दम्पत्ति ", अगस्त, 1930

मुस्लिम नेताओं ने भी हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं का आदर करते हुये गो-वध रोक की माँग का समर्थन किया। "प्रताप"नेअपने एक संपादकीय में मुसलमानों से इस प्रश्न पर दूरदर्शिता तथा देश भक्ति की भावना का परिचय देने की अपील की।[1]

1- " गो-हत्या से हिन्दुओं को मार्मिक वेदना होती है। गो-रक्षा को वे अपना परम धर्म समझते हैं। इसलिये जब काबुल के अमीर ने अपने यहाँ गायों की हत्या बन्द कर दी, तब देश के हिन्दू बहुत खुश हुये। इस समय भी एक ऐसी ही बात हुई है। हैदराबाद §दक्षिण§ के नरेश श्रीमान निजाम साहब ने अपने राज्य में गाय और ऊँट की हत्या रोक दी। बकरीद तक पर उनकी हत्या न होगी। आर्थिक दृष्टि से वे बहुत उपयोगी जानवर माने गये हैं। इसलिये, अब वे न मारे जायेंगे। ———————— निजाम के राज्य में आज से पहले भी गाय उतनी ही उपयोगी चीज थी। बहुत से हिन्दू खिलाफत आन्दोलन में मुसलमानों के साथ हैं। मुसलमान उन्हें नाराज नहीं करना चाहते हैं। हिन्दू भी यह चाहते हैं कि उनके इस सहयोग का नतीजा यह हो कि मुसलमान गो-हत्या छोड़ दे। मुसलमान जो कुछ कर रहे हैं, वह चाहे किसी कारण से कर रहे हों, वह है अच्छा। हिन्दू इस मामले में जो कुछ कर रहे हैं, वह बुरा न होते हुये भी बहुत अच्छा नहीं है। अच्छा हो, यदि हिन्दू इस मामले में मुसलमानों पर तनिक भी जोर न डाले। इस समय वे उनका पूरा साथ दें, परन्तु हृदय में इस बात को आने भी न दें कि मुसलमानों से गो-हत्या न करने के लिये प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी प्रकार भी कहा जाये। मुसलमान भी मनुष्य हैं, उनके धर्म में उदारता है। साधारण मुसलमान अपने

§ क्रमशः §

उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दू व इस्लाम धर्म दोनों में सशक्त धार्मिक सुधार आन्दोलन चल रहा था । दोनों में सुधारवादी और प्रति सुधारवादी, उदारवादी और पुनर्जीवनवादी विचार फैल रहे थे । ये समानान्तर विकास एक ही उद्देश्य द्वारा प्रेरित थे । दोनों का लक्ष्य प्राचीनकालीन गौरव को पुनः प्राप्त करना तथा पराधीनता की वर्तमान दयनीय स्थिति से उबरना था । मध्ययुगीन सामाजिक मतभेदों के बने रहने, आर्थिक सहयोग तथा धर्म निरपेक्ष स्थितियों में मंद विकास के कारण साम्प्रदायिकता को प्र पनपने का अवसर मिला ।

संयुक्त प्रान्त के समाचार पत्र-पत्रिकाओं के मुस्लिम हित चिन्तक, सरकार समर्थक तथा राष्ट्रीय विचारधारा के प्रसारक तीन श्रेणियों में विभाजित हो जाने से साम्प्रदायिकता पनपती रही । अपवाद स्वरूप कुछ पत्रों को छोड़कर मुस्लिम हितों के समर्थक अधिकांश उर्दू पत्रों ने साम्प्रदायिकता

— धर्म भाई के लिये जितना करेगा, अन्य धर्मों के उसी श्रेणी के आदमी में ऐसे अवसर पर उतना ही करने की स्फूर्ति सहज में उदय नहीं होती । इस्लाम की तालीम है कि दोस्तों के लिये दिल के दरवाजे बिल्कुल खोल दो । हमें इस समय सिद्ध कर देना चाहिये कि हम इस्लाम और मुसलमानों के सच्चे दोस्त हैं, उनके दुख से दुखी हैं और यथाशक्ति उनकी सहायता के लिये तैयार हैं और फिर इस्लाम मजबूर करेगा कि मुसलमान उसकी तालीम को सच्चा सिद्ध करें ।"

{ " प्रताप ", 16 अगस्त, 1920 }

को शनैः शनैः बढ़ावा दिया । उर्दू पत्रों की इस प्रवृत्ति पर कटाक्ष करते हुये " प्रताप " ने अपने एक सम्पादकीय में राष्ट्रीय मुस्लिम नेताओं का ध्यान आकृष्ट करते हुये अनुरोध किया कि धर्म के नाम पर वे अधर्म न होने दें ।[1] सरकार हिन्दू मुस्लिम मतभेदों से लाभ उठाने की स्थिति में थी इसलिये सरकार समर्थक पत्रों ने भी अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष रूप से साम्प्रदायिक

1- " ---------- हमने मुसलमान पत्रों में पढ़ा है कि प्रत्येक मुसलमान का मुबल्लिग §धर्म प्रचारक§ होना पहला कर्तव्य है अच्छी बात है । अपने धर्म का खूब प्रचार कीजिये । परन्तु धर्म के नाम पर अधर्म न होने दीजिये और यदि, आप इस अधर्म को भी धर्म ही मानते हैं तो, दूसरे आपके इस विचार से कदापि सहमत न होंगे । उन दूसरों में, हमारे ऐसे क्षुद्र प्राणी अपना यह परम कर्तव्य समझेंगे कि इस राष्ट्र हित के विरुद्ध आचरण का स्पष्ट विरोध सदैव करें और साथ ही, उन मुसलमान नेताओं से जो देश के कार्य क्षेत्र में होने का दावा करते है यह चाहेंगे कि मुल्ला-मौलवियों का डर छोड़कर और यदि दिल के किसी कोने में यह ख्याल काम कर रहा हो कि मुबल्लिग होने का अर्थ यह भी है कि चाहे जिस प्रकार हो उसी प्रकार दूसरे धर्म के लड़के और लड़कियों को अपने मजहब के दायरे में लाना ठीक है, तो, उसे भी दिल से निकालकर इन हथकण्डों की स्पष्ट ढंग से निन्दा कीजिये, और कोशिश कीजिये कि मुसलमान समाज में गुण्डों और मजहबी का अंश दबा रहे और भले आदमी शीर्ष पर रहें ।

§ " प्रताप ", 4 मई, 1925 §

मुस्लिम पत्रों के विचारों की पुष्टि की । मुस्लिम पत्र " हिन्दू राज्य " का खतरा दिखाकर मुसलमानों को राष्ट्रीय धारा से जुड़ने से रोकने का प्रयास करते रहे । राष्ट्रीय विचारधारा के कांग्रेस समर्थक पत्रों ने हिन्दू मुस्लिम एकता का नारा बुलन्द किया और मुसलमानों से हिन्दुओं से सहयोग करने तथा एकजुट होकर विदेशी सत्ता का मुकाबला करने की अपील की किन्तु इसमें वे आंशिक रूप से ही सफल हो पाये क्योंकि सरकार समर्थक व साम्प्रदायिक मुस्लिम पत्र उन्हें लगातार वास्तविकता से दूर रक्खे रहे । राष्ट्रीय आन्दोलन की नाजुक स्थितियों मे साम्प्रदायिकता का अनवरत प्रचार करके साम्प्रदायिक मुस्लिम पत्रों ने उपलब्धियों पर पानी फेरने का प्रयास किया । साम्प्रदायिकता की बढ़ती हुई प्रवृत्ति को दृष्टिगत करते हुये " प्रताप " ने अपने एक सम्पादकीय में चेतावनी देते हुये लिखा कि यदि धर्म को राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग नरक्खा गया तो इसके दूरगामी परिणाम अच्छे न होंगे ।[1] शुद्धि आन्दोलन की मुस्लिम पत्रों ने तीखी आलोचना की

1- " यदि किसी धर्म के मानने वाले कहीं जबरदस्ती हाँग अड़ाते हैं, तो उनका इस प्रकार का कार्य देश की स्वाधीनता के विरूद्ध समझा जाये । देश की स्वाधीनता के लिये जो उद्योग किया जा रहा था, उसका वह दिन निःसंदेह, अत्यन्त बुरा था जिस दिन स्वाधीनता के क्षेत्र में, खिलाफत, मुल्ला, मौलवियों और धर्माचार्यों को स्थान दिया जाना आवश्यक समझा गया । एक प्रकार से, उस दिन हमने स्वाधीनता के क्षेत्र में, एक कदम पीछे हटकर रखा था । अपने उसी पाप का फल हमें भोगना पड़ रहा है । देश की स्वाधीनता के संग्राम ही ने मौलाना अब्दुल बारी और शंकराचार्य को देश के सामने दूसरे रूप में पेश किया, उन्हें अधिक शक्तिशाली बना दिया और हमारे इस काम का फल यह हुआ है कि इस समय, हमारे हाथों से बढ़ाई इनकी और इनके से लोगों की शक्तियाँ हमारी जड़ उखाड़ने और देश में मजहबी, प्रपंच और उत्पात का राज्य स्थापित कर रही हैं ——————। " {"प्रताप", 27 अक्टूर, 1924 }

तो मुसलमानों के तबलीग व तन्जीम के विरूद्ध कट्टर हिन्दू पत्रों ने वैचारिक अभियान छेड़ा । कांग्रेस को केवल हिन्दुओं का संगठन साबित करने तथा विभिन्न कारणों से हुये साम्प्रदायिक दंगों के दौरान " " मुस्लिमों पर अत्याचार " का दोष कांग्रेस, हिन्दू महासभा तथा राष्ट्रीय विचारधारा के पत्रों पर थोपना ही अधिकांश उर्दू पत्रों का एक मात्र काम था । उर्दू के जिन पत्रों ने कांग्रेस से सहयोग किया और हिन्दू मुस्लिम एकता पर बल दिया, उनके विरूद्ध भी साम्प्रदायिक उर्दू पत्रों ने निन्दा अभियान शुरू कर दिया । हिन्दू महासभा का समर्थन कुछ हिन्दी पत्रों ने मुस्लिम साम्प्रदायिकता की नीति के प्रतिक्रिया स्वरूप किया था । संयुक्त प्रान्त प्रमुख राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र था इसलिये समाचार पत्रों द्वारा किये गये साम्प्रदायिक प्रचार का राजनीति पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा ।

बीसवीं शताब्दी में संयुक्त प्रान्त की सांस्कृतिक विचार धारा को सतत् विकासोन्मुख रखने में भी पत्रकारिता ने महत्वपूर्ण योगदान दिया । वाइसराय लार्ड कर्जन बंगाल विभाजन तथा भारतीय हितों की विरोधी अपनी नीतियों के कारण भले ही आलोचना का विषय बना हो किन्तु 1904 में " ऐनसियन्ट मानूमेन्टस प्रोटेक्शन ऐक्ट " पारित करके उसने संयुक्त प्रान्त की कला एवं संस्कृति की रक्षा हेतु उल्लेखनीय कार्य किया । संयुक्त प्रान्त के समाचार पत्र " सिटीजन " {इलाहाबाद} तथा "रोहिल-खण्ड गजट " {बरेली} ने लार्ड कर्जन के इस कार्य की सराहना की । लार्ड कर्जन ने अपना पद ग्रहण करते समय यह स्पष्ट कर दिया था कि वह भारत के प्राचीन स्मारकों की खोज, रक्षा तथा जहाँ तक आवश्यक होगा उसके जीर्णोद्धार को वह अपनी सरकार का कर्तव्य मानता है ।[1]

1- रोनाल्डशो, द लाइफ आफ लार्ड कर्जन, भाग -2, पृ0 332

लार्ड कर्जन ने 1901 से 1905 के मध्य कई बार आगरा का दौरा किया और वहाँ के ऐतिहासिक स्थलों में काफी रूचि प्रदर्शित की । 10 जुलाई, 1902 को " एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल " के सदस्यों को सम्बोधित करते हुये कर्जन ने कहा कि मैं इस देश की ऐतिहासिक धरोहर को सुरक्षित रखने के लिये ऐसा कुछ कर जाना चाहता हूँ जिसके लिये भारतीय इतिहास काफी समय तक मुझे याद रखे ।[1] कर्जन जब पहली बार आगरा गया तो उसने देखा कि ताजमहल में मजहबी नुमाइन्दा शाम को काला चोगा पहनकर एक पुराने किस्म के लैम्प से प्रकाश करता है । लार्ड कर्जन ने तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर जेम्स ला टोशे को इस सम्बन्ध में पत्र लिखकर कहा कि वह ताजमहल को एक लटकाने वाला ऐसा लैम्प उपहार में देना चाहता है जो पूरी तरह से मुगल कला पर आधारित हो । लार्ड कर्जन ने इस विषय में इंग्लैन्ड के लार्ड क्रोमर से भी सहायता का आग्रह किया । उसे पता लगा कि इस तरह के लैम्प सुल्तान बेबर द्वितीय के मकबरे में प्रयोग में लाये जाते रहे हैं ।[2] कर्जन ने मिस्त्र, लन्दन तथा पेरिस के संग्रहालयों में भी खास तरह के लैम्प का पता लगवाया किन्तु उसे निराशा ही हाथ लगी । तत्पश्चात लार्ड कर्जन ने मिस्त्र के अरब संग्रहालय के निदेशक हेजपे तथा मिस्त्र के सार्वजनिक निर्माण विभाग के वरिष्ठ अधिकारी ई0 रिचमांड की मदद ली । उन्होंने टोडोस बादिर नामक शिल्पी से दो वर्ष के अथक प्रयास के बाद मुगल शैली का लैम्प बनवाया जो मूल रूप से तांबे का बना था किन्तु उस पर सोने और चाँदी का काम किया गया था । लार्ड कर्जन ने लैम्प के ऊपर " प्रजेन्टेड टु द टोम्ब आफ मुमताज महल बाई द लार्ड कर्जन वाइसराय आफ इण्डिया " का अरबी अनुवाद करके लिखवाया ।

1- रोनाल्डशे, द लाइफ आफ लार्ड कर्जन, भाग - 2, पृ0 333

2- वही, ,, पृ0 335

लार्ड कर्जन इस लैम्प को ताजमहल में लगवाने के पहले ही भारत से चला गया किन्तु वह इस बारे में संयुक्त प्रान्त के तत्कालीन लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर जान हैवेट को आवश्यक निर्देश दे गया था । यह लैम्प 16 फरवरी, 1908 को ताजमहल में लगवाया गया । "रोहिलखण्ड गजट" §बरेली§ ने इस अवसर पर आयोजित समारोह का विस्तृत विवरण प्रकाशित करते हुये लार्ड कर्जन के इस कार्य की प्रशंसा की ।[1]

1- " 16 फरवरी, 1908 की शाम ताजमहल के परिसर में लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर जान हैवेट ने जलसे की सदारत की । इस मौके पर अंजुमन इस्लामिया के प्रेसीडेन्ट सैयद अली नवी ने लार्ड कर्जन द्वारा इस अति महत्वपूर्ण ऐतिहासिक भवन की रक्षा के लिये किये गये प्रयास की तारीफ की और नायाब लैम्प दिये जाने के लिये शुक्रिया अदा किया । इस मौके पर सर हैवेट ने लार्ड कर्जन का वह संदेश भी पढ़कर सुनाया जो लार्ड कर्जन भारत से जाते समय छोड़कर गया था । सन्देश में कहा गया था कि " आगरा के इस खूबसूरत भवन को मेरी अन्तिम भेंट स्वीकार हो " । लार्ड कर्जन ने भारतीयों के मन में प्राचीन स्मारकों के प्रति जो जज्बा पैदा किया उसके लिये उसे हमेशा याद किया जायेगा । भारत की गवर्मेन्ट को ताजमहल जैसा महत्व दूसरी इमारतों तथा किलों को भी देना चाहिये जिससे ऐतिहासिक धरोहर लम्बे समय तक मौजूद रह सके ।"

§ " रोहिलखण्ड गजट ", 23 फरवरी, 1908 §

लार्ड कर्जन ने अपने कार्यकाल में विशिष्ट कला विशेषज्ञों की नियुक्तियाँ की जिससे देश में कला के क्षेत्र में विचार परम्परा तथा विश्वास का प्रतिनिधित्व करने वाली पुरातन सामग्रियों की सुरक्षा व संरक्षण सम्भव हो सके । दिल्ली दरबार के अवसर पर ऐसी कलात्मक सामग्रियों को प्रदर्शित किया गया था । संयुक्त प्रान्त के " एडवोकेट " {लखनऊ}, "अभ्युदय" {इलाहाबाद}, "शाने हिन्द" {मेरठ} तथा "अलीगढ़ इन्स्टीटियूट गजट " आदि पत्र-पत्रिकाओं के प्रयास से तत्कालीन संयुक्त प्रान्त की सरकार ने कानपुर के भीतर गाँवमें ईंटों से बने गुप्तकालीन मन्दिर, इलाहाबाद के किले तथा चुनार {मिर्जापुर} के किले की सुरक्षा एवं संरक्षण की विशेष व्यवस्था की ।

कला, संस्कृति और समाज का प्राण है । साथ ही समाज एवं संस्कृति कला के उपजीव्य हैं । सामाजिक परम्पराओं, जीवन-रूप-वैभव ही कला को सांस्कृतिक-भावभूमि पर अवतरित होने की प्रेरणा प्रदान करते हैं । भारत का सांस्कृतिक परिवेश सदा ही कला को समुन्नत बनाता रहा है और कला हमारी सांस्कृतिक अवधारणाओं को मूर्त रूप प्रदान करती रही है । वस्तुतः कला हमारे सांस्कृतिक उत्कर्षापकर्ष की कसौटी है ।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिकायें प्रायः सचित्र होती थी । कुछ में कला विषयक सशक्त लेख के साथ चित्र होता था तो कहीं ऋतु-अवतरण सम्बन्धी मानवीयवृत्ति-प्रवृत्तियों के विविध रूपों तथा पर्वों को आधार बनाकर निर्मित चित्र, कलाकार के नामोल्लेख के साथ मुद्रित किये जाते थे । कभी-कभी साहित्य के परिवर्तित होते रूप, उसके स्तर को भी चित्रों से उजागर किया जाता था ।

यही नहीं हमारी संस्कृति के मूल तत्वों त्याग, तपस्या तथा तपोवन भी चित्रकार की तूलिका से दर्शाये जाते थे । प्राचीन कथाओं तथा अवतारों से सम्बन्धित चित्रों को प्रकाशित कर जन-मानस को उनके प्रति आस्थावान करने के बहुशः प्रयास पत्र-पत्रिकाओं ने किये हैं । तत्कालीन सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्यिक पत्रिका " सरस्वती " के मुख पृष्ठ पर " सचित्र हिन्दी मासिक पत्रिका " अंकित रहता था और एक कलात्मक चित्र भी । " सरस्वती " के विभिन्न अंकों में प्रकाशित नन्द लाल बोस तथा हलदार द्वारा निर्मित चित्रों के अवलोकन से पता चलता है कि यह एक ऐसा काल था जब कला एवं उसकी निर्मितियों के स्तर में उल्लेखनीय उन्नयन होने लगा था । यही नहीं तत्कालीन कला चित्रों में प्राचीन के परिप्रेक्ष्य में " नव-तकनीक " का समावेश भी होने लगा था । कला के प्रति जनमानस की दृष्टि का ज्ञान हमें "सरस्वती" के "सिंहावलोकन" स्तम्भ में प्रकाशित टिप्पणी से स्वतः ही हो जाता है ।[1]

कला का एक रूप " व्यंग्य रेखा चित्र " भी है जिसकी बहुश्रुत संज्ञा " कार्टून " है । इस कला ने बीसवीं शताब्दी के सामाजिक - सांस्कृतिक विकास के शिव एवं अशिव दोनो ही पक्षों को सही अर्थों में ठोस ढ़ंग से उजागर करने का प्रयास किया । " माधुरी ", "सुधा" आदि

1- " इस वर्ष साहित्य-समाचार सम्बन्धी जो चित्र प्रकाशित हुये वे पाठकों को बहुत पसन्द आये ———————— इन चित्रों द्वारा साहित्य की सामयिक अवस्था बतलाना ही हमारा एकमात्र अभिप्राय है । ———————— चित्र प्रतिमास न प्रकाशित कर सकेंगे, जब कोई बहुत ही भावभरा चित्र मन में आ जायेगा, तभी उसे प्रकाशित करेंगे ।"

§ "सरस्वती", सिंहावलोकन स्तम्भ, दिसम्बर, 1903 §

पत्रिकाओं का तो एक स्तम्भ ही होता था " चित्रावली " । इसमें व्यंग्य चित्र भी प्रकाशित होते थे । व्यंग्य चित्रों के माध्यम से संयुक्त प्रान्त की पत्रकारिता ने पर्दा प्रथा, बाल विवाह, वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, गो हत्या, मद्यपान, छुआछूत आदि अन्यान्य समस्याओं तथा कुरीतियों पर तीखा प्रहार किया ।

यद्यपि पाश्चात्य सभ्यता ने हमारे सामाजिक-सांस्कृतिक विकास को प्रभावित करने का हर सम्भव प्रयास किया तथापि कला अपनी जीवन्तता की धरोहर संरक्षित रखने में सफल रही । भारतीय जन भावना ने अपने "स्वत्व" को पहचानने का उपक्रम किया । सुप्त भारतीयता में चेतना का नवसंचार हुआ । पत्रकारिता ने इस चेतना को जागृत करने में अभूतपूर्व भूमिका निभायी । परिणाम स्वरूप पाश्चात्य संस्कृति का व्यापक बहिष्कार होने लगा । इस परिवेश में कलाकार भी राष्ट्रीय कला के अन्वेषण की ओर उन्मुख हुआ । इस विवेचन के फलस्वरूप हम निश्चित रूप से यह कह सकते हैं कि आलोच्य अवधि की पत्रकारिता ने जहाँ समस्त राष्ट्र को स्वातंत्र्य भावना से झकझोरा वहीं उत्तर प्रदेश में सामाजिक-सांस्कृतिक विकास का शंखनाद किया ।

::x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x::

:x:x:x:x:x:x:x:

:x:x:x:x:

::x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x

** अध्याय : षष्ठम् **

* सरकार : नये कानून और पत्रकारिता *

::x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x::

पत्रकारिता और कानून का सम्बन्ध एक अत्यन्त आधारभूत सामाजिक समीकरण का साक्ष्य देता है । यह समीकरण किसी भी देश की शासन-प्रणाली और उसके स्वरूप का ही परिचय नहीं देता, अपितु यह भी इंगित करता है कि उस देश में वाक्-स्वातंत्र्य कितना और कैसा है । वाक्-संयम की और सार्वजनिक वाद-विवाद की रीति परम्परा क्या है । जीवन की शैली और लोक रुचि किस-किस प्रकार की है । भारतीय पत्रकारिता का इतिहास समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता के अनवरत ह्रास का इतिहास है । भारत में पत्रकारिता का उद्भव और विकास ही ब्रिटिश कालीन परतंत्रता में हुआ । लोकतंत्रीय पद्धति के सर्वाधिक पुराने देश इंगलैण्ड तक में प्रेस को उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में उस समय ही स्वतंत्रता मिल सकी जब मध्यम वर्ग की सामंतीय व्यवस्था पर आर्थिक विजय हुई और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के सिद्धान्त को मान्यता मिली ।[1] भारत में समाचार पत्र राष्ट्रीय आन्दोलन के महत्वपूर्ण हथियार का काम कर रहे थे और ब्रिटिश सरकार भारतीय राष्ट्रीयता की माँग को पूरा नहीं करना चाहती थी । इसलिए भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की गति के साथ सरकार ने एक के बाद एक प्रेस कानून बनाकर समाचार पत्रों पर अंकुश लगाए रखने का प्रयास किया ।

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक समाचार पत्रों की स्वतंत्रता की कोई निश्चित सीमा नहीं थी और न ही इस सम्बन्ध में कोई निश्चित कानून थे । जिन दिनों ब्रिटेन में प्रेस स्वतंत्रता के लिए संघर्ष चल रहा था, उन्हीं दिनों समाचार पत्रों के सम्पादक लुटेरों जैसी आजादी पाने तथा दरबारियों व चाटुकारों की तरह व्यवहार करने का प्रयास कर रहे थे ।

1- रामरतन भटनागर, राइज एण्ड ग्रोथ आफ हिन्दी जर्नलिज्म, पृ0 30

ऐसी स्थिति में सरकार का विरोध करने वाला कोई भी व्यक्ति समाचार पत्र नहीं निकाल सकता था । सरकार पत्र का प्रकाशन बन्द करा देती थी और अधिकतर सम्पादकों को देश से बहिष्कृत कर दिया जाता था । उन दिनो समाचार पत्रों पर सेन्सर और पूर्व सेन्सर दोनो ही लागू थे । संपादक द्वारा सरकार विरोधी रवैया न छोड़ने पर उसके विरूद्ध कड़ी कार्यवाही होती थी । अपमानजनक लेखों की कोई सही कल्पना नहीं थी परन्तु इसके बारे में कानून अवश्य था ।

भारतीय पत्रकारिता का प्रारम्भ 1780ई0 में जे0ए0हिकी के " बंगाल गजट " से माना जाता है । हिकी ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के तत्कालीन गवर्नर जनरल की प्रेम कहानी की चर्चा अपने पत्र में की थी । हिकी ने उस अत्यन्त व्यक्तिगत सम्बन्ध पर भी प्रकाश डाला जिसके अन्तर्गत इमहोफ,वारेन हेस्टिंग्स की पत्नी बन गई थी । हिकी ने वारेन हेस्टिंग्स को "ग्रेट मुगल" तथा कम्पनी के उच्च अधिकारियों को नवाबों की संज्ञा दी । इस पर भी हिकी के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिये कोई सक्षम कानून नहीं था । अन्ततः फोर्ट विलियम से जारी एक सार्वजनिक घोषणा के द्वारा हिकी का पत्र शान्ति के लिए खतरनाक घोषित किया गया और उसकी प्रतियाँ डाकखाने से वितरित होने पर प्रतिबन्धित कर दी गयीं ।[1] हिकी पर मान-हानि के मुकदमें चलाए गए तथा अर्थदण्ड लिया गया । निराश होकर हिकी ने प्रकाशन बन्द कर दिया और शेष जीवन तंगहाली में बिताया । "मद्रास कूरियर " पर 1795 ई0 में पहली बार सैंसर लगा । इसके बाद से प्रकाशन के पूर्व फौजी सेक्रेटरी से निरीक्षण कराना अनिवार्य हो गया ।

1- जी0 डब्लू0 फारेस्ट, सेलेक्शन फ्राम स्टेट पेपर्स आफ द गवरर्न्स जनरल आफ इण्डिया : वारेन हेस्टिंग्स,खण्ड 2, पृष्ठ 29।

लार्ड वेलेजली ने 1799 में समाचार पत्रों पर नियंत्रण करने के लिए कुछ नियम लागू किए । इस सम्बन्ध में उसने सम्वाद नियंत्रक की नियुक्ति करके उसे निर्देश दिया कि वह ईस्ट इण्डिया कम्पनी की धन और वित्तीय स्थिति, फौजी कारनामों, जासूसी, सरकारी अफसरों के व्यवहार, कम्पनी तथा किसी भारतीय शक्ति के बीच युद्ध या शान्ति की सम्भावना के बारे में कुछ भी न छपने दे । 1811 में प्रेस सम्बन्धी एक नया कानून बनाया गया जिसके अन्तर्गत प्रत्येक प्रकाशित पत्र या पर्चे पर मुद्रक का नाम उल्लिखित करना अनिवार्य कर दिया गया । उसकी आवश्कता इसलिए आवश्यक मानी गई क्योंकि सेरामपुर के ईसाई मिशनरियों ने बहुत से पर्चे हिन्दू तथा इस्लाम धर्म के अनुयायियों के विरुद्ध प्रकाशित किए । इन पर मुद्रक व लेखक का नाम नहीं था । ईस्ट इण्डिया कम्पनी यह नहीं चाहती थी कि उसे किसी उग्र धार्मिक आन्दोलन का सामना करना पड़े ।

1818 में लार्ड हेस्टिंग्स गवर्नर बना । वह उदार रवैया अपनाकर जिम्मेदार प्रेस को विकास की ओर उन्मुख करना चाहता था । उसने प्रेस सेन्सरशिप समाप्त कर दी और सारे प्रतिबन्ध हटा लिए । हेस्टिंग्स ने इंग्लैण्ड में कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स की कार्यवाही, धार्मिक भावना को ठेस पहुंचाने वाली बाते, भारत में ब्रिटेन की प्रतिष्ठा को आघात पहुँचाने वाले समाचार तथा सार्वजनिक हितों के प्रतिकूल लेखों पर प्रतिबंध लगाया । इन नए नियमों को कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने स्वीकृति नहीं दी और पहले की ही व्यवस्था जारी रखने का निर्देश दिया ।

1823 में बंगाल में और उसके पश्चात बम्बई में अखबारों व पर्चों के प्रकाशन के लिए लाइसेन्स की व्यवस्था प्रारम्भ की गई । यह कार्यवाहक गवर्नर जनरल एडम की प्रेस के विरुद्ध दमनात्मक कार्यवाही का एक

अंग था । एडम के प्रेस अध्यादेश के अनुसार गवर्नर जनरल की परिषद की स्वीकृति तथा सरकार के मुख्य सचिव के हस्ताक्षर युक्त अनुमति पत्र के बिना समाचार पत्रों में जलयानों की सूचना, बिक्री सम्बन्धी विज्ञापन, वस्तुओं के बाजार भाव, विनिमय दर तथा पूर्ण व्यावसायिक सूचनाओं के अतिरिक्त कुछ भी नहीं प्रकाशित हो सकता था । सरकार समाचार-पत्र प्रकाशित करने के लाइसेन्स जब चाहे निरस्त कर सकती थी । नियमों के उल्लंघन की स्थिति में चार सौ रुपए तक के अर्थदण्ड की व्यवस्था थी । एलफिंसटन ने इन प्रतिबन्धों की वकालत करते हुए कहा था कि यदि प्रेस आजादी हो तो तलवार के बल पर बनी विदेशी सरकार अधिक दिन कैसे चल सकती है ।[1] ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने यह भी आदेश जारी किया कि उसका कोई भी कर्मचारी किसी समाचार पत्र से कोई भी सम्बन्ध नहीं रखेगा ।

एडम के प्रेस अध्यादेश का राजाराममोहन राय, चन्द्र कुमार टैगोर, हरचन्द घोष, द्वारिका नाथ टैगोर, गौरीचरण बनर्जी तथा प्रसन्न कुमार टैगोर आदि प्रमुख भारतीयों ने तीव्र विरोध किया उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय § सुप्रीम कोर्ट § में प्रार्थना पत्र दिया जिसमें प्रेस की स्वतंत्रता पर इस आघात को अलोकतांत्रिक, अनुचित तथा दकियानूसी कहा । इस प्रार्थना पत्र पर हस्ताक्षर करने वाले भारतीय समाचार पत्रों की आजादी के पक्षधर थे । मिस सोफिया कौलेट ने इस प्रार्थना पत्र को भारतीय इतिहास का "एरियोपजेटिका" कहा ।[2] रमेशचन्द्र दत्त के अनुसार वर्तमान समय में राजनीतिक अधिकारों के लिए वैधानिक संघर्ष का सर्वोत्तम नियम इस प्रार्थना पत्र ने ही संकेतित किया था ।

1- क्षितीन्द्र मोहन श्रीवास्तव, प्रेस कानून : वारेन हेस्टिंग्स से अब तक §लेख§ नई दुनिया §इन्दौर§ विशेष परिशिष्ट, 29 जनवरी, 1980, पृ05

2- सोफिया डी0 कौलेट, लाइफ ऐण्ड लैटर्स आफ राजाराममोहन राय, पृ0 177

1830 में कम्पनी ने सेना के अधिकारियों के भत्ते में कमी की । सर चार्ल्स मेटकॉफ ने इस सम्बन्ध में सब कुछ प्रकाशित होने देने की वकालत गवर्नर जनरल की कौंसिल में की । मेटकॉफ कुछ समय बाद कार्यवाहक गवर्नर जनरल बना । 1835 में मेटकॉफ ने सर्वोच्च परिषद के व्यवस्थापिका सदस्य मैकाले को सारे भारत के लिए एक जैसा कानून बनाने का दायित्व सौंपा । मैकाले ने कहा था मैं जो एक्ट प्रस्तुत करना चाहता हूँ उसका उद्देश्य समाचार पत्र जगत के दोषों को दूर करना तथा सम्पूर्ण ब्रिटिश साम्राज्य में एक जैसा कानून लागू करना है । यदि एक्ट स्वीकार कर लिया गया तो कोई भी व्यक्ति बिना पूर्व स्वीकृति लिए हुए अपना समाचार पत्र चालू करने के लिए आजाद हो जाएगा लेकिन किसी भी सजा का खतरा उठाए बिना विद्रोहात्मक या निन्दापूर्ण सामग्री नहीं प्रकाशित कर सकेगा ।[1] इस सम्बन्ध में मेटकॉफ ने तर्क प्रस्तुत किया कि स्वतंत्र प्रेस से सरकार को कोई खतरा नहीं है यदि भविष्य में कभी खतरा उत्पन्न ही हो जाय तो सरकार उसका सामना करने में सक्षम है । अन्ततोगत्वा अनावश्यक रूप से प्रतिबन्ध लगाकर अपयश अर्जित करने से कोई लाभ नहीं । मेटकाफ ने यहाँ तक कहा कि यदि भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के अंग के रूप में सुरक्षित रखने का तरीका इसके निवासियों को अज्ञान की स्थिति में रखना है तो हमारा प्रभुत्व इस देश के लिए श्राप है और इसका अन्त होना चाहिए।

मैकाले के सुझाव पर आधारित मेटकाफ के प्रेस कानून को 1835 में गवर्नर जनरल की परिषद ने सर्वसम्मति से पास कर दिया । इसके पूर्व 1823 के बंगाल प्रेस रेगुलेशन तथा 1825 व 1826 के बाम्बे प्रेस रेगुलेशन्स को निरस्त कर दिया गया । नवीन कानून के अनुसार समाचार पत्र-पत्रिका के

1- एम0 चलपति राव, समाचार पत्र, पृ0 54-55

मुद्रक व प्रकाशक को घोषणा पत्र प्रस्तुत करना होता था और प्रकाशन के स्थान आदि का पूरा विवरण देना अनिवार्य था । घोषणा पत्र न भरने पर पाँच हजार रुपये तक का अर्थदण्ड तथा दो वर्ष के कारागार का विधान था । घोषणा पत्र स्वीकृत होने के बाद किसी छापेखाने में प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र या पुस्तक पर मुद्रक और प्रकाशक का नाम तथा प्रकाशन स्थान अंकित करना आवश्यक था । ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कमीशन प्राप्त तथा अनुबंधित कर्मचारी किसी पत्र के मालिक भी नहीं बन सकते थे ।

मेटकॉफ द्वारा निर्मित प्रेस कानून 1857 तक चलता रहा । 1857 के विद्रोह के समय अधिकांश भारतीय पत्रों का रवैया सरकार विरोधी हो गया था । भारतीय समाचार पत्रों का दमन करने के लिए 13 जून, 1857 को एक प्रेस अधिनियम पारित किया गया । इसकी कठोरता के कारण इसे "गैगिंग" §मुँह बन्द करना§ अधिनियम भी कहा गया । लार्ड केनिंग ने[1] इसे लागू करते हुए विधान परिषद में इसकी उपयोगिता साबित करने का प्रयास किया था ।

1- " मुझे सन्देह है कि इस बात को पूरी तरह से समझा भी जा रहा है कि नहीं कि पिछले कुछ सप्ताहों से भारतीय अखबार भारतीय जनता को जानकारी देने के नाम पर उनके हृदय में राजद्रोह उड़ेलने की धृष्टता तक पहुंच गए है । तथ्यों को तोड़ मरोड़ कर जनता के समक्ष प्रस्तुत करके सरकार के प्रति नफरत के बीज बोए जा रहे हैं । यह बात योरोपीय पत्रों पर लागू नहीं होती, लेकिन अशान्ति के दिनों में दोनों में अन्तर करना भी ठीक नहीं है । मैं यह एक्ट बड़ी अनिच्छा से पेश कर रहा हूँ । प्रत्येक राज्य के जीवन में ऐसे भी अवसर आते हैं जब लोक कल्याण के लिए आजादी व अधिकारों का बलिदान करना होता है । इस समय भारत भी इसी स्थिति में है ।

§ के0बी0 मेनन, द प्रेस लाज़ इन इण्डिया, पृ0 193 §

नया प्रेस अधिनियम एडम के 1823 के विनियमों में संशोधन करके बनाया गया था । इसमें मेटकॉफ के कानून की धारायें भी रखी गई थीं । इस अधिनियम के अनुसार बिना लाइसेन्स लिए छापाखाना रखना या उसका उपयोग करना वर्जित था । लाइसेन्स देना या उसका पंजीकरण कभी भी निरस्त कर देना सरकार पर निर्भर था । सरकार किसी भी समाचार पत्र, पुस्तक या अन्य किसी भी मुद्रित सामग्री का परिचालन रोक सकती थी । लाइसेन्स लेकर भी समाचार पत्र या पुस्तक प्रकाशन में इंग्लैण्ड या भारत की ब्रिटिश सरकार के कार्यों व उद्देश्यों का विरोध,सरकार के प्रति अवमानना पैदा करने वाली बाते, ब्रिटिश सरकार व देशी राज्यों के सम्बन्धों तथा जनता में धार्मिक अविश्वास भड़काने वाली खबरे छापने पर अत्यधिक प्रतिबन्ध था ।

यह " गैगिंग अधिनियम " बंगाल के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में अधिक प्रभावी नहीं हुआ क्योंकि विद्रोह के प्रारम्भ होते ही उत्तर पश्चिमी प्रान्त के अधिकांश समाचार पत्रों का प्रकाशन बन्द हो गया था । संयुक्त प्रान्त में लेफ्टीनेंट गवर्नर ई०ए० रीड तथा कर्नल एच० फ्रेजर ने भारतीय भाषाओं के शेष पत्रों को कुचलने का प्रयास करने में नए प्रेस कानून का पूरा उपयोग किया ।

1858 में महारानी विक्टोरिया द्वारा भारत का साम्राज्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी से लेकर ब्रिटिश राज के अधीन कर लेने के पश्चात् वाइसराय लार्ड मेयों के समय में " प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन आफ बुक्स एक्ट " पारित हुआ । इसके अन्तर्गत प्रकाशक को क्षेत्रीय म मजिस्ट्रेट को शर्तनामा भरकर देना अनिवार्य था ।[1] कानून का उल्लंघन

1- ए० आर० देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 184

वाइसराय की परिषद में कई सदस्यों ने इसका तीव्र विरोध किया था ।[1]

इस अधिनियम के द्वारा जिलाधीशों व पुलिस आयुक्तों को यह अधिकार प्रदान किया गया कि वे अपने क्षेत्र से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों के प्रकाशकों अथवा मुद्रकों से सरकार के विरुद्ध असन्तोष फैलाने वाले समाचार न प्रकाशित करने के लिए शपथ-पत्र भरायें । शपथ पत्र के साथ ही प्रकाशकों व मुद्रकों से जमानत के रूप में निश्चित धनराशि की माँग की जा सकती थी जिसे " अवांछित सामग्री " छापने पर जब्त भी किया जा सकता था । सक्षम अधिकारी छापाखानों, मशीनों व अन्य वस्तुओं का भी अधिग्रहण कर सकता था । समाचार पत्रों के - अतिरिक्त पुस्तकों व पर्चों के प्रकाशन पर भी यह अधिनियम लागू होता था । अधिनियम से सम्बन्धित किसी भी कार्यवाही के विरुद्ध न्यायालय में अपील सम्भव नहीं थी ।

उत्तर पश्चिमी प्रान्त में " वर्नाक्यूलर प्रेस - अधिनियम " के विरुद्ध राजनीतिक तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में तीव्र प्रतिक्रिया हुई । लेफ्टीनेंट गवर्नर जी०ई० कूपर ने " वर्नाक्यूलर अधिनियम " से अनेक पत्रों को आतंकित किया । मात्र " पायनियर " इससे अप्रभावित रहा ।

1- वाइसराय की परिषद के तीन सदस्यों ने इस अधिनियम के प्रति अपनी असहमति प्रकट करते हुए कहा कि मूर्ख पत्रकारों की ज्यादती के कारण ऐसा दमनकारी विधान लागू करना उचित नहीं था और फिर अंग्रेजी पत्रों तथा देशी भाषाओं के पत्रों के साथ भेदात्मक व्यवहार करना स्वयं जन आक्रोश का एक कारण बन सकता था ।

§ पी० ई० राबर्टस, ब्रिटिश कालीन भारत का इतिहास, पृ०339

" हिन्दी प्रदीप " तथा " अलमोड़ा अखबार " ने वर्नाक्यूलर अधिनियम की तीखी आलोचना की । " हिन्दी प्रदीप " के सम्पादक बालकृष्ण भट्ट ने मई 1878 के अंक में लिखा " अखबार वालों की बड़ी हानि की बात है कि जब इस एक्ट के विरुद्ध कोई बात किसी भी पत्र में छपेगी तो जिले का मजिस्ट्रेट उस अखबार के प्रकाशक या मुद्रक को स्थानीय प्रशासन की ओर से तलब करेगा और धमकी देकर उससे मुचलका लिखा लेगा कि वह भविष्य में ऐसी बात न प्रकाशित करे । वाह । क्या न्याय है जो मजिस्ट्रेट किसी भी मुद्रक या प्रकाशक को बुरा समझे वह मुंसिफ बन उससे मुचलका भी लिखा लेगा । भला ऐसा भी कभी सुनने में आया है जो किसी पर दोष लगाए वही उसका न्याय करे ।"[1]

1880 में ग्लैडस्टन के नेतृत्व में ब्रिटेन में उदार दल की सरकार बनी । ग्लैडस्टन ने ब्रिटेन के प्रधानमंत्री की हैसियत से भारत के वायसराय लार्ड रिपन को लिखा कि " वर्नाक्यूलर प्रेस अधिनियम " अपवाद कारक है इसलिए उसे रद्द करके भारतीय दण्ड संहिता {धारा 124 ए} में संशोधन करना उचित होगा । " वर्नाक्यूलर अधिनियम " को रद्द करने वाला विधेयक बिना बहस के सात दिसम्बर 1881 को पारित हो गया । इसके बाद भी डाक अधिकारियों के पास इस बात की शक्ति रहने दी गई कि वे किसी भी विद्रोहात्मक प्रकाशन को तलाशी लेकर जब्त कर सकते हैं

लार्ड डफरिन ने सरकार से 1884 में "आफीशियल सीक्रेट अधिनियम" पारित करने की संस्तुति की । यह किसी समाचार पत्र द्वारा सरकारी गुप्त रहस्य प्रकाशित करने पर उसे दण्डित करने के लिए अनावश्यक कानूनी औपचारिकता से बचने के उद्देश्य से बनाया गया था ।

1- रिपोर्ट आन नेटिव प्रेस इन एन0डब्लू0पी0, 1878, पृ0 346,

यह अधिनियम बनाने का विचार मुख्यतः " अमृत बाजार पत्रिका " द्वारा सरकार की कुछ बातों को प्रकाशित करने के बाद किया गया । अक्टूबर 1889 में गवर्नर जनरल ने इस पर अपनी स्वीकृति दे दी । इस अधिनियम के अन्तर्गत सरकार के महत्वपूर्ण अभिलेख, मानचित्र, योजना के प्रारूप की जानकारी " गलत तरीके " से प्राप्त करना दण्डनीय कर दिया गया । इसका उल्लंघन करने वाले को कारावास तथा अर्थदण्ड देने का भी विधान था ।[1]

25 जून, 1891 को भारत सरकार के विदेश विभाग ने अधिसूचना जारी करके प्रेस के अधिकारों को भारतीय रियासतों के बारे में सीमित कर दिया और यह व्यवस्था कर दी कि कोई समाचार पत्र अथवा अन्य मुद्रित सामग्री राजनीतिक प्रतिनिधि की लिखित अनुमति के बिना सम्पादित, मुद्रित या प्रकाशित नहीं की जा सकेगी ।

1896 में महाराष्ट्र में सूखा और प्लेग के दौरान भुखमरी व अव्यवस्था के बारे में समाचार पत्रों ने काफी कुछ प्रकाशित किया समाचार पत्रों के रवैये से असन्तुष्ट सरकार भारतीय दण्ड संहिता में संशोधन करने पर विचार कर रही थी । उत्तर पश्चिमी प्रान्त में समाचार पत्रों ने संभावित संशोधन पर तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की । 1898 में लखनऊ के पत्र " विद्या विनोद " ने लिखा कि " अगर संशोधन पास हो गया तो कहने लिखने की आजादी समाप्त हो जाएगी और समाचार पत्रों, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा ऐसी ही अन्य संस्थाओं के गिने चुने दिन रह जाएंगे ।

1- राम रतन भटनागर, राइज ऐण्ड ग्रोथ आफ हिन्दी जनर्लिज्म, पृ0143

2- विद्या विनोद §लखनऊ§ एक फरवरी, 1898, रिपोर्ट आन नेटिव प्रेस इन एन0 डब्लू0 पी0, 1898, पृ0381

1897 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अमरावती अधिवेशन में प्रस्ताव पास करके सरकार से मांग की कि संशोधन समाचार पत्रों की आजादी घटाने के लिए नहीं, बल्कि बढ़ाने के लिए किया जाना चाहिए । सरकार ने समाचार पत्रों की प्रतिक्रिया की चिन्ता किए बिना 1898 में भारतीय दण्ड संहिता के अनुभाग 124 अ में संशोधन किया और उसमें धारा 153 अ को जोड़ दिया । इसी तरह भारतीय दण्ड संहिता की धारा 505 में भी संशोधन किया गया । इन संशोधनों के अन्तर्गत सरकार सेना में अशान्ति तथा जनता में हिंसा भड़काने वाले पत्रों के संपादकों को कारावास तथा अर्थदण्ड की सजा दे सकती थी ।[1] आनन्दमोहन बसु की अध्यक्षता में मद्रास में 1898 में हुए कांग्रेस अधिवेशन में भारतीय दण्ड संहिता में किए गए संशोधन को समाप्त करने की मांग की गई ।

समाचार पत्रों पर इतने प्रतिबन्ध लगाकर भी सरकार सन्तुष्ट नहीं थी बल्कि 1903 में 1889 के "आफीसियल सीक्रेट एक्ट" में भी संशोधन कर दिया । अब इस अधिनियम के अन्तर्गत नागरिक मामलों को नौसैनिक तथा सैनिक मामलों के समकक्ष रखा गया तथा बिना वैध अधिकार पत्र या पूर्व स्वीकृति के सरकारी कार्यालयों में प्रवेश वंचित कर दिया गया । अधिनियम का उल्लंघन करने वाले की जमानत भी नहीं हो सकती थी । गोपाल कृष्ण गोखले ने इन संशोधनों का तीव्र विरोध किया था । कुछ आंग्ल-भारतीय व सभी भारतीय पत्रों ने इन संशोधनों का विरोध किया । उल्लेखनीय है कि संशोधन के अन्तर्गत लगाए गए प्रतिबन्ध केवल भारतीय पत्रों पर ही लागू किए गए । आंग्ल भारतीय पत्र प्रतिबन्धों से लगभग मुक्त थे ।

1- सं0 वेद प्रताप वैदिक, हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम,

संयुक्त प्रान्त में इटावा से प्रकाशित होने वाले सरकार समर्थक तथा मुस्लिम साम्प्रदायिकता की नीति पर चलने वाले पत्र " अलबशीर " ने 1906 में लिखा कि सरकार द्वारा प्रेस कानून के मामले में आंग्ल भारतीय पत्रों को दी जा रही छूट अनैतिक है । बरेली के " यूनियन गजट ", मेरठ के " शाहना-ए-हिन्द " तथा लखनऊ के "अवध अखबार " भारतीय दण्ड संहिता में संशोधन तथा आंग्ल भारतीय पत्रों के साथ सरकार के पक्षपातपूर्ण व्यवहार की निन्दा की । इलाहाबाद के " इण्डियन पीपुल " नामक अंग्रेजी के समाचार पत्र ने लिखा कि आंग्ल भारतीय पत्रों के कार्यालयों में सरकारी अधिकारियों का जाने का साहस नहीं होता लेकिन भारतीय समाचार पत्रों में साधारण पुलिस अधिकारी बिना अनुमति लिए प्रवेश करके वहाँ के काम काज को अस्त-व्यस्त कर सकता है ।

देश व्यापी स्वदेशी आन्दोलन को कुचलने के लिए सरकार ने जून 1908 में " न्यूज पेपर एक्ट " { इन्साइटमेन्ट टु आफेन्सेज } बनाया । इसके अन्तर्गत विद्रोहात्मक लेख प्रकाशित करने वाले समाचार पत्रों के सम्पादकों के विरुद्ध न्यायिक कार्यवाही करने के अधिकार स्थानीय अधिकारियों को दिए गए । स्थानीय अधिकारी " आपत्तिजनक लेख " प्रकाशित करने वाले समाचार-पत्र के छापेखाने तथा सम्पत्ति को भी जब्त कर सकते थे तथा 1867 के " प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन आफ बुक एक्ट " के अन्तर्गत जारी किए गए लाइसेन्स को भी समाप्त कर सकते थे ।

संयुक्त प्रान्त में " न्यूज पेपर " { इन्साइटमेन्ट आफेन्सेज एक्ट } का भारतीय पत्रों ने तीव्र विरोध किया । बरेली के " रोहिलखण्ड गजट " ने 16 फरवरी, 1908 को लिखा कि भारतीय अखबार इस अधिनियम से बड़ी दुविधा में पड़ गए हैं । सामान्य ढंग से

मांग करने पर सरकार जनहित में कोई सुनवाई नहीं करती और कठोर भाषा में लिखने पर सम्पादकों को सजा दी जाती है । अधिकांश संपादक अनुचित नहीं लिखते किन्तु कुछ के अपराध के लिए सबको सजा में शामिल किया जाता है । " इण्डियन पीपुल " §इलाहाबाद§, "सिटीजन " § इलाहाबाद § ने 14 जून, 1908 को तथा " शाहना-ए-हिन्द" ने अधिनियम को अनुचित बताते हुए सरकार की कटु आलोचना की । दूसरी ओर 10 जून, 1908 को " अलीगढ़ इन्स्टीट्यूट गजट " तथा 16 जून को " कायस्थ हितकारी " §आगरा§ ने अधिनियम का समर्थन करते हुए लिखा कि समाचार पत्रों की आजादी का तात्पर्य स्वच्छन्दता नहीं है । कोई भी सरकार अखबारों को अत्यधिक आजादी देने का खतरा नहीं मोल लेगी । 1908 में रासबिहारी घोष की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का तेईसवां अधिवेशन मद्रास में हुआ । अधिवेशन में 1908 के प्रेस अधिनियम को रद्द करने की मांग की गई ।[2]

1909 में मार्ले मिन्टो सुधार लागू किए गए । इसके अन्तर्गत व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई जिसमें काफी संख्या में निर्वाचित सदस्य भी गए । वार्षिक बजट पर बहस करने, अनुपूरक प्रश्न पूछने तथा आम सार्वजनिक हित के मामलों पर कौंसिल के सदस्य गैर सरकारी प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते थे । 1910 में प्रथम अधिनियम के रूप में " प्रेस एक्ट " प्रस्तुत किया गया जिसमें समाचार पत्रों के अधिक

1- कायस्थ हितकारी, 10 जून, 1908, रिपोर्ट ऑन् नेटिव प्रेस इन यू०पी० § 1908 §, पृ० 73।

2- सं० वेद प्रताप वैदिक, हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम, पृ०86

अच्छे नियंत्रण का प्राविधान था । वाइसराय परिषद के भारतीय सदस्य इसके विरुद्ध थे किन्तु 24 जनवरी, 1910 को एक क्रान्तिकारी ने कलकत्ता उच्च न्यायालय के बाहर एक पुलिस अधिकारी की हत्या कर दी जिससे वातावरण " प्रेस एक्ट " के पक्ष में हो गया तथा अधिनियम पारित हो गया ।[1]

1910 का " प्रेस अधिनियम " समाचार पत्रों के विरुद्ध ब्रिटिश सरकार का कठोरतम कदम था । इससे समाचार पत्रों पर नौकरशाही का लगभग पूर्ण प्रभुत्व हो गया । सरकारी अधिकारी जमानत की राशि माँग सकते थे और इच्छानुसार उसे जब्त कर सकते थे[2]। अधिकारी गण मुद्रणालयों पर भी कब्जा कर सकते थे । अधिनियम में एक बार किसी अखबार की जमानत जब्त होने पर पुनः अखबार निकालने पर नया घोषणा पत्र दाखिल करने तथा जमानत की राशि पहले से दो गुनी जमा करने का विधान था । एक भारतीय न्यायालय के अंग्रेज न्यायाधीश सर लारेन्स जेनकिंस ने प्रेस एक्ट की कठोरता के बारे में कहा था कि " अनुच्छेद चार की धारायें बहुत व्यापक हैं और इसमें उन सारी बातों का समावेश है जो कभी भी किसी आदमी के दिमाग में आ सकती है । कहना मुश्किल है कि कोई तेज चालाक आदमी किस सीमा तक इस अनुच्छेद का प्रयोग कर लेगा । इसका प्रयोग कुछ ऐसी किताबों के विरुद्ध भी हो सकता है जो तारीफ के काबिल हैं ———— । दूसरों के आश्रित दयनीय स्थिति में रहने वाले निर्धनों पर इसके द्वारा आघात सम्भव है । किसी वर्ग विशेष की प्रशंसा खतरे से खाली नहीं होगी । जो उत्तम साहित्य माना जाता है ।

1- एम0 चलपति राव, समाचार पत्र, पृ0 139

2- ए0आर0देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि,पृ018९

उसका अधिकांश भाग इसकी पकड़ में आ ही जाएगा ।" ज्ञातव्य है कि अनुच्छेद चार, 1910 के प्रेस अधिनियम की एक धारा है जिसे बाद में 1931 तथा 1932 के अधिनियम में भी रखा गया ।[1]

संयुक्त प्रान्त के समाचार पत्रों ने 1910 के प्रेस अधिनियम की कटु आलोचना की । इलाहाबाद के अंग्रेजी दैनिक "लीडर" ने 6 फरवरी, 1910 को लिखा कि " भारतीय पत्रों के लिए पहले के ही कानून पर्याप्त थे इसलिए इस कानून की जरूरत नहीं थी ।" लखनऊ के पत्र " एडवोकेट " ने 10 फरवरी, 1910 को "प्रेस अधिनियम " को "मूर्खतापूर्ण" होने की संज्ञा दी । इलाहाबाद के हिन्दी साप्ताहिक " अभ्युदय " ने चौदह फरवरी को इस अधिनियम पर टिप्पणी करते हुए लिखा कि यह अधिनियम भारतीय समाचार पत्रों पर बोझ है । अब तो किसी स्थानीय अधिकारी की ज्यादती की आलोचना भी सम्भव नहीं रह गई ।[2] भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने इलाहाबाद {1910}, कलकत्ता {1911}, बांकीपुर {पटना}{1912}, करांची {1913}, मद्रास {1914},बम्बई {1915} तथा लखनऊ { 1916} के अधिवेशनों में प्रस्ताव पारित करके सरकार से 1910 के प्रेस एक्ट को रद्द करने की मांग की ।

1910 का प्रेस अधिनियम संयुक्त प्रान्त के पत्रों के लिए बहुत घातक सिद्ध हुआ । बालकृष्ण भट्ट के " हिन्दी प्रदीप " {इलाहाबाद}, हसरत मोहानी के " उर्दू-ए-मौला " {कानपुर}, सूफी -

---

1- ए0आर0 देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ0185

2- " अभ्युदय ", 14 फरवरी, 1910, रिपोर्ट ऑन् नेटिव प्रेस इन एन0 डब्लू पी0, 1910, पृ0 123

अम्बा प्रसाद के " जाम्युल उलूम" § मुरादाबाद§ तथा पंडित सुन्दरलाल के "कर्मयोगी" §इलाहाबाद§ का प्रकाशन प्रेस अधिनियम के अन्तर्गत पहले ही जमानत जब्त हो जाने पर पुनः जमानत मांगी जाने के कारण बन्द हो गया ।[1] 1910-20 के मध्य संयुक्त प्रान्त में लेफ्टीनेन्ट गवर्नर जे०पी०हीवेट, एल०ए०एस० पोर्टर, जे०एस० मेस्टन तथा सर स्पेन्सर हरकोर्ट बटलर प्रेस कानून के तहत समाचार पत्रों से सख्ती से पेश आए । इनके कार्यकाल में सैकड़ों पत्रों से जमानत मांगी गई जिसके फलस्वरूप अनेकों पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन बन्द हो गया ।

प्रथम विश्वयुद्ध के सूत्रपात होने पर भारत सरकार ने " भारत सुरक्षा अधिनियम " पारित किया । इस अधिनियम के अतिरिक्त 1898 में भारतीय दण्ड संहिता में संशोधित धाराओं 124ए तथा 153ए, " राजद्रोहात्मक अधिनियम " और न्यूज पेपर्स § इन्साइटमेन्ट्स टु आफेन्सेन्ज एक्ट § का प्रयोग युद्ध काल के दौरान समाचार पत्रों पर पूर्ण अंकुश लगाए रखने के लिए किया गया । संयुक्त प्रान्त में 1914 में लेफ्टीनेंट गवर्नर जे०एस० मेस्टन के आदेश से विश्व युद्ध के सम्बन्ध में " आपत्तिजनक लेख " प्रकाशित करने के कारण छः समाचार पत्रों से जमानत मांगी गई जिससे उनका प्रकाशन बन्द हो गया । सोलह समाचार पत्रों के सम्पादकों को चेतावनी दी गई तथा एक अखबार के सम्पादक को कारावास का दण्ड दिया गया ।[2]

युद्ध काल के दौरान प्रान्त में " भारत सुरक्षा अधिनियम " के अन्तर्गत लेफ्टीनेंट गवर्नर ने छापाखानों तथा समाचार पत्रों के लिए ऐसे भी आदेश जारी किए जिनका युद्ध या समाचार पत्रों से कोई

1- एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट आफ यूनाइटेड प्राविन्सेज आफ आगरा ऐण्ड अवध, 1910-11, पृ० 53

2- वही, 1914-15, पृ० 33

सम्बन्ध नहीं था । ये मनमाने तथा असंगत आदेश समाचार पत्रों पर अनावश्यक रूप से दबाव बनाए रखने की सरकार की नीति के अंग थे ।

मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन के वातावरण में प्रारम्भ किए गए थे । 1921 में तेज बहादुर सप्रू की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई जिसे 1910 के प्रेस अधिनियम को रद्द या उसमें संशोधन करने के लिए सुझाव देने का काम सौंपा गया । समिति की संस्तुति तथा प्रेस अधिनियमों के विरुद्ध राष्ट्रव्यापी असन्तोष को देखकर सरकार ने 1922 में " प्रेस लॉ रिपेल एण्ड अमेन्डमेन्ट एक्ट " पारित किया । इसके अनुसार 1908 का" न्यूज पेपर्स § इन्साइटमेन्ट टु आफेन्सेज § एक्ट " तथा 1910 का " इण्डियन प्रेस एक्ट " रद्द कर दिया गया तथा " प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन आफ बुक्स एक्ट" की धाराओं को सामान्य हल्का कर दिया गया ।[1]

समाचार पत्र-पत्रिकाओं द्वारा नायक जाति में व्याप्त वेश्यावृत्ति की प्रवृत्ति के विरुद्ध छेड़े गये वैचारिक अभियान के फलस्वरूप संयुक्त प्रान्त की सरकार ने इस कुप्रथा को समाप्त करने के उद्देश्य से " नायक बालिका संरक्षण अधिनियम 1929 " पारित किया । काउन्सिल में इस बिल को कैप्टेन नवाब सर मुहम्मद अहमद सैयद खाँन ने 1 फरवरी, 1929 को प्रस्तुत किया । सरकार ने इस बिल के प्रारूप को सदस्यों की आम सहमति से तैयार किया था । इस बिल को पास करने के दौरान काउन्सिल में हुई चर्चा में पं0 बद्रीदत्त पाण्डेय, पं0 गोविन्द बल्लभ पंत, बाबू भगवती सहाय बेदार, चौधरी धर्मवीर सिंह आदि सदस्यों ने

1- ए0 आर0 देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ0 185

प्रमुख रूप से भाग लिया । इस अधिनियम के अन्तर्गत जिला अधिकारियों को यह अधिकार मिल गया कि वे सामान्य अथवा विशेष आदेश को निर्धारित प्रक्रिया द्वारा प्रकाशित करने के उपरान्त अपने कार्यक्षेत्र में आने वाले किसी भी नायक जाति के सदस्य को वाँछित सूचना प्राप्त करने के उद्देश्य से अपने समक्ष बुला सकता था । उपस्थित न होने पर, सूचना न देने पर अथवा गलत सूचना देने पर जिलाधिकारी 6 माह का कारावास अथवा ढ़ाई सौ रुपये जुर्माने का दण्ड दे सकता था । जुर्माना और कारावास दोनो दण्ड साथ-साथ भी दिये जा सकते थे । जिला अधिकारी अपने कार्यक्षेत्र में किसी के भी संरक्षकत्व में रहने वाली नाबालिग नायक जाति की लड़की को कुमायूँ से बाहर ले जाने के लिये लिखित आदेश द्वारा प्रतिबन्धित कर सकता था जिससे कि उस बालिका को वेश्यावृत्ति में जाने से रोका जा सके । यदि जिलाधिकारी को सन्देह उत्पन्न हो जाये कि नायक जाति की कोई लड़की वेश्यावृत्ति के लिये बेची जा सकती है तो वह उस लड़की को एक निर्धारित समय अथवा विवाह होने तक उसी धर्म के इच्छुक एवं उत्तरदायी व्यक्ति के संरक्षकत्व में भेज सकता था । अधिनियम का कड़ाई से पालन सुनिश्चित करने के उद्देश्य से ही इसके अन्तर्गत यह प्राविधान किया गया कि जिला अधिकारी द्वारा इस कार्य के निर्वाह में अवज्ञा तथा प्रतिरोध उत्पन्न करने वाले व्यक्ति को एक वर्ष का कठोर कारावास अथवा पाँच सौ रुपया जुर्माना या दोनों ही सजा भुगतनी होगी ।[1]

इसी वर्ष अक्टूबर में संयुक्त प्रान्त की सरकार ने " नाबालिग बालिका संरक्षण अधिनियम 1929 " भी समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं के बढ़ते हुये दबाव के कारण वेश्यावृत्ति के उन्मूलन के उद्देश्य से पारित किया । इस अधिनियम के अन्तर्गत यह प्राविधान किया गया कि

1- प्रोसिडिंग्स आफ द लेजिस्लेटिव काउन्सिल आफ यूनाइटेड प्राविन्सेज, फरवरी, 1929, पृ0 387 - 431

यदि स्थानीय सरकार आश्वस्त हो कि संयुक्त प्रान्त का कोई समुदाय या वर्ग अपनी नाबालिग बालिका को वेश्यावृत्ति की ओर उन्मुख करना चाहता है तो वह ऐसे समुदाय या वर्ग को प्रतिबन्धित वर्ग घोषित कर सकता है । शासकीय अधिसूचना निर्गत करने के पश्चात एक माह के अन्दर उठाई गई आपत्तियों के निराकरण के उपरान्त ही इस प्रकार की घोषणा सम्भव थी । इस प्रकार से प्रतिबन्धित किये गये समुदाय या वर्ग को दण्ड देने के उद्देश्य से " नायक बालिका संरक्षण अधिनियम 1929 " के प्राविधानों को प्रभावी माना गया ।[1]

1927 के बाद भारतीय राजनीति में पुनः तेजी आ जाने पर सरकार ने प्रेस को और अधिक नियंत्रण में रखने के उद्देश्य से 1931 में " इण्डियन प्रेस इमेरजेन्सी पावर्स एक्ट " पारित किया । एक वर्ष पश्चात् इस कानून को 1932 के " इमेरजेन्सी पावर्स आर्डिनेन्सेज " के माध्यम से और प्रभावशाली बनाया गया । 1932 के " क्रिमिनल लॉ अमेन्डमेन्ट एक्ट " की धारा 14, 15, 16 की सहायता से इसका संशोधन भी हुआ । 1931 के प्रेस कानून ने भारतीय समाचार पत्रों की आजादी पर कुठाराघात किया । इसके अनुसार सक्षम अधिकारी को जमानत माँगने तथा उसे जब्त करने के अतिरिक्त अन्य अधिकार भी दिए गए । इसका क्षेत्र इतना व्यापक था कि उदारवादी तथा नरमदल के अखबार भी उससे प्रभावित हो सकते थे ।[2] अधिनियम में यह स्पष्ट उल्लिखित था कि इसका परम –

1– प्रोसिडिंग्स आफ द लेजिस्लेटिव काउन्सिल आफ यूनाइटेड प्राविन्सेज़, अक्टूबर, 1929, पृ0 308

2– कंडीशन आफ इण्डिया । इंग्लैण्ड की इण्डिया लीग द्वारा 1932 में भारत की राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक स्थिति के आकलन के लिए भेजे गए प्रतिनिधि मण्डल की रिपोर्ट । प्रतिनिधि मण्डल में मोनिका व्हाटले, इलीन विल्किनसन, लियो नार्ड डब्लू0 मैटर्स तथा वी0के0 कृष्णा मेनन थे । पृ0 286-90

उद्देश्य प्रेस पर अपेक्षाकृत अधिक नियंत्रण रखना है । ब्रिटिश ताज के प्रति जनता में अविश्वास उत्पन्न करने के प्रयास, कानून तथा व्यवस्था के संचालन और राजस्व वसूली में हस्तक्षेप, सरकारी अधिकारियों को त्याग पत्र देने के लिए उकसाने, जनता में सरकार के प्रति घृणा का भाव फैलाने तथा आतंकित करने वालो को दण्डित करने के लिए इस कानून में व्यवस्था थी । सर्वविदित है कि केन्द्रीय असेम्बली में गृह सदस्य सर हेनरी हेग ने इस अधिनियम को कठोरता को स्वीकार किया था ।

1932 के " इमेरजेन्सी पावर्स आर्डिनेन्स " के तहत सरकार ने कुछ प्रान्तों में कोई विशेष समाचार प्रकाशित करने पर प्रतिबन्ध लगाए किन्तु दूसरे प्रान्तों के अखबारों ने उस समाचार को छापा । इस कानून के अन्तर्गत दो लाइनों के शीर्षक, मोटे टाइप समाचारों के क्रम - विन्यास तथा कुछ राजनीतिक नेताओं के चित्र प्रकाशित करने पर रोक लगाई गई । संयुक्त प्रान्त में भी प्रेस पर नियंत्रण के लिए कई अध्यादेश जारी किए गए ।

1931-32 के प्रेस कानूनों का संयुक्त प्रान्त के बहुत से समाचार पत्र-पत्रिकाओं पर प्रभाव पड़ा । 1931 में नए प्रेस कानून के अन्तर्गत 35 समाचार पत्रों से जमानत मांगी गई तथा 63 पत्रों के सम्पादकों को " आपत्तिजनक लेख " छापने पर चेतावनी दी गई । " आपत्तिजनक " लेख छापने के कारण मांगी गई जमानत न देने से कानपुर के "वर्तमान" का प्रेस सरकार ने जब्त कर लिया । "आज" §वाराणसी§ का प्रकाशन

1- यूनाइटेड प्राविन्सेज कोड भाग - 5।, §1927-1942§, पृ014-16,

11 मई, 1930 से 29 अक्टूबर, 1930 तक बन्द रहा । प्रेस अधिनियम के अन्तर्गत "स्वदेश" {गोरखपुर} "श्रीकृष्ण" तथा "वीर भारत" का प्रकाशन बन्द हो गया । 1931 में दमनकारी प्रेस कानून से समाचारपत्रों द्वारा सरकार की आलोचना में कुछ कमी आई । इस वर्ष 9 पत्रों की जमानत जब्त हुई तथा 8 समाचार पत्रों के सम्पादकों को चेतावनी दी गई । "प्रताप" {कानपुर} ने सम्पादकीय का छापना बन्द कर दिया । जुलाई, 1931 में प्रकाशित एक " आपत्तिजनक" लेख के कारण " प्रताप" के सम्पादक बालकृष्ण शर्मा "नवीन" को एक वर्ष के कारागार का दण्ड दिया गया । "अभ्युदय" {इलाहाबाद} का प्रकाशन भी बन्द हो गया तथा " ज्ञानशक्ति " " उदय " और " डिस्ट्रिक्ट गजट " की जमानत जब्त कर ली गई ।[1] संयुक्त प्रान्त में समाचार पत्रों को कठोरतापूर्वक दण्डित करने का यह क्रम 1935 तक जारी रहा ।

1932 के "विदेशी सम्बन्ध अधिनियम " ने उन समाचारों के प्रकाशन पर दण्ड का विधान किया जिनसे ब्रिटिश सरकार और अन्य देशों के मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों पर प्रभाव पड़ सकता था । 1934 में देशी राज्यों में प्रशासन को कमजोर बनाने तथा असन्तोष को बढ़ावा देने वाले समाचार प्रकाशित करने पर रोक लगा दी गयी । इन कानूनों ने भारतीय प्रेस की आजादी का और अधिक हनन किया । द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान सरकार ने समाचार पत्रों पर नियंत्रण का शिकंजा और मजबूत किया । संयुक्त प्रान्त के मुख्य सचिव ने समाचार पत्रों के सम्पादकों को आदेश दिया कि विश्व युद्ध सम्बन्धी समाचारों के शीर्षक जांच के लिए सचिव के पास भेजे जायें ।[2] नेशनल हेराल्ड {लखनऊ} ने कई माह तक युद्ध

1- एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ यूनाइटेड प्राविन्सेज, 1931-32, पृ067-69

2- वही, 1939-40, पृ0 23

सम्बन्धी समाचार बिना शीर्षक के प्रकाशित किए तथा कुछ समय तक सम्पादकीय छापना बन्द कर दिया । 25 अक्टूबर उन्नीस सौ चालीस को भारत सरकार ने विश्वयुद्ध में ब्रिटेन के पक्ष का विरोध करने वाले समाचारों के प्रकाशन पर रोक लगा दी । " आफीशियल सीक्रेट एक्ट " में संशोधन करके यह व्यवस्था भी की गई कि शत्रु के उपयोग में सहायक होने वाले समाचार प्रकाशित करने पर मृत्युदण्ड या आजीवन कारावास की सजा दी जाएगी । "प्रेस {इमेरजेन्सी पावर्स} अधिनियम " में संशोधन करके शत्रु को गोपनीय सूचनाएँ देने अथवा भारतीय रक्षा नियमों में परि- - भाषित उत्तेजनात्मक कार्यवाही करने पर भी दण्ड की व्यवस्था की गई ।

महात्मा गाँधी द्वारा व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ करने पर भारत सरकार ने अधिसूचना जारी की जिसमें कहा गया कि भारत रक्षा नियमावली के 41वें नियम के ग्यारहवें उपनियम के खण्ड {ख} द्वारा प्रदत्त शक्तियों का उपयोग करते हुए केन्द्रीय सरकार ब्रिटिश भारत में किसी मुद्रक, प्रकाशक या सम्पादक द्वारा किसी भी ऐसी सामग्री का मुद्रण निषिद्ध घोषित करती है जिसका सम्बन्ध प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से विद्रोह, अशान्ति या हिंसा फैलाने के लिए किसी तरह की बैठकें करने या आक्रमण करने से हो । यह आदेश केन्द्र अथवा प्रान्तीय सरकारों द्वारा समाचार पत्रों के प्रकाशन के लिए दी गई किसी सामग्री पर लागू नहीं होगा ।[1] व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान संयुक्त प्रान्त में इस राजाज्ञा के अन्तर्गत अनेक पत्रों के सम्पादक दण्डित किए गए ।

1- के0 बी0 मेनन, द प्रेस लॉज इन इण्डिया, पृ0 284

1942 अगस्त में कांग्रेस द्वारा भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ करने पर " भारत रक्षा नियमों " के तहत एक नई अधिसूचना जारी की गई । इसका उद्देश्य कांग्रेस की गतिविधियों के समाचारों को प्रकाशित न होने देना था । आन्दोलन के प्रारम्भ में ही समाचार पत्रों पर कड़ा नियंत्रण लगा दिया गया ।[1] संयुक्त प्रान्त में राष्ट्रीय विचारों के सभी प्रमुख समाचार पत्रों ने प्रकाशन स्थगित कर दिया । इनमें " नेशनल हेराल्ड" §लखनऊ§ " आज " §वाराणसी§ " प्रताप " §कानपुर§ प्रमुख थे । समाचार पत्रों का प्रकाशन 1943 में ही सामान्य हो गया । इस बीच अनेक प्रेस कानूनों के तहत अखबारों के कार्यालयों पर छापे मारे गए और उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली गई ।

केन्द्र में 1947 में अन्तरिम सरकार बनने के बाद समाचार पत्रों के विरुद्ध प्रयुक्त मनमानी शक्तियाँ समाप्त हो गई । संविधान सभा द्वारा निर्धारित मौलिक अधिकारों के सन्दर्भ में भारत के प्रेस कानूनों की छानबीन करने के उद्देश्य से सरकार ने " प्रेस कानून जाँच समिति " गठित की । इस समिति ने " प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन आफ बुक्स एक्ट " में सामान्य फेरबदल करने, "इण्डियन स्टेट्स §प्रोटेक्शन§ एक्ट 1934 " तथा " इण्डियन प्रेस § इमरजेन्सी पावर्स § एक्ट 1931 " को रद्द करने व इसके कुछ प्रावधानों को देश के सामान्य कानून में शामिल करने, "विदेश संबंध अधिनियम" को रद्द करने तथा उसके स्थान पर पारस्परिकता के आधार पर अधिक व्यापक विधान लागू करने, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 124ए का स्वरूप बदलने, सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में शान्तिपूर्ण परिवर्तन के हित में धारा 153 ए की प्रयुक्ति को स्पष्टीकरण द्वारा निकाल देने तथा दण्ड

1- गोविन्द सहाय, सन् बयालिस का विद्रोह, पृ0 3

प्रक्रिया संहिता की धारा 144 को प्रेस पर न लागू करने की सिफारिश की थी ।[1] समिति ने यह भी सिफारिश की थी कि आपात शक्तियों के परिपालन में प्रेस के विरुद्ध सभी प्रकार की कार्यवाही करने से पूर्व प्रान्तीय सरकारों तथा प्रेस सलाहकार समिति अथवा समकक्ष संस्था के मध्य परामर्श होना चाहिए ।

सर थामस मुनरो के कथनानुसार स्वतंत्र प्रेस तथा अपरिचितों का उपनिवेश ये ऐसी असंगत वस्तुएँ हैं जो अधिक समय तक नहीं टिक सकती ।[2] भारतीय प्रेस के बारे में मुनरो का कथन पूर्णतया समीचीन प्रतीत होता है । भारत में राष्ट्रवाद के विकास के साथ ब्रिटिश सरकार ने प्रेस पर अंकुश लगाने के लिए एक के बाद एक प्रेस कानून बनाए । समाचार पत्रों के दमन के लिए बनाए गए प्राविधानों का संयुक्त प्रान्त के समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने साहसपूर्वक सामना किया । दमन चक्र के प्रारम्भिक दौर में यद्यपि " अलमोड़ा अखबार ", " हिन्दी प्रदीप ", "कर्मयोगी " तथा " भविष्य " जैसे पत्रों का प्रकाशन सदैव के लिए बन्द हो गया परन्तु "आज" "प्रताप"."लीडर", "नेशनल हेराल्ड" तथा "भारत" जैसे पत्रों ने प्रेस अधिनियमों का सामना किया । समाचार पत्रों पर सरकार के दमन चक्र के विरोध में राष्ट्रीय पत्रों को पर्याप्त जन समर्थन मिला । कई दशकों तक अनेक कठिनाइयों के बाद भी राष्ट्रीय समाचार पत्रों ने अपनी नीति नहीं बदली और देश को आजादी मिलने के साथ ही समाचार पत्रों को दमनकारी प्रेस कानूनों से मुक्ति मिली ।

1- के०बी० मेनन, द प्रेस लॉज इन इण्डिया, पृ० 298

2- बी०आर० ग्लेग, लाइफ ऑफ सर थामस मुनरो, खण्ड 2, पृ० 95

::x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x::

** अध्याय : सप्तम् **

* उपसंहार *

::x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x::

पत्रकारिता के ही कारण देश के विभिन्न भागों में रहने वाले विभिन्न सामाजिक दलों के बीच अनवरत और व्यापक विचार विनिमय संभव हो सका और जनसाधारण के मध्य सामाजिक और मानसिक सम्बन्ध स्थापित हो सका । पत्रकारिता द्वारा उपलब्ध राजनीतिक शिक्षा और प्रचार की सुविधा के कारण ही राष्ट्रीय आन्दोलन का राजनीतिक पक्ष संभव हुआ । सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में राष्ट्रीय सहयोग और अन्तरप्रादेशिक कार्यक्रमों पर विचारों और तर्कों का आदान-प्रदान हुआ और सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक राष्ट्रीय सम्मेलन संगठित हुये । इन सम्मेलनों में पारित कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिये राष्ट्रीय समितियों की स्थापना हुई । इसके चलते वर्द्धनशील संपन्न, जटिल, सामाजिक-सांस्कृतिक राष्ट्रीय अस्तित्व के लिये मार्ग प्रशस्त हुआ । पत्र--कारिता के माध्यम से ही भारत की जनता को दुनिया में होने वाली घटनाओं की भी खबर मिलती रही । भारतीय समाज के जनतांत्रिक पुनर्निमाण के सिद्धान्त और कार्यक्रमों से विश्व को अवगत कराने में पत्रकारिता का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ । पत्रकारिता के ही माध्यम से समाज सुधारकों ने सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के उपायों पर विचार विनिमय किया और संयुक्त कार्यक्रमों के लिये अखिल भारतीय सम्मेलनों का आयोजन किया । इस प्रकार से भारतीय जनता के बीच राष्ट्रीय भाव और चेतना के उदय में, उनके राष्ट्रीय आन्दोलन के संगठन और विकास में, साहित्यों और संस्कृतियों की सृष्टि और विभिन्न देशों के साथ बन्धुत्व की स्थापना में पत्रकारिता की बहुत बड़ी भूमिका रही है ।

उत्तर भारत में सर्वप्रथम उत्तर प्रदेश में पत्रकारिता का विकास हुआ । यहाँ से प्रकाशित समाचार-पत्र एवं पत्रिकाओं ने निकटस्थ प्रान्तों में पत्रकारिता के लिये लोगों को प्रोत्साहित किया ।

उत्तर प्रदेश में " हिन्दी प्रदीप ", " अलमोड़ा अखबार " " ब्राह्मण" इन्डियन हेराल्ड " " इन्डियन यूनियन " " हिन्दुस्तान " " जाम्युलउलम" तथा " हरिश्चन्द्र चन्द्रिका " उन्नीसवीं शताब्दी में राष्ट्रीयता को गति देने वाले प्रमुख समाचार पत्र-पत्रिकायें थीं । इन पत्र-पत्रिकाओं ने भारतीय जनता का शोषण करने वाली ब्रिटिश शासन की नीतियों का विरोध किया और जनता को उसके अधिकारों से अवगत कराके उसे अन्याय का विरोध करने के लिये संगठित होने की प्रेरणा दी । बीसवीं शताब्दी में "स्वराज्य" " अभ्युदय ", " प्रताप ", " वर्तमान ", " आज ", " प्रभा ", " लीडर " "इन्डिपेन्डेन्ट ", " कर्मयोगी ", " भविष्य ", " सैनिक ", " वीर भारत", "अमर उजाला", "शक्ति", " नेशनल हेराल्ड", "स्वाधीन प्रजा", "हंस", "माधुरी; "चाँद", "कमला", "दीदी", "दम्पत्ति", "गृह लक्ष्मी", तथा "वनलता" आदि समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथ-साथ उत्तर प्रदेश के सामाजिक-सांस्कृतिक विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया । " प्रताप ", " अभ्युदय ", " लीडर ", तथा " आज " पत्रों के कार्यालय स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों तथा क्रान्तिकारियों के आश्रय स्थल थे । पंडित मदनमोहन मालवीय ने पत्रकारिता के आदर्शों का पालन करते हुये राष्ट्रीय जन जागरण में मदद की । "अभ्युदय", "लीडर" तथा "भारत" के माध्यम से मालवीय जी ने देश के सामाजिक-सांस्कृतिक विकास और राष्ट्रीय आन्दोलन को नई दिशा दी । पंडित अयोध्यानाथ ने "इन्डियन हेराल्ड" व " इन्डियन यूनियन " के माध्यम से सरकार समर्थक "पायनियर" का मुकाबला किया । पंडित सुन्दरलाल ने "भविष्य" और "कर्मयोगी" द्वारा उग्र राष्ट्रीय पत्रों को एक नई दिशा दी । गणेशशंकर विद्यार्थी ने, "प्रताप" के प्रथम संपादकीय में अपना लक्ष्य स्पष्ट करते हुये लिखा "मनुष्य की उन्नति सत्य की जीत के साथ बँधी है, इसीलिये सत्य को दबाना हम महापाप समझेंगे और उसके प्रचार और प्रसार को महापुण्य " ।

समाजवादी विचारधारा का प्रसार करने में आचार्य नरेन्द्र देव ने " अधिकार " के माध्यम से महत्वपूर्ण कार्य किया। श्री प्रकाश, डॉ0 सम्पूर्णानन्द तथा शिवप्रसाद गुप्त ने पत्रों के उच्च आदर्शों का पालन करते हुये सरकारी नीतियों की मर्यादित आलोचना की परम्परा शुरू की। मुंशी गंगाप्रसाद वर्मा ने बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में " हिन्दुस्तानी " को जन आकांक्षाओं का प्रतिनिधि बनाकर प्रान्तीय सरकार की गलत नीतियों का पर्दाफाश किया। सूफी अम्बा प्रसाद ने पत्रों के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध वातावरण तैयार किया तथा सरकार के विरोध के सम्मुख समर्पण न करने की प्रवृत्ति प्रदर्शित की। राजा रामपाल सिंह, बिशन नारायण दर, मौलाना हसरत मोहानी, सी0वाई0 चिन्तामणि, पुरुषोत्तम दास टण्डन तथा अम्बिका चरण मजूमदार ने भी उत्तर प्रदेश में पत्रकारिता के विकास में प्रमुख योगदान दिया। इनमें से अधिकांश राष्ट्रीय स्तर के नेता होने के साथ ही राष्ट्रसेवक, मूर्धन्य विद्वान तथा समाज सेवी थे। उन्होंने देश को स्वतान्त्र कराने तथा समाज के चतुर्मुखी विकास के लिये पत्रों को माध्यम बनाया। इतनी अधिक संख्या में विशिष्ट लोगों के पत्रकारिता से सम्बद्ध होने के कारण उत्तर प्रदेश में पत्रकारिता का विकास अन्य राज्यों की अपेक्षा तीव्रगति एवं प्रभावपूर्ण तरीके से हुआ।

पत्रकारिता के विभिन्न क्षेत्रों में नये आयाम स्थापित करने में उत्तर प्रदेश सदैव अग्रणी रहा। प्रथम जातीय पत्र " कायस्थ समाचार " 1878 में इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ जिसका अनुकरण करके अगले कुछ दशकों में लगभग सभी प्रमुख जातियों ने अपने-अपने जातीय पत्र प्रकाशित किये। इस समय के जातीय पत्रों की यह विशेषता थी कि वे अन्य जातियों की निन्दा या विरोध नहीं करते थे। अपनी

समाजवादी विचारधारा का प्रचार करने में आचार्य नरेन्द्र देव ने " अधिकार " के माध्यम से महत्वपूर्ण कार्य किया। श्री प्रकाश, डॉ0 सम्पूर्णानन्द तथा शिवप्रसाद गुप्त ने पत्रों के उच्च आदर्शों का पालन करते हुये सरकारी नीतियों की मर्यादित आलोचना की परम्परा शुरू की। मुंशी गंगाप्रसाद वर्मा ने बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में " हिन्दुस्तानी " को जन आकांक्षाओं का प्रतिनिधि बनाकर प्रान्तीय सरकार की गलत नीतियों का पर्दाफाश किया। सूफी अम्बा प्रसाद ने पत्रों के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध वातावरण तैयार किया तथा सरकार के विरोध के सम्मुख समर्पण न करने की प्रवृत्ति प्रदर्शित की। राजा रामपाल सिंह, बिशन नारायण दर, मौलाना हसरत मोहानी, सी0वाई चिन्तामणि, पुरुषोत्तम दास टण्डन तथा अम्बिका चरण मजूमदार ने भी उत्तर प्रदेश में पत्रकारिता के विकास में प्रमुख योगदान दिया। इनमें से अधिकांश राष्ट्रीय स्तर के नेता होने के साथ ही राष्ट्रप्रेमक, मूर्धन्य विद्वान तथा समाज सेवी थे। उन्होंने देश को स्वतन्त्र कराने तथा समाज के चतुर्मुखी विकास के लिये पत्रों को माध्यम बनाया। इतनी अधिक संख्या में विशिष्ट लोगों के पत्रकारिता से सम्बद्ध होने के कारण उत्तर प्रदेश में पत्रकारिता का विकास अन्य राज्यों की अपेक्षा तीव्रगति एवं प्रभावपूर्ण तरीके से हुआ।

पत्रकारिता के विभिन्न क्षेत्रों में नये आयाम स्थापित करने में उत्तर प्रदेश सदैव अग्रणी रहा। प्रथम जातीय पत्र " कायस्थ समाचार " 1878 में इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ जिसका अनुकरण करके अगले कुछ दशकों में लगभग सभी प्रमुख जातियों ने अपने-अपने जातीय पत्र प्रकाशित किये। इस समय के जातीय पत्रों की यह विशेषता थी कि वे अन्य जातियों की निन्दा या विरोध नहीं करते थे। अपनी

जाति का सर्वांगीण विकास करना ही इन जातीय-पत्रों का मुख्य उद्देश्य था । 1874 में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने "बालाबोधिनी" नामक महिलाओं की प्रथम पत्रिका प्रकाशित की । यद्यपि विभिन्न कारणों से यह पत्रिका शीघ्र ही बन्द हो गयी परन्तु बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ के साथ ही नारी उत्थान के लिये उत्तर प्रदेश के विभिन्न नगरों से महिलाओं की अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । "गृह लक्ष्मी", "स्त्रीदर्पण", "वनलता", "दीदी", "कमला", "दम्पत्ति", तथा "चाँद" आदि ऐसी ही पत्रिकाएँ थी जिनमे नारी संसार की समस्याओं पर लेख, कविता तथा व्यंग्य प्रमुखता के साथ प्रकाशित किये जाते थे । 1915 में इलाहाबाद से प्रकाशित "विज्ञान" मासिक-पत्रिका भारत मे विज्ञान पत्रकारिता की पहली कड़ी थी । विज्ञान सम्बन्धी महत्वपूर्ण जानकारी को जन सुलभ बनाने तथा विज्ञान पत्रकारिता को विकसित करने की दृष्टि से "विज्ञान" ने विशिष्ट भूमिका निभायी । इलाहाबाद से ही 1915 में प्रकाशित "शिशु" ने बाल पत्रकारिता को प्रारम्भ किया ।

हिन्दी को सम्पन्न बनाने तथा उसे गौरवपूर्ण स्थिति में पहुँचाने के लिये भी इस प्रान्त की साहित्यिक पत्रिकाओं ने भगीरथ प्रयास किया । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की " कविवचन सुधा " " हरिश्चन्द्र मैगजीन " तथा "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका " इनमें प्रमुख थी । हिन्दी साहित्य की युग-प्रवर्तक पत्रिका "सरस्वती"का प्रकाशन 1900 में इलाहाबाद से शुरू हुआ । हिन्दी भाषा तथा साहित्य को समृद्ध बनाने तथा कवियों व साहित्यकारों को प्रोत्साहित करने में " सरस्वती"ने " महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । " प्रभा ", " माधुरी; तथा "स्वामी" ने हिन्दी साहित्य के संवर्द्धन में महत्वपूर्ण योगदान दिया ।श्यामसुन्दर दास,

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, बालकृष्ण भट्ट, मुंशी प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सोहन लाल द्विवेदी तथा महादेवी वर्मा जैसे लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार तथा कवि उत्तर प्रदेश की साहित्यिक पत्रिकाओं से सम्बन्ध थे । इनकी रचनाओं ने हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की ।

उत्तर प्रदेश की अनेक पत्र-पत्रिकायें लोकप्रियता तथा प्रसार की दृष्टि से राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय स्तर की थी । " प्रताप " के पाठक न केवल भारत के कोने-कोने में थे बल्कि विश्व में जहाँ भी प्रवासी भारतीय बहुतायत में थे, वहाँ " प्रताप " उत्साह से पढ़ा जाता था । रामानन्द चटर्जी की " मार्डन रिव्यू " तथा सच्चिदानंद सिन्हा की " हिन्दुस्तान रिव्यू " में उच्च स्तरीय लेख प्रकाशित होते थे । भारत में सर्वत्र बौद्धिक वर्ग के पाठकों में दोनो पत्रिकायें बहुत लोकप्रिय थीं । इसकी कुछ प्रतियाँ यूरोपीय देशों में भी जाती थी तथा इसके प्रशंसकों में पाश्चात्य शिक्षा शास्त्री, पत्रकार तथा राजनीतिज्ञ भी थे । 1865 में इलाहाबाद से प्रकाशित " पायनियर " अपनी सरकार समर्थक नीति के कारण देश भर में चर्चित रहा । राष्ट्रीय विचारधारा के पत्र "नेशनल हेराल्ड", "वर्तमान", "आज", "एडवोकेट" तथा "इन्डियन हेराल्ड" में प्रकाशित समाचारों की चर्चा ब्रिटिश संसद तक में होती थी । "लीडर" निष्पक्ष समाचारों व उदारवादी नीति के कारण भारत के उदारवादी दल का मुखपत्र बन गया था ।

पत्रकारिता की छवि में नयी विधाओं की स्थापना करने में उत्तर प्रदेश इसलिये भी आगे था क्योंकि उर्दू § तथा हिन्दी पत्रकारिता को यहाँ शीघ्र ही स्थायित्व मिल गया तथा इस प्रान्त के संपादक व प्रकाशक प्रत्येक दृष्टि से सक्षम तथा नये प्रयोग करने के अभ्यस्त थे ।

उत्तर प्रदेश में पत्रकारिता के प्रारम्भिक चरण में कुछ अन्तर्विरोध रहा । 1835 के पूर्व फारसी पत्रकारिता का वर्चस्व था किन्तु साधनों व प्रभाव की दृष्टि से इनका विशेष महत्त्व नहीं था क्योंकि इनके पाठक अत्यन्त सीमित वर्ग के तथा एक ही विचारधार के लोग थे । फारसी पत्रों के समकालीन ईसाई मिशनरियों द्वारा प्रकाशित किये जाने वाले पत्र थे । फारसी पत्रों को राजकीय संरक्षण नहीं प्राप्त था किन्तु मिशनरियों द्वारा प्रकाशित पत्रों के प्रति ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारियों की सहानुभूति थी । 1835 में अदालत तथा सरकारी कामकाज की भाषा फारसी न रहने पर फारसी पत्रकारिता का स्थान धीरे-धीरे उर्दू पत्रकारिता ने ले लिया । 1840-1860 के मध्य उत्तर प्रदेश में उर्दू पत्रकारिता का वर्चस्व रहा लेकिन इस बीच अंग्रेजी व हिन्दी पत्रकारिता का विकास मन्द किन्तु प्रभावशाली ढंग से हो रहा था । प्रारम्भिक हिन्दी पत्रकारिता पर उर्दू भाषा शैली का प्रभाव था इसलिये इस बीच हिन्दी उर्दू मिश्रित भाषा के पत्र अस्तित्व में आये । मिश्रित भाषा के पत्रों का दौर शीघ्र ही समाप्त हो गया । संस्कृत-पत्रकारिता शुरू होने पर कुछ पत्र हिन्दी संस्कृत मिश्रित भाषा में प्रकाशित हुये किन्तु यह क्रम भी अधिक दिनों तक नहीं चल सका । उर्दू पत्रकारिता ने हिन्दी पत्रकारिता को तथा हिन्दी पत्रकारिता ने संस्कृत पत्रकारिता का क्षेत्र विकसित होने में कोई प्रत्यक्ष सहयोग नहीं किया । हिन्दी व उर्दू पत्रकारिता की पारस्परिक होड़ कई वर्षों तक चली । 1905 के पश्चात राजनीतिक गतिविधियाँ तेज होने के बाद अधिकांश उर्दू पत्रों का रवैया हिन्दी पत्रों के प्रति शत्रुतापूर्ण रहा । अपवादस्वरूप कुछ पत्रों को छोड़कर अधिकांश हिन्दी पत्र उर्दू पत्रों के प्रति उदार थे । बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक तक अधिकांश उर्दू पत्रों की सहानुभूति मुस्लिम लीग के साथ हो गई । इसके प्रतिक्रियास्वरूप हिन्दी के कुछ समाचार पत्रों ने भी हिन्दू महासभा का

समर्थन किया । हिन्दी व उर्दू समाचार पत्रों का यह बिलगाव सरकार के लिये हितकारी सिद्ध हुआ । हिन्दी व उर्दू समाचारपत्रों के ये उग्रतम मतभेद उत्तर प्रदेश में सर्वाधिक थे । उर्दू के अधिकांश समाचारपत्र राष्ट्रीय धारा से जुड़कर स्वतन्त्रता आन्दोलन में सहयोग नहीं कर सके । इसका मुख्य कारण उत्तर प्रदेश में हिन्दी व उर्दू समाचारपत्रों के मध्य विद्यमान गंभीर मतभेद थे ।

1823-1947 के मध्य ब्रिटिश कालीन भारत सरकार ने पत्र-पत्रिकाओं के दमन के लिये अनेक कठोर प्रेस कानून बनाये । अंग्रेजों के मध्य स्वतन्त्र भारतीय प्रेस सदैव विवादास्पद विषय रहा । उन्नीसवीं सदी में वैलेजली, मिन्टो ऐडम, कैनिंग और लिटन प्रेस की आजादी पर कठोर प्रतिबन्ध के पक्षधर रहे लेकिन हेस्टिंग्स, मेटकाफ, मैकाले और रिपन ने भारत में स्वतन्त्र प्रेस का समर्थन किया । सर टामस मुनरो और लार्ड एलफिन्स्टन जैसे उदारवादी ब्रिटिश नेताओं ने भी भारतीय प्रेस पर कठोर प्रतिबन्धों का समर्थन किया । अपने जन्म काल से ही भारतीय राष्ट्रवाद ने जनचेतना के स्फुरण के लिये प्रेस के महत्व को समझा और इसकी स्वतन्त्रता को विछिन्न करने के हर प्रयास का घोर विरोध किया इसलिये प्रेस की स्वतन्त्रता का संघर्ष राष्ट्रीय जन-संग्राम का अनिवार्य अंग रहा है ।

यह उल्लेखनीय तथ्य है कि अंग्रेजों द्वारा बनाये गये दमनकारी प्रेस कानूनों का सर्वाधिक तीव्र प्रतिरोध उत्तर प्रदेश में ही किया गया । उत्तर प्रदेश में प्रेस कानूनों के अन्तर्गत अनेक पत्रों का प्रकाशन सदैव के लिये बन्द हो गया किन्तु सरकार की दमनकारी नीतियों का विरोध करने के लिये उनका स्थान अन्य समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने ले लिया और यह क्रम स्वाधीनता प्राप्ति तक जारी रहा । पत्रकारिता के क्षेत्र में संपादकों के साहस व त्याग तथा सरकार के दमन चक्र की चरम सीमा की दृष्टि से

इलाहाबाद के उर्दू साप्ताहिक स्वराज्य द्वारा किया गया संघर्ष विश्व पत्रकारिता के इतिहास में अनूठा है । 1907 में प्रकाशित स्वराज्य के कुल ढाई वर्षों में 75 अंक निकले । इस अवधि में सरकार ने "आपत्तिजनक सामग्री" प्रकाशित करने के आरोप में "स्वराज्य" के एक के बाद एक आठ संपादकों को कुल 125 वर्ष के कारावास की सजा दी । इनमें से चार संपादक अण्डमान भेजे गये । "स्वराज्य" के संपादक पद के लिये प्रकाशित विज्ञापन की ये पंक्तियाँ "स्वराज्य" अखबार के लिये ऐसा संपादक चाहिये जिसे दो जून सूखी रोटियाँ, एक गिलास सादा पानी तथा हर संपादकीय लेख पर दस वर्ष की सजा मिलेगी " बाद में राष्ट्रीय विचारधार के पत्रों के संपादकों के लिये सिद्धान्त वाक्य बन गयी । 1910 के प्रेस कानून से स्वराज्य का प्रकाशन अवश्य बन्द हो गया लेकिन उससे प्रेरणा पाने वाले राष्ट्रीय-पत्रों का दमन सरकार के लिये सम्भव नही रहा । "प्रताप" के संपादक गणेशशंकर विद्यार्थी ने भारतीय जनता पर हो रहे अत्याचार का प्रतिरोध करने का जो बीड़ा उठाया था उसकी कीमत उन्हें कई मान-हानि के मुकदमों में फंसकर तथा जेल जाकर चुकानी पड़ी । "चाँद" और "भविष्य" के संपादक रामरिख सिंह सहगल ने सरकार की दृष्टि में - " आपत्तिजनक लेखों " के प्रकाशन के आरोप में कई बार जेल यात्राएँ की किन्तु पत्रकारिता के माध्यम से राजनीतिक चेतना के विकास तथा समाज सुधार का सिलसिला उन्होंने बन्द नही होने दिया । सूफी अम्बा प्रसाद को सरकार के दमनचक्र के कारण अपने समाचार-पत्रों का प्रकाशन बन्द करके देश-विदेश की खाक छाननी पड़ी और विदेश में ही उनका दुःखद अन्त हो गया किन्तु उन्होंने अन्यायकारी ब्रिटिश सरकार के सम्मुख समर्पण नहीं किया । महामना मदनमोहन मालवीय ने अपनी पत्नी के आभूषण बेचकर "लीडर" का असमय प्रकाशन बंद होने से बचाया ।

प्रताप नारायण मिश्र ने " ब्राह्मण " तथा बालकृष्ण भट्ट ने "हिन्दी -प्रदीप" का प्रकाशन गम्भीर आर्थिक संकट के बाद भी जारी रक्खा। विशम्भरदत्त गैरोला, विक्टर जोसेफ मोहन जोशी, रमाशंकर अवस्थी तथा बालकृष्ण शर्मा "नवीन" ने कई बार जेल जाकर और कष्ट सहकर भी हार नहीं मानी।

1930-31 तथा 1942-43 के मध्य जब कुछ राष्ट्रीय पत्रों का प्रकाशन कुछ समय के लिये स्थगित कर दिया गया तो उनका स्थान " रणभेरी ", " रणचण्डी ; " चन्द्रिका ", "ज्वालामुखी" " बवंडर ", " रेडफ्लैग " आदि साइक्लोस्टाइल पत्रों ने ले लिया। इसके प्रकाशन का उद्देश्य सरकारी दमन चक्र के विरुद्ध अपनी सक्रियता का आभास कराना तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन एवं जन जागरण के प्रसार में पत्रकारिता के अनवरत सहयोग क्रम को बन्द न होने देना था। अनुकूल परिस्थिति होने पर स्थगित पत्रों का प्रकाशन पुनः प्रारम्भ हो गया। "वर्तमान" के संपादक को "आपत्तिजनक" सामग्री" के प्रकाशन के आरोप में सरकार द्वारा कई बार चेतावनी दी गई, कई बार दण्डित किया गया और उनेक बार जमानत जब्त कर ली गई किन्तु उसने क्रान्तिकारी विचारों के प्रसार व सरकार का विरोध करने की अपनी नीति नहीं बदली। "भविष्य", "कर्मयोगी", "स्वराज्य", "हिन्दी प्रदीप", "अल्मोड़ा अखबार" आदि पत्रों का प्रकाशन यद्यपि प्रेस कानूनों के तहत की गयी कार्यवाही के कारण बन्द हो गया किन्तु " आज ; " प्रताप ","नेशनल हेराल्ड", "अभ्युदय" तथा "ग्रामवासी" का प्रकाशन जारी रहा। प्रेस कानूनों का प्रभाव इन पत्रों पर अल्पकालिक रहा।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक भारतीय समाचार पत्र-पत्रिकाओं में अत्यधिक गतिशीलता आ गई थी उन्होंने अपना ध्यान केवल राजनीतिक घटनाक्रमों की ओर ही नहीं किया अपितु ~~xxxxx~~ सामाजिक-सांस्कृतिक एवं आर्थिक सुधारों में विशिष्ट योगदान दिया । समाज सुधार आन्दोलनों के प्रचार-प्रसार में समाचार पत्रों ने मूक दर्शक न बने रहकर अग्रणी भूमिका निभाई । उन्होंने सामाजिक उत्थान के लिये राष्ट्रवादी राजनीतिक दलों के रचनात्मक कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने में भरपूर सहयोग प्रदान किया । उत्तराखण्ड में उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में कुली बेगार, कुली उतार तथा कुली बरदायश आदि घृणित और निन्दनीय प्रथायें प्रचलित थी । जन-मानस में इन प्रथाओं के विरोध में व्यापक आक्रोश था किन्तु उन्हें सुयोग्य नेतृत्व तथा सशक्त प्रचार माध्यम की आवश्यकता थी । 1871 से " अल्मोड़ा अखबार " के प्रकाशन का प्रारम्भ एक महत्वपूर्ण घटना थी और 1878 के आसपास " समय विनोद" के बन्द हो जाने के बाद उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक यह पत्र स्थानीय स्तर पर अकेला रहा । सरकार परस्त पत्रकारिता 1902 में " गढ़वाल समाचार" और 1905 में " गढ़वाली " के जन्म के साथ ही सरकार के प्रति आवश्यक उदारता के साथ-साथ जनमुखी भी हुई । 1913 के आसपास से स्थानीय पत्रों में बेगार के शोषक स्वरूप को उजागर करने के प्रयासों में वृद्धि हुई और इन पत्रों के प्रत्येक अंक में बेगार - विरोधी तथा इसकी वास्तविकता को बताने वाली टिप्पणियाँ, समाचार तथा ग्रामीणों के पत्र आदि प्रकाशित होने लगे । 1913 के बाद " अल्मोड़ा अखबार ", " गढ़वाली", "विशाल कीर्ति" और "गढ़वाल समाचार " आदि पत्रों ने बेगार का जो विरोध आरम्भ किया वह निरन्तर बढ़ता गया और यह क्रम तब तक जारी रहा जब तक कि बेगार प्रथा का पूर्ण उन्मूलन नहीं हो गया । इसी समय " अल्मोड़ा अखबार " को उत्तराखण्ड का ऐसा पत्र

बनने का अवसर मिला जो पहली बार सरकार की दृष्टि में खतरनाक सिद्ध होने लगा । इसी कारण 1918 में सरकार ने " अलमोड़ा अखबार" से जमानत माँगी जिसके फलस्वरूप यह पत्र 48 साल तक प्रकाशित होने के पश्चात अन्ततः बन्द हो गया। " अलमोड़ा अखबार " के समय में उपजी चेतना और नेतृत्व की जागरूकता के कारण " अलमोड़ा अखबार " की परम्परा में "शक्ति" का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । " अलमोड़ा अखबार " अपने अन्तिम वर्षों में आक्रामक बना था और शक्ति में यह गुण जन्म से था । इसी कारण " शक्ति " उत्तराखण्ड में अपने से पूर्व-प्रकाशित होने वाले सभी पत्रों से भिन्न था । " शक्ति " ने अपने प्रथम अंक में लिखा था कि जहाँ-जहाँ अत्याचार, पाखण्ड और शासन की धींगा-धींगी से लोक पीड़ित होगा, वहाँ "शक्ति" अपना प्रकाश डाले बिना न रहेगा । बेगार-उन्मूलन के अन्तिम दो-ढाई साल पूरी तरह "शक्ति" से जुड़े रहे और बेगार विरोधी चेतना को जन-मन तक संप्रेषित करने में इस पत्र की निर्णायक भूमिका थी । "शक्ति" ने शहरी नेतृत्व और ग्रामीण समाज को जोड़ने के साथ-साथ पूरे उत्तराखण्ड का मुख पत्र बनकर न सिर्फ जी-हजूरों और अधिकारियों वरन् प्रान्तीय सरकार को भी संगठित उत्तराखण्ड के सम्मुख झुकने को विवश कर दिया । उक्त परिस्थितियों में सरकार के पास बेगार उठा लेने के अतिरिक्त कोई विकल्प न था । इसीलिये समाचार पत्रों द्वारा चलाये गये आन्दोलन की सफलता के बाद सरकार ने 1922 में काउन्सिल में बेगार उन्मूलन की औपचारिक घोषणा भी कर दी । स्थानीय पत्रों के अतिरिक्त प्रान्तीय पत्रों ने भी इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । " आज ", " अभ्युदय ", " लीडर " " इन्डिपेन्डेन्ट ; मार्डन रिव्यू" आदि प्रान्तीय पत्रों ने बेगार उन्मूलन आन्दोलन को गतिमान बनाने में पूर्ण सहयोग दिया ।

1914 के प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात अवध के किसानों को भीषण आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। किसानों को इस स्थिति में पहुँचाने का श्रेय ब्रिटिश सरकार द्वारा जमींदारो की सहमति से 1886ई0 में पारित किये गये अवध रेन्ट ऐक्ट को था । इस ऐक्ट के अन्तर्गत किसानो से प्रत्येक 7 वर्ष की समाप्ति के पश्चात जमींदार भरपूर नजराना लेते थे अन्यथा उन्हें जमीन से बेदखल कर देते थे । इस दुःखद स्थिति के विरोध में अवध के किसानो एवं मजदूरों ने 1920-21 ई0 में एक व्यापक आन्दोलन किया जिसने ब्रिटिश सरकार की जड़ों को हिला दिया । उनका यह आन्दोलन प्रत्यक्ष रूप से तो जमींदारो के विरुद्ध था परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने अपना रोष जमींदारो के संरक्षक ब्रिटिश शासकों के प्रति भी प्रकट किया । इस किसान आन्दोलन से मुख्य रूप से प्रतापगढ़, रायबरेली तथा फैजाबाद जनपद प्रभावित हुये । "आज", "लीडर", तथा "इन्डिपेन्डेन्ट" आदि समाचार-पत्रों ने किसान आन्दोलन के विषय में विचारोत्तेजक टिप्पणियाँ प्रकाशित कर आन्दोलन को गतिमान बनाये रखा । इस आन्दोलन ने निश्चय ही ब्रिटिश सरकार को सोचने के लिये मजबूर कर दिया जिसके परिणामस्वरूप अवध रेन्ट ऐक्ट जो कि आन्दोलन तक तात्कालिक कारण था संशोधित कर दिया गया । 1922 में लागू किये गये नये अवध रेन्ट ऐक्ट के अन्तर्गत जबरन बेदखली और नजराने की प्रथा का अन्त कर दिया गया तथा जोतदार को उसकी जमीन पर पूर्ण स्वामित्व निर्धारित लगान पर जो कि प्रत्येक दस वर्ष के पश्चात परिवर्तनीय था मिल गया । पं0 जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि इस किसान आन्दोलन के माध्यम से मुझे भारतीय समस्या के उस मौलिक पक्ष का ज्ञान हुआ जिसकी ओर राष्ट्रवादियों ने कभी भी ध्यान नहीं दिया था । स्वतन्त्रता का आर्थिक स्वरूप क्या है ? इसका ज्ञान राष्ट्रीय नेताओं को किसान आन्दोलन के ही माध्यम से हुआ तथा उसी के पश्चात कांग्रेस द्वारा संचालित आन्दोलन सही अर्थों में एक राष्ट्रीय आन्दोलन बन सका ।

अंग्रेजी शासन के दिनों में भारत में समाज और धर्म सुधार सम्बन्धी जो आन्दोलन शुरू हुये वे भारतीय जनता की उदीयमान राष्ट्रीय चेतना और उनके बीच पश्चिम के उदारवादी विचारों के प्रसार के परिणाम थे । उदारवादी पाश्चात्य संस्कृति में दीक्षित नये प्रबुद्ध वर्ग ने सुधारवादी आन्दोलन प्रारम्भ किये क्योंकि उन्हें विश्वास था कि नये समाज का राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विकास व्यक्ति स्वातंत्र्य व्यक्ति की उन्मुक्त अभिव्यक्ति के लिये अवसर सामाजिक समानता आदि उदारवादी सिद्धान्तों के आधार पर ही सम्भव है । संयुक्त प्रान्त के पर्वतीय क्षेत्रों में स्वार्थी, अनैतिक तथा असामाजिक तत्वों द्वारा नायक जाति की युवतियों को वेश्यावृत्ति के लिये देश के विभिन्न भागों में ले जाने का चलन था । ज्वालादत्त जोशी, गिरिजादत्त नैथानी, हरिराम पाण्डेय, गौरीदत्त बिष्ट तथा तारादत्त गैरोला आदि ने " अल्मोड़ा अखबार " "गढ़वाली" तथा "शक्ति" आदि समाचार पत्रों के माध्यम से इसके विरुद्ध वैचारिक अभियान आरम्भ किया । इसके परिणाम स्वरूप 1929 में प्रान्तीय सरकार को " नायक बालिका संरक्षण अधिनियम " पारित करना पड़ा जिसके अन्तर्गत नायक जाति की लड़कियों को कुमायूँ मण्डल के बाहर ले जाने पर रोक लगा दी गई । समाचार पत्र-पत्रिकाओं के ही प्रयास से वेश्यावृत्ति को रोकने के उद्देश्य से संयुक्त प्रान्त की सरकार ने 1929 में " नाबालिग बालिका संरक्षण अधिनियम " पारित किया ।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारतीय समाज अनेकशः परम्परागत रूढ़ियों, अमर्यादित विधानों से ग्रस्त था । संयुक्त प्रान्त की पत्र-पत्रिकाओं ने अंधविश्वास, धार्मिक आडम्बर, कर्मकाण्ड, छुआछूत, जाति-प्रथा, बहुविवाह बाल विवाह, बेमेल विवाह नर बलि, सती प्रथा, शिशु हत्या आदि अमानवीय कृत्यों के विरुद्ध अभियान छेड़ दिया । नारी की समुचित प्रतिष्ठा

हेतु राव विष्णु पराड़कर ने "आज", "संसार", समाचार-पत्रों तथा "कमला" पत्रिका में प्रकाशित लेखों, संपादकीयों तथा टिप्पणियों द्वारा संकीर्ण विचारधारा ग्रस्त मानसिकता को उद्बुद्ध किया । उन्होंने "विधवा विवाह", "स्त्री कोई वस्तु नहीं ", " वीर माता ; " वीर पत्नी " " वीर भ्राता " आदि शीर्षकों के अन्तर्गत " आज " में नारी विषयक लेखमाला का प्रकाशन किया । उन्होंने"बूढ़े की कामुकता" शीर्षक से एक अग्रलेख " आज " में तब लिखा जब काशी के प्रख्यात आयुर्वेद चिकित्सक त्रयम्बक शास्त्री ने बहत्तर वर्ष की आयु में एक नवयौवना से सातवीं शादी रचायी । " चाँद " तथा " माधुरी " पत्रिकाओं के प्रत्येक अंक में सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक पाखण्ड तथा अन्धविश्वास के विरोध में लेख छपते थे । चाँद ने विभिन्न प्रान्तों, जातियों तथा अन्य विषयों पर विशेषांक प्रकाशित किये थे । इनमें से "चाँद" का मारवाड़ी अंक सर्वाधिक चर्चित हुआ और सरकार ने उसे जब्त कर लिया था । पाश्चात्य सभ्यता के कुत्सित प्रभाव के कारण भारतीय मानसिकता अपने सांस्कृतिक एवं सामाजिक सत्य और मूल्यवत्ता की अवधारणा से दूर होती जा रही थी । गणेशशंकर विद्यार्थी इस सांस्कृतिक पतन से विचलित हो उठे और उन्होंने " दैनिक प्रताप " के माध्यम से फैशन, भौतिकवादिता, मद्यपान, गो हत्या, शहरों के आकर्षण में गाँवो से पलायन तथा अन्य मामलों पर अपनी गहरी चिन्ता व्यक्त करते हुये सचेत किया कि भारतीय सभ्यता के अनुसार ही जीवन यापन करने में सबका कल्याण है । " इन्डियन पिपुल " तथा " लीडर " आदि अंग्रेजी समाचार-पत्रों ने भी सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध जनमत तैयार करने में अपना सहयोग दिया । उक्त समाचार पत्रों ने बाल विवाह, शिशु हत्या दहेज प्रथा, सती-प्रथा तथा वैधव्य को एक कड़ी से जुड़ी बुराई करार दिया

भारतीय पुनर्जागरण काल में समाज में धार्मिक परिवर्तन तेजी से हो रहे थे । आर्य समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज तथा थियोसाफी आन्दोलन ने एक बुद्धिवादी दृष्टिकोण पैदा किया । उत्तर प्रदेश में आर्य समाज को व्यापक सफलता मिली । आर्य समाज से प्रेरित समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने कर्मकाण्डों तथा सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिये वैचारिक क्रान्ति पैदा की और शिक्षा के विकास तथा साहित्यिक चेतना के लिये सतत् प्रयास किये । पत्रकारिता के माध्यम से आर्यसमाज की सफलता से प्रेरणा लेकर विभिन्न धार्मिक संगठनों ने अपने मुख-पत्र प्रकाशित किये किन्तु " कल्याण ", "सतयुग", " सनातन धर्म" तथा " कर्मयोग" ही ऐसी प्रमुख पत्र-पत्रिकायें थी जिनका उद्देश्य निष्पक्ष तथा विवाद रहित धार्मिक सामग्री प्रकाशित करना था । आदिवासी तथा पिछड़े क्षेत्रों में मिशनरियों द्वारा लोगों को ईसाई बनाने का भी समाचार पत्रों ने विरोध किया । मिशनरियों द्वारा धर्म परिवर्तन कराने के कुत्सित प्रयासों का पर्दाफाश करके संयुक्त प्रान्त के समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने जनता को सदैव आगाह किया ।

संयुक्त प्रान्त के समाचार पत्र-पत्रिकाओं के मुस्लिम हित चिन्तक, सरकार समर्थक तथा राष्ट्रीय विचारधार के प्रसारक तीन श्रेणियों में विभाजित हो जाने से साम्प्रदायिकता को बल मिला । राष्ट्रीय विचारधारा के कांग्रेस समर्थक पत्रों ने हिन्दू-मुस्लिम एकता का नारा बुलन्द किया और मुसलमानों से हिन्दुओं से सहयोग करने तथा एक जुट होकर विदेशी सत्ता का मुकाबला करने का आग्रह किया । साम्प्रदायिकता की बढ़ती हुई प्रवृत्ति को दृष्टिगत करते हुये ही "दैनिक प्रताप" ने अपने एक संपादकीय में चेतावनी देते हुये लिखा कि यदि धर्म को राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग न रक्खा गया तो इसके दूरगामी परिणाम अच्छे न होंगे । समाचार

पत्रों की यह दृढ़ धारणा थी कि समानता व बन्धुत्व पर आधारित समाज ही स्वतन्त्रता आन्दोलन का संचालन कर सकता है तथा भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की रक्षा कर सकता है । राजनीतिक निष्क्रियता के वर्षों में कांग्रेस ने अपनी शक्ति महत्वपूर्ण रचनात्मक कार्यक्रमों - कृषक आन्दोलन, ग्राम्य जागरण, नारी जागरण, अछूतोद्धार, हिन्दू मुस्लिम एकता, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार, चर्खा और खादी, मद्यपान निषेध, पिकेटिंग इत्यादि में लगायी और जनता में निराशा नहीं पनपने दी । स्वतन्त्रता आन्दोलन के अनुकूल समाज को बाँधे रखने में कांग्रेस ने जो आशातीत सफलता प्राप्त की उसका आधार समाचार-पत्रों ने ही तैयार किया था ।

समाचार-पत्रों ने जनशिक्षा के विकास में निरक्षरता को दूर करने के लिये प्रौढ़ शिक्षा पर बल दिया । यह समाचार पत्रों की ही देन थी कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, सोशल सर्विस लीग, अखिल भारतीय विद्यार्थी संगठन तथा अन्य संस्थाओं ने इस दिशा में कार्य किये । संयुक्त प्रान्त में मिर्जापुर, बाराबंकी, बहराइच, हरदोई, बलिया, बस्ती पीलीभीत, लखीमपुर खीरी, जालौन, हमीरपुर, फतेहपुर, बिजनौर, बदायूँ, शाहजहाँपुर, इटावा तथा सीतापुर जैसे उपेक्षित जिलों में प्रौढ़ शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा तथा माध्यमिक शिक्षा की दिशा में बहुत प्रयास किये गये । स्त्री शिक्षा के विकास के लिये समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने विशेष प्रयास किये । महादेवी वर्मा के संपादन काल में "चाँद" पत्रिका ने स्त्री शिक्षा प्रसार के लिये वातावरण तैयार करने तथा स्त्रियों के बहुमुखी विकास के लिये अवसर दिये जाने पर विशेष रूप से बल दिया । बाल बोधिनी", "स्त्री धर्म शिक्षक" तथा "कमला" आदि महिला पत्रिकाओं ने भी स्त्री शिक्षा के प्रसार तथा स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा के लिये लोगों का ध्यान आकर्षित किया ।

पत्रकारिता ने बीसवीं शताब्दी में हमारी सांस्कृतिक विचारधारा को सतत विकासोन्मुख रक्खा । लार्ड कर्जन ने 1901 से 1905 के मध्य कई बार आगरा का दौरा किया और वहाँ के ऐतिहासिक स्थलों में काफी रुचि प्रदर्शित की । इस देश की ऐतिहासिक धरोहर को संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से कर्जन ने 1904 में " ऐन्शियन्ट मान्यूमेन्टस प्रोटेक्शन ऐक्ट " पारित कराया । संयुक्त प्रान्त के समाचार पत्र " सिटीजन " {इलाहाबाद} तथा " रोहिलखण्ड गजट " {बरेली} ने कर्जन के इस कार्य की सराहना की । कर्जन ने ताजमहल में प्रकाश करने के लिये मुगल शैली में विशेष प्रकार का लैम्प बनवाया जो मूल रूप से ताँबे का बना था किन्तु उस पर सोने और चाँदी का काम किया गया था । यह लैम्प 16 फरवरी, 1908 को ताजमहल में लगवाया गया । रोहिलखण्ड गजट {बरेली} ने इस अवसर पर आयोजित समारोह का विवरण प्रस्तुत करते हुये सर हैवेट द्वारा पढ़े गये कर्जन के उस संदेश को प्रमुखता से प्रकाशित किया जो वह भारत से जाते समय छोड़कर गया था । संयुक्त प्रान्त में "एडवोकेट", "अभ्युदय", " शाने हिन्द " तथा "अलीगढ़ इंस्टीटियूट गजट" आदि पत्रों के प्रयास से सरकार ने कानपुर के भीतर गाँव में गुप्तकालीन ईंटों के मन्दिर, इलाहाबाद के किले तथा चुनार {मिर्जापुर} के किले की सुरक्षा की विशेष व्यवस्था की ।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिकायें प्रायः सचित्र होती थी । तत्कालीन सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्यिक पत्रिका " सरस्वती " के मुख पृष्ठ पर "सचित्र हिन्दी मासिक पत्रिका " अंकित रहता था तथा एक कलात्मक चित्र भी प्रकाशित होता था । " सरस्वती " के विभिन्न अंको में प्रकाशित नन्दलाल बोस

तथा हलदार द्वारा निर्मित चित्रों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि यह एक ऐसा काल था जब कला एवं उसकी निर्मितियों में उल्लेखनीय स्तरोन्नयन परिलक्षित होने लगे थे । वस्तुतः यह कला का पुनर्जागरण काल था । नयी विचारधारा, विश्वास तथा प्राचीन आस्था से प्राणवन्त कलाकारों ने अत्यन्त संयत तथा उदात्त कला को प्रतिष्ठा दी । कला का एक रूप " व्यंग्य रेखा चित्र " है जिसकी बहुश्रुत संज्ञा " कार्टून " है । यह कला बीसवीं शताब्दी के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश के शिव-अशिव दोनो ही पक्षों को सही अर्थों में प्रकट करती रही है । संयुक्त प्रान्त से प्रकाशित " माधुरी " तथा " सुधा " आदि पत्रिकाओं का एक स्तम्भ " चित्रावली " ही होता था जिसमें " व्यंग्य चित्र " भी प्रकाशित होते थे । "व्यंग्य चित्रों" के माध्यम से पत्रकारिता ने सामाजिक कुरीतियों पर तीखा प्रहार कर सामाजिक-सांस्कृतिक विकास को गति प्रदान किया । इस प्रकार से आलोच्य अवधि की पत्रकारिता ने जहाँ समस्त राष्ट्र को स्वातंत्र्य भावना से झकझोरा वहीं उत्तर प्रदेश के सामाजिक-सांस्कृतिक विकास में भी अपना अमूल्य योगदान दिया ।

::x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x::

:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:

:x:x:x:x:x:x:

"" सरकारी रिपोर्ट्स ""

एडीसन कमेटी रिपोर्ट

रिपोर्ट आफ इन्डियन एजूकेशन कमीशन आफ 1882 : सर डब्लू हन्टर ।

सेलेक्शन फ्राम स्टेट पेपर्स आफ द गवरनर्स जनरल आफ इण्डिया,
वारेन हेस्टिंग्स, अंक 2 : जी0 डब्लू0 फारेस्ट ।

रिपोर्ट आन नेटिव प्रेस इन एन0डब्लू0पी0, (1871-1910) ।

एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ यूनाइटेड प्राविन्सेज़ आफ आगरा एण्ड अवध,
(1881-82 से 1932-33 तक) ।

वर्नाक्यूलर न्यूज पेपर्स एक्सट्रैक्ट (1874-1915) ।

प्रोसिडिंग्स आफ द लेजिस्लेटिव काउन्सिल आफ यूनाइटेड प्राविन्सेज़,
(1918) फरवरी, 1929 तथा अक्टूबर, 1929 ।

द यूनाइटेड प्राविन्सेज कोड ।

होम डिपार्टमेन्ट जुडीशियल प्रोसिडिंग्स, जून, 1878 ।

होम डिपार्टमेन्ट पब्लिक प्रोसिडिंग्स, अप्रैल, 1867 ।

जी0ए0डी0 प्रोसिडिंग्स - 18, जनवरी-जून 1916 तथा 26, 1917 ।

गढ़वाल सेटिलमेन्ट रिपोर्ट : बैटन

रिपोर्ट आफ द एडमिनिस्ट्रेशन आफ एन0डब्लू0पी0, 1907-8 ।

"" सरकारी पत्रावलियाँ / अभिलेख ""

जी0ए0डी0 फाइल : 739/1920, 398/1913, 156/1907 ।

किसान रायट इन प्रतापगढ : पुलिस विभाग, पत्रावली ।

मैनुअल आफ लैन्ड टेन्योर इन कुमाऊँ : स्टोवैल ।

गजेटियर आफ वाराणसी ।

" अन्य अभिलेख / पुपत्र "

इंग्लैन्ड की इण्डिया लीग द्वारा 1932 में भारत की राजनीतिक,सामाजिक और आर्थिक स्थिति के आकलन के लिये भेजे गये प्रतिनिधि मण्डल की रिपोर्ट ।

किताब याददाश्त मालगुजारी बाबत : 1884-93 ।

नियम प्रभुसेवा व कुली उतार, टिहरी गढ़वाल स्टेट, 1930 ।

यात्रा-व्यय नियम, टिहरी गढ़वाल स्टेट, 1930 ।

इलाहाबाद ला जर्नल, 1904 ।

स्वतन्त्रता संग्राम में "आज" का योगदान, "आज" कार्यालय,वाराणसी ।

" समाचार पत्र एवं पत्रिकायें "

आज { वाराणसी }

दि लीडर { इलाहाबाद }

दि पायनियर { इलाहाबाद - लखनऊ }

इन्डिपेन्डेन्ट { इलाहाबाद }

हिन्दोस्तान { कालाकांकर, प्रतापगढ़ }

अभ्युदय { इलाहाबाद }

भारत { इलाहाबाद }

स्वदेश { गोरखपुर }

प्रताप { कानपुर }

एडवोकेट { लखनऊ }

अलमोड़ा अखबार { अलमोड़ा }

शक्ति

गढ़वाली

गढ़वाल समाचार

पुरुषार्थ

तरुण कुमाऊँ	आशा
रोहिलखण्ड गजट {बरेली}	बुद्धि प्रकाश
प्रभा	हिन्दी प्रदीप
माधुरी	गोधर्म प्रकाश
चाँद	विद्या विनोद
सरस्वती	कायस्थ हितकारी
कमला	आर्य दर्पण
हंस	कवि वचन सुधा
गृह लक्ष्मी	मार्डन रिव्यू
वन लता	
दम्पत्ति	
दीदी	

** प्रकाशित लेख **

मोतीलाल भार्गव, चार देश भक्त पत्रकार जो विचार स्वातन्त्र्य के लिये कालापानी गये { लेख } धर्मयुग, 27 जनवरी, 1980

भक्त दर्शन, संपादकाचार्य को प्रणाम, "उ0प्र0 मासिक, मई, 1980

डॉ0 लल्लन मिश्र, कानपुर में हिन्दी पत्रकारिता का विकास और गणेश शंकर विद्यार्थी, "आज" भारत 1975, विशेषांक ।

लक्ष्मीशंकर व्यास, भारत ॥ की स्वतन्त्रता में आज का योगदान, "आज" भारत 1975, विशेषांक ।

गायत्री गहलौत, भारतीय पत्रकारिता के क्षेत्र में इलाहाबाद का योगदान, "राष्ट्रभाषा सन्देश", 30 सितम्बर, 1979 ।

गायत्री गहलौत, लखनऊ की पत्रकारिता एक विहंगम दृष्टि, "राष्ट्रभाषा सन्देश", 15 नवम्बर, 1979 ।

गायत्री गहलौत, आर्य समाज और उत्तर प्रदेश की हिन्दी पत्रकारिता, " राष्ट्रभाषा सन्देश "30 अप्रैल, 1981 ।

लक्ष्मीशंकर व्यास, प्रेमचन्द्र की पत्रकारिता "आज" वाराणसी, 30 मई, 1980 ।

डा0 बल्देव राज गुप्त, पत्रकार महामना मालवीय, " आज " वाराणसी, 25 दिसम्बर, 1980 ।

संकठा प्रसाद, काशी की हिन्दी पत्रकारिता §लेख§ "उत्तरप्रदेश मासिक" लखनऊ, जून, 1976 ।

वीर सिंह, अवध का किसान आन्दोलन, " नवजीवन", स्वाधीनता दिवस विशेषांक, 15अगस्त, 1981 ।

"" सहायक - ग्रन्थ ""

अग्रवाल, एस0एन0, एज शट मैरिज इन इण्डिया

अवस्थी, सत्यनारायण, मार्ग के गहरे चिन्ह

अली, अतहर एम0, मुगल नोबिलिटी अण्डर औरंगजेब

अधिकारी, पी0 , मिलिट्री आर्गनाइजेशन इन मेडिवल इण्डिया ।

अहमद, अजीज, अर्ली टर्किश अम्पायर आफ देहली ।

अकरम मिर्जा, बहारिस्ताने गैबी

अबुल फजल, आईने - अकबरी

आयंगर, ए0आर0 न्यूज पेपर प्रेस इन इण्डिया

ओझा, प्रफुल्लचन्द्र, मुद्रण – कला

एरनाल्ड, टी0 डब्लू0, कैम्ब्रिज मेडिकल इण्डियन हिस्ट्री

बनर्जी, एस0के0, कम्यूनीकेशन सिस्टम इन मेडिवल इण्डिया

बसु, बी0डी0, हिस्ट्री ऑफ एजूकेशन अण्डर ईस्ट इण्डिया कम्पनी ।

बाजपेयी, अम्बिकाप्रसाद, समाचार पत्रों का इतिहास

भटनागर, राम रतन, राइज एण्ड ग्रोथ आफ हिन्दी जर्नलिज्म,

भार्गव, मोती लाल, पं0 अयोध्यानाथ

भालावारी, वी0एम0क, इनफेन्ट मैरिज एण्ड एनफोर्सड विडोहुड इन इण्डिया

चलपतिराव, एम0, समाचार पत्र

चतुर्वेदी, बनारसीदास, बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली ।

चटर्जी, आर0, सोशल चेंजेज इन नाइनटीन्थ सेन्चुरी ।

चन्द्र, विपिन, भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास ।

चिपलूणकर, ललित, भारत में मुद्रणकला का विकास ।

दत्ता, के0के0, रेनासा, नेशनलिज्म एण्ड चेन्जेज इन मार्डन इण्डिया

दास, राधाकृष्ण, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन चरित्र ।

दास, एम0एन0, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक इतिहास ।

देसाई, ए0आर0, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि ।

डफ ग्राट, हिस्ट्री आफ द मराठाज ।

डीतासी, गार्सिन, अर्सा डी हिन्दुस्तानी, उर्दू एट हिन्दी डिसकर्स डी आड्वरचर ।

डेफिल, इफहार्ट, बिहाइन्ड द सीन्स ।

इवाइन्स, आर0 गवर्नमेन्ट एजूकेशन इन इण्डिया ।

फोस्टर, अर्ली ट्रैवेल्स

गोविन्नार, के0जी0, द आर्ट आफ प्रिन्टिंग ट्रांसफार्मस द वर्ल्ड

गुयो, फ्रेंके, स्टोरी आफ प्रिन्टिंग : थ्रू द एजेज ।

जाधव, टी0एन0, एडमिनिस्ट्रेटिव पालसीज आफ ग्रेट मुगल्स ।

हण्टर, डब्लू0डब्लू0, द इण्डियन मुसलमान्स ।

हेमसत, सी0एच0, इण्डियन नेशनलिज्म एण्ड हिन्दू सोशल रिफार्म ।

हुसैन, गुलाम, सियारूल मुताखरीन

हुसैन, युसुफ, सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी वाकये ।

हुसैन, सरफराज, ट्रैवेल्स इन इण्डिया इन सेवेन्टीन्थ सेंचुरी

जैदी, हैदर आफताब, क्वाइन्स ऑफ मेडिवल पीरियड ।

जियाउद्दीन, भारत में इस्लामी शिक्षा के केन्द्र ।

जोशी, सुधा, कूर्मान्चल केशरी ।

जेम्स चार्ल्स, अवरलैण्ड रेवन्यू पॉलिसी इन नार्दन इण्डिया

ग्लेग, बी0आर0, लाइफ आफ सर थामस मुनरो

कुलकर्णी, पी0सी0, ए हिस्ट्री आफ द आर्य समाज ।

काटराऊ , हिस्ट्री आफ मुगल डायनेस्टी ।

खरे, वासुदेव वामन, ऐतिहासिक लेख-संग्रह ।

खरे, जी0एच0, न्यूज लेटर्स आफ द मेडिवल पीरियड ।

खान, हैदर युसुफ, सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी वाकये

लाल, किशोरी शरण, खिलजी वंश का इतिहास ।

मिश्र, प्रशान्त, उत्तर प्रदेश : अतीत और वर्तमान ।

मिश्र, राम गोपाल, संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास

मिश्र, कमलाकान्त, संस्कृत पत्रकारिता

मिश्रा, माधवी, उत्तर प्रदेश में शिक्षा

मारखम, शूटिंग इन द हिमालयाज

मार्गरेट कोरमैक, द हिन्दू वूमेन

मॉट, फ्रैंक लूथर, द स्टोरी आफ द अमेरिकन न्यूज पेपर्स
अमेरिकन जर्नलिज्म
द न्यूज इन अमरीका

मनूची, स्टोरिया डी मोगोर

मोहंती, टी0के0,	उड़ीसा अण्डर मुगल्स
मीणा, एस0के0,	हिस्ट्री आफ द मारवाड़
महापात्र,टी0एस0,	ए बिबलियोग्राफी ऑफ मेडिवल इण्डिया
मौरिस,सर विलियम्स,	औरंगजेब एण्ड लेटर मुगल्स
मेनन, के0वी0,	द प्रेस लॉज इन इण्डिया
नेहरू, मोतीलाल,	वी0आर0 नन्दा
नटराजन, जे0,	हिस्ट्री आफ इण्डियन जर्नलिज्म
नटराजन, एस0,	ए हिस्ट्री आफ प्रेस इन इण्डिया
	ए सेन्चुरी आफ सोशल रिफार्म इन इण्डिया
नार्टन, जे0वी0,	टापिक्स फार इण्डियन स्टेट्समैन
ओबेराय, निशीथ,	भारत में समाचार लेखन का इतिहास
प्रसाद, बेनी,	जहाँगीर
प्रधान, जे0बी0,	हिस्ट्री आफ लॉ एण्ड जस्टिस इन इण्डिया
पटनायक, बी0जे0,	फर्रुखसियर एण्ड हिज टाइम्स
प्रकाश सूद,	मुगल अखबारात
पाण्डेय, बद्रीदत्त,	कुमायूँ का इतिहास
पाण्डेय, पी0एन0देशपाण्डे,	इण्डिया इन एटीन्थ सेन्चुरी
प्रीभोज, जे0वी0,	अर्ली हिस्ट्री आफ प्रेस इन इण्डिया
फ्रैंके, जुयो,	स्टोरी ऑफ प्रिन्टिंग : थ्रू दी ऐजेज
पारिख, एम0सी0,	ब्रह्म समाज
रोनाल्डशे,	द लाइफ ऑफ लार्ड कर्जन
समरलाद, ई0लायड,	द प्रेस इन डेवलेप्ड कन्ट्रीज
सरकार, सर यदुनाथ,	औरंगजेब
	मुगल एडमिनिस्ट्रेशन
सरकार, पी0के0,	द बंगाल नवाब्स

सहाय, गोविन्द, उ0प्र0 कांग्रेस सरकार के अब तक के कार्य

सन् बयालिस का विद्रोह

सवारी, इमदाद, तारीखे सहाफतेउर्दू

स्याल, बलवन्त सिंह, एजूकेशन इन उत्तर प्रदेश

श्रीवास्तव, शालिग्राम, प्रयाग प्रदीप

स्टोने,सी0ए0, द बिगनिंग ऑफ प्रिन्टिंग इन इण्डिया

द बिगनिंग ऑफ पर्सियन प्रिन्टिंग इन इण्डिया

सेन, ए0पी0, द इन्डियन प्रेस

सान्याल, एस0पी0, न्यूज पेपर्स ऑफ द लेटर मुगल पीरियड

सेन, पी0के0, मुगल अखबारात

सेन, एस0पी0, न्यूज राइटर्स इन मुगल इण्डिया

सोफिया, डी0कोलेट, लाइफ एण्ड लेटर्स ऑव राजा राम मोहन राय

सिडनी, काटन, एजूकेशन इन नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सेज

स्मिथ, डब्लू0सी0, माडर्न इस्लाम इन इण्डिया

शर्मा, डी0एस0, उन्नीसवीं शताब्दी में भारत की आर्थिक स्थिति ।

शास्त्री, देवव्रत, गणेश शंकर विद्यार्थी

ठाकुर, वी0एस0 हिन्दी सम्पादकों के सम्पादक ।

टामस, एन0 सम आस्पेक्ट्स ऑफ मुगल एडमिनिस्ट्रेशन

टेलर, एम0ए0, द ब्रिटिश प्रेस ए क्रिटिकल सर्वे

ताराचन्द, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास

वैदिक, वेद प्रताप, हिन्दी पत्रकारिता: विविध आयाम

विल्सन, डी0आर0, अर्ली एनल्स ऑफ इंगलिश इन बंगाल

विलियम्स, रार्बट, हिस्ट्री ऑफ द मराठाज

याकूब अली खाँ, पत्रकारिता सन्दर्भ ज्ञानकोष

हैदराबाद

::x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x:x::

:x:x:x:x:x:x:x:x:x:

:x:x:x:x: